हिन्दी में विज्ञान लेखन : कुछ समस्याएँ

(विज्ञान परिषद् के सभापतियों के भाषणों का संग्रह)

अमृतमहोत्सव ग्रन्थमाला-६

हिन्दी में विज्ञान लेखन : कुछ समस्याएँ

सम्पादक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

शक १९०८ : सन् १९८६ ई०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों की गौरवपूर्ण परम्परा रही है। सम्मेलन की स्थापना के प्रारम्भ से ही सम्पन्न हो रहे ये अधिवेशन, भाषिक स्वाधीनता का उद्‌घोष करने के निमित्त प्रायः प्रतिवर्ष आयोजित होते रहे हैं। जिन राष्ट्र नायकों ने भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया था, उनमें से अनेक ऐसे समर्पित विचारक और लेखक थे, जो हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में समुपस्थित होकर राष्ट्रभाषा के साथ-साथ साहित्य, विज्ञान, दर्शन, इतिहास और समाजशास्त्र विषयक परिषदों में भी भाग लेते थे।

सम्मेलन ने हिन्दी के प्रचार-अभियान के साथ-साथ हिन्दी वाङ्मय के समग्र विकास, उन्नयन और संरक्षण की दृष्टि से अनेक परिषदों का संचालन किया था। इन परिषदों में विद्वान्, ज्ञान-विज्ञान की विशिष्ट शाखाओं में हुई प्रगति का समाकलन प्रस्तुत करते रहे हैं। ये परिषदें सम्बद्ध विषय के श्रेष्ठ विद्वानों के सभापतित्व में योजनाबद्ध रीति से आयोजित होती रहीं।

यह सौभाग्य का विषय है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपनी ७५वीं जयन्ती को 'अमृत-महोत्सव' के रूप में सम्पन्न करने की योजना के अन्तर्गत साहित्य, राष्ट्रभाषा, समाजशास्त्र आदि परिषदों के सभापतियों के भाषणों को सुसम्पादित रूप में प्रस्तुत करने का सुनिश्चय किया है।

विगत कई वर्षों से विद्वान् निरन्तर सम्मेलन के अधिवेशनों में आयोजित परिषदों के सभापतियों के भाषणों को सुसम्पादित रूप में प्रकाशित करने की माँग करते रहे हैं। इनमें कई भाषण विभिन्न रूपों में प्रकाशित हो चुके हैं। अतः अमृत-महोत्सव की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत विभिन्न परिषदों के सभापतियों के भाषणों को सुयोग्य एवं विशेषज्ञ विद्वानों से सम्पादित कराकर प्रकाशित किया जा रहा है।

यह प्रसन्नता का विषय है कि विज्ञान परिषद् के सचिव एवं 'विज्ञान' पत्रिका के सुयोग्य सम्पादक डॉ० शिवगोपाल मिश्र (रीडर रसायन, विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय) ने सम्मेलन का अनुरोध स्वीकार करके 'विज्ञान परिषद'

के सभापतियों के भाषणों को 'हिन्दी में विज्ञान लेखन : कुछ समस्याएँ' शीर्षक के अन्तर्गत सम्पादित किया है। हिन्दी में विज्ञान साहित्य के उत्तरोत्तर विकास को रेखांकित करनेवाली उनकी प्रशस्त भूमिका के कारण, इस ग्रन्थ का महत्त्व निश्चय ही बढ़ा है। सम्मेलन उनके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आशा है, अमृत-महोत्सव की इस प्रकाशन योजना का हिन्दी-जगत् में स्वागत होगा।

गंगादशहरा
संवत् २०४३ वि०

डॉ० प्रभात शास्त्री
प्रधानमन्त्री

विषय-सूची

⊙⊙⊙

क्रम

अधिवेशन और विज्ञान परिषदें

⊙ ⊙ ⊙

नाम	स्थान	अधिवेशन	सम्वत्	सन्
१. श्री हीरालाल खन्ना	झाँसी	२१	१९८८	१९३१
२. श्री रामदास गौड़	दिल्ली	२३	१९९०	१९३३
३. डॉ० गोरखप्रसाद	इन्दौर	२४	१९९२	१९३५
४. पं० रामनारायण मिश्र	मद्रास	२६	१९९४	१९३७
५. प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा	शिमला	२७	१९९५	१९३८
६. डॉ० गोरखप्रसाद	काशी	२८	१९९६	१९३९
७. डॉ० सत्यप्रकाश	पूना	२९	१९९७	१९४०
८. पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल	अबोहर	३०	१९९८	१९४१
९. श्री सूर्यनारायण व्यास	हरिद्वार	३१	२०००	१९४३
१०. डॉ० सत्यप्रकाश	जयपुर	३२	२००१	१९४४
११. श्री महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव	उदयपुर	३३	२००२	१९४५
१२. पं० चन्द्रशेखर वाजपेयी	कराँची	३४	२००३	१९४६
१३. डॉ० ब्रजमोहन	बम्बई	३५	२००४	१९४७
१४. श्री भास्करगोविन्द घाणेकर	मेरठ	३६	२००५	१९४८
१५. डॉ० श्रीरंजन	हैदराबाद	३७	२००६	१९४९
१६. कविराज प्रताप सिंह	कोटा	३८	२००७	१९५०

भूमिका

वैज्ञानिक साहित्य किसी भी राष्ट्र की सम्पत्ति है क्योंकि उसके आकार-प्रकार पर ही उस राष्ट्र की प्रगति निर्भर करती है। परन्तु ऐसा साहित्य कल्पना शक्ति या मानस मन्थन से नहीं अपितु प्रयोगशालाओं में अहर्निश श्रम करके तथा अपार धन व्यय करने के पश्चात् ही संगृहीत किया जाता है। यही कारण है कि उच्चकोटि का वैज्ञानिक साहित्य वहीं उपलब्ध होता है जहाँ विज्ञान के क्षेत्र में सर्वतोमुखी उन्नति हुई हो। वस्तुतः यह साहित्य किसी जाति की कर्मठता का साहित्य होता है। जो राष्ट्र विज्ञान के क्षेत्र में जितना ही पिछड़ा होता है, और जिसके पास साधनों का जितना अभाव होता है, यदि वहाँ के लोगों के पास अपनी सक्षम भाषा या सशक्त अभिव्यक्ति भी न हो तो उस राष्ट्र को परमुखापेक्षी बनना पड़ता है।

वैज्ञानिक साहित्य की सबसे बड़ी एक विशेषता यह है कि चाहे वह जिस देश की सम्पत्ति क्यों न हो, वर्तमान युग में प्रचार एवं प्रसार के ऐसे साधन उपलब्ध हैं कि कोई भी भाषाभाषी उससे समान रूप से लाभान्वित हो सकता है। परन्तु नहीं, यह इस पर अधिक निर्भर करता है कि अमुक राष्ट्र की भाषा उन भावों को वहन करने की सामर्थ्य रखती है अथवा नहीं। किसी भी भाषा में यह सामर्थ्य एकाएक नहीं आ जाती। वर्षों तक पारिभाषिक शब्द जुटाने, उनके बारम्बार प्रयुक्त करने तथा प्रारम्भ से उसी भाषा में पठन-पाठन की व्यवस्था करने के पश्चात् ही यह सम्भव हो पाता है।

हमारा देश दीर्घकाल तक पराधीनता के पाश में जकड़ा रहा और जब सर्वत्र वैज्ञानिक क्रान्ति हो चुकी, उस समय भी हमारा देश अंग्रेजों के द्वारा दलित रहा। इस काल में सम्पूर्ण शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बन जाने से हम भारतीयों का अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सबसे समृद्ध भाषा संस्कृत से सम्बन्ध टूट-सा गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व सारे भारतीय शिक्षाविद्, सारे समाज-शास्त्री और दैवयोग से सारे राजनीतिज्ञ इस मत के रहे कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाकर उसी के माध्यम से सारी शिक्षा प्रदान की जाय। वस्तुतः देश-प्रेम तथा राष्ट्रीयता में देश की भाषा का सर्वोपरि स्थान होता है, इसीलिए जब भारत देश में स्वदेशी की लहर उठ रही थी उसी में हिन्दी को उसका समुचित स्थान दिलाने के प्रयत्न हो रहे थे। प्रायः सभी मञ्चों से आवाज

उठायी जाती थी कि देश में शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो और इसके लिए अविलम्ब अथक प्रयास किये जायँ । स्पष्ट है कि वैज्ञानिक विषयों का भी हिन्दी में अवतरण किया जाना था । हमारे पास संस्कृत की प्राचीन धरोहर थी किन्तु तथाकथित शिक्षित व्यक्तियों का इससे सम्पर्क कम और अंग्रेजी से अधिक था । अतः जिन लोगों में संस्कृत के प्रति रुचि थी, उन्होंने प्रयास करने प्रारम्भ कर दिये और पारिभाषिक शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया चालू हो गयी । डॉ॰ रघुवीर ने इस दिशा में मार्गदर्शन किया । कुछ काल तक लोगों ने उनकी शब्दावली को आदर दिया किन्तु जैसा कि प्रायः होता है, राजनीति के साथ सारा परिवेश बदलता है । गांधी जी द्वारा हिन्दुस्तानी के समर्थन के साथ ही अत्यन्त उपहासजनक पारिभाषिक शब्दावली प्रकट हुई । ऐसे सन्धिकाल में उन हिन्दी लेखकों के समक्ष विषम परिस्थिति उत्पन्न हो गयी जो संस्कृत को आधार बनाकर आगे बढ़ना चाह रहे थे ।

१९०० के पूर्व बहुत कम वैज्ञानिक साहित्य रचा गया और जो कुछ रचा गया वह नितान्त व्यक्तिगत अभिरुचि पर आश्रित था । सर्वप्रथम गुरुकुल काँगड़ी से वैज्ञानिक शिक्षण का हिन्दीकरण प्रारम्भ हुआ तो वहीं के शिक्षकों ने कतिपय विषयों में, विशेष रूप से रसायन, भौतिकी तथा वनस्पति शास्त्र पर पाठ्यपुस्तकें लिखीं । १९१३ ई० में प्रयाग में **विज्ञान परिषद्** की स्थापना हो जाने पर वैज्ञानिक साहित्य के सर्जन में प्रगति आयी और स्वतन्त्रता के पूर्व इतना वैज्ञानिक साहित्य प्रणीत हो चुका था कि स्कूलों-कालेजों में विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी माध्यम से हो सके । बस. एक ही व्यवधान या कठिनाई थी कि पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता नहीं आ पायी थी जिससे अध्यापकों, लेखकों, पाठकों तथा विद्यार्थियों के समक्ष असमंजस की स्थिति थी ।

यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों में पारिभाषिक शब्दावली, शिक्षण का माध्यम, पुस्तकों के लेखन आदि को लेकर विचार-विमर्श चल रहे थे किन्तु कोई अखिल भारतीय मञ्च तैयार नहीं हो पाया था । तभी **हिन्दी साहित्य सम्मेलन** ने अपने वार्षिक अधिवेशनों में 'विज्ञान परिषद्' की योजना करके एक दृढ़ आधारभूमि तैयार कर दी जिसमें विज्ञान के विविध पक्षों के विद्वान् अपने-अपने विचार व्यक्त कर सकें ।

आगे हम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के जन्म तथा विज्ञान परिषद्, प्रयाग की गतिविधियों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे जिससे वास्तविक स्थिति से परिचित हुआ जा सके ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म

नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना १८९३ ई० में काशी में हो चुकी थी। उसके प्रमुख कार्यकर्ता तथा हिन्दी-जगत् के साहित्यकार यह आवश्यकता अनुभव करने लगे कि एक ऐसा मञ्च होना चाहिए जहाँ हिन्दी-प्रेमी एकत्र होकर हिन्दी के विकास तथा हिन्दी की समस्याओं पर विचार-विनिमय कर सकें। उस समय की आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर स्व० डॉ० श्यामसुन्दर दास ने १ मई, १९१० में नागरी प्रचारिणी सभा की एक बैठक में इस आशय का प्रस्ताव रखा कि हिन्दी के साहित्यिकों का एक सम्मेलन किया जाय और उसमें हिन्दी तथा नागरी लिपि के व्यापक प्रचार-प्रसार तथा व्यवहार के लिए उपयुक्त साधनों तथा प्रयत्नों के सम्बन्ध में विचार किया जाय। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और उपस्थित सदस्यों ने तथा सभा ने इसके लिए आवश्यक धन की व्यवस्था की। यह भी निर्णय हुआ कि यह सम्मेलन शीघ्र ही काशी में बुलाया जाय।

इस प्रकार १९१० ई० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का जन्म हुआ। इस सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन काशी में हुआ और उसके सभापति बनाये गये पं० मदन मोहन मालवीय। इसमें पुरुषोत्तमदास टण्डन भी सम्मिलित हुए थे और उन्होंने इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव स्वीकृत कराया कि सरकारी दफ्तरों में नागरी लिपि के प्रचार तथा हिन्दी साहित्य की व्यापक उन्नति के लिए धन-संग्रह किया जाय। फलतः इसके लिए हिन्दी पैसा-फण्ड समिति बनायी गयी। इसी पैसा-फण्ड से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की नींव पड़ी। अगले वर्ष प्रयाग में अधिवेशन हुआ और टण्डन जी सम्मेलन के प्रधानमन्त्री निर्वाचित हुए।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनों के कारण हिन्दी के साहित्यिकों एवं हिन्दी-प्रेमियों का मिलना और हिन्दी की उन्नति के लिए विचार-विनिमय करना सम्भव हो सका। ये अधिवेशन क्रमशः देश के विभिन्न प्रान्तों के नगरों में सम्पन्न होते रहे जिससे सम्मेलन को एक अखिल भारतीय संस्था का रूप प्राप्त होने लगा। १९१८ ई० में सम्मेलन का ८वाँ अधिवेशन इन्दौर में हुआ जिसके सभापति महात्मा गांधी चुने गये। इस अधिवेशन में हिन्दी के प्रचार के लिए ठोस कार्य करने का निश्चय किया गया। इसके अनुसार दक्षिण भारत में गांधी जी के मार्गदर्शन में हिन्दी-प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। ८ वर्ष के जीवन-काल में ही इन्दौर अधिवेशन में जो क्रियात्मक कदम उठाया गया, उस दृष्टि से यह अधिवेशन विशेष महत्त्व का

सिद्ध हुआ। पुनः १९३६ ई० में जब डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में सम्मेलन का २५वाँ अधिवेशन नागपुर में आयोजित हुआ तो उस समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा का गठन हुआ।

इस प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन भारत के विभिन्न प्रान्तों में होते रहे और इनके सभापति केवल हिन्दी प्रान्तों के विद्वान् ही नहीं अपितु अन्य प्रान्तों के विद्वान् भी होते रहे। इन अधिवेशनों में देश भर के हिन्दी-प्रेमी, हिन्दी-सेवक तथा हिन्दी के साहित्यकार वर्ष में एक बार एक साथ एकत्रित होकर हिन्दी की समस्याओं पर विचार-विनिमय करते थे और अपने विचारों को व्यक्त करते थे। ऐसे अधिवेशनों के साथ-साथ कुछ परिषदें भी होती रहीं जिनमें से साहित्य परिषद्, दर्शन परिषद्, समाज-शास्त्र परिषद् (इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र) तथा विज्ञान परिषद् (तात्त्विक विज्ञान तथा व्यावहारिक विज्ञान) मुख्य हैं। ये परिषदें सुविख्यात अधिकारी व्यक्तियों की अध्यक्षता में होती रहीं जिनमें निबन्ध पढ़े जाते और उन पर चर्चाएँ होती थीं।

ऐसी विज्ञान परिषदों का आयोजन झाँसी अधिवेशन से १९३१ से प्रारम्भ हुआ किन्तु खेद है कि १९५० ई० में सम्मेलन में जब गतिरोध आ गया तब से किन्हीं विशेष कारणों से ऐसी परिषदों का आयोजन स्थगित रहा। स्थायी समिति के सत्तासीन होने के पश्चात् प्रयाग, हैदराबाद एवं कुरुक्षेत्र के अधिवेशनों में अब पुनः कुछ परिषदों के आयोजन होने लगे हैं।

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

नागरी प्रचारिणी सभा के बाद जिस एक और महत्त्वपूर्ण संस्था का जन्म हुआ, वह थी विज्ञान परिषद्, प्रयाग। १४ मार्च सन् १९१३ को म्योर सेण्ट्रल कालेज के चार अध्यापकों—महामहोपाध्याय डॉ० गंगानाथ झा, प्रो० हमीदुद्दीन, बाबू रामदास गौड़ तथा सालिगराम भार्गव ने मिलकर इसकी स्थापना दो मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की। ये उद्देश्य थे —

१. भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की रचना तथा प्रकाशन।

२ देश में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रचार।

स्पष्ट है कि बीसवीं शती के प्रथम-द्वितीय दशक में शिक्षित वर्ग में प्रचुर उत्साह था। वे हिन्दी को देश की शिक्षा का माध्यम बनाने के लिए सतत सचेष्ट थे। इस काल में समस्त साहित्यिक, वैज्ञानिक एवं सामाजिक संस्थाओं में पूर्ण मतैक्य था। उनके समक्ष एक ही उद्देश्य था कि किस प्रकार हिन्दी को समर्थ बनाया जाय। अस्तु!

यदि हिन्दी के सृजन एवं प्रोत्साहन के लिये प्रयाग से 'सरस्वती' मासिक पत्रिका निकली तो विज्ञान परिषद् प्रयाग ने अप्रैल १६१५ से **'विज्ञान'** नामक मासिक पत्रिका निकालनी प्रारम्भ की। ध्यातव्य है कि इसके प्रारम्भिक सम्पादकों में हिन्दी के गण्यमान् साहित्यकार थे—श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम। स्वयं रामदास गौड़ अच्छे साहित्यकार थे किन्तु उन्होंने प्राणपण से वैज्ञानिक साहित्य सृजन करने-कराने का भार अपने ऊपर लिया। यदि महावीरप्रसाद द्विवेदी को खड़ीबोली के सँवारने-समृद्ध करने का श्रेय प्राप्त है तो रामदास गौड़ को हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अवतरण का। इसका परिणाम शुभ हुआ। विज्ञान परिषद्, प्रयाग के माध्यम से देश में हिन्दी वैज्ञानिक लेखन को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जिससे अनेक लेखक उत्पन्न हुए जिन्होंने आगे चलकर अनेक पुस्तकें लिखीं और बाद में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विज्ञान परिषद् के सभापति पद से भाषण भी दिया। जरा कल्पना कीजिए उस पारस्परिक सहकारिता का कि सम्मेलन के अधिवेशनों में विज्ञान क्षेत्र में हिन्दी लेखन करने वाले सारे विद्वानों की आँखें इसी ओर लगी रहतीं। प्रस्तुत संग्रह के १६ अध्यक्षीय भाषणों में से १० भाषण विज्ञान परिषद् प्रयाग के अधिकारियों या लेखकों के हैं। ये हैं हीरालाल खन्ना, रामदास गौड़, डॉ० गोरखप्रसाद (२ भाषण), डॉ० सत्यप्रकाश (२ भाषण), प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, डॉ० ब्रज-मोहन तथा डॉ० श्रीरञ्जन के भाषण। इससे यह लाभ हुआ कि देश के वैज्ञानिक जगत् के अतिरिक्त साहित्यिक जगत् में भी विज्ञान के प्रति चेतना जागृत हुई। इन सारे व्यक्तियों ने अपने-अपने भाषणों में तत्कालीन परि-स्थिति, जन-मानस की भावनाओं तथा आवश्यकताओं का डंके की चोट में उद्घोष किया और आह्वान किया कि वैज्ञानिक साहित्य का सृजन हो। इसके लिए उन्होंने एकजुट होकर दिशा-निर्देश भी किया। देश में हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी को लेकर सरकारी स्तर पर जो बखेड़ा खड़ा किया जाता रहा उसकी ओर जब वैज्ञानिकों ने ध्यान आकृष्ट किया तो स्वाभाविक था कि सरकार के कान खुलते। इसका परिणाम लाभप्रद हुआ। इण्टरमीडिएट स्तर तक हिन्दी को विज्ञान-शिक्षण का माध्यम स्वीकार कर लिया गया। फिर तो पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अनेक विद्वानों ने श्रम किया, पारिभाषिक शब्दावली का परिमार्जन होता रहा और विज्ञान के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ औद्योगिक विज्ञान को सुदृढ़ बनाने पर बल दिया गया।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन की विज्ञान परिषदें

विज्ञान परिषद् प्रयाग तथा सम्मेलन द्वारा आयोजित वर्षानुवर्ष विज्ञान परिषदों के अन्तर को भलीभाँति समझ लेना होगा। नामसाम्य के साथ उद्देश्यसाम्य भी है किन्तु एक संस्था है, और दूसरी वार्षिक बैठकें हैं जो सम्मेलन द्वारा आयोजित की जाती रही हैं। ऐसी विज्ञान परिषदें (Science Academies) विदेशों में भी हैं और प्राचीन काल में भारत में भी 'सम्भाषा' परिषदें थीं। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है सम्मेलन की स्थापना के २१ वर्ष बाद १९३१ ई० से ऐसी परिषदों की आयोजना होनी प्रारम्भ हुई और १९५० में समाप्त हो गयी। लेकिन इस अवधि में कम-से-कम १६ परिषदें सम्पन्न हो सकीं जो देश के विभिन्न प्रान्तों के विभिन्न नगरों में आयोजित की गयीं। इससे अखिल भारतीय स्तर पर हिन्दी को विज्ञान की भाषा बनाने के लिए दृढ़ आधार प्राप्त हो सका।

सम्मेलन द्वारा आयोजित विज्ञान परिषदें

अधिवेशन क्रमांक	स्थान	सवत्	सभापति
२० वाँ	झाँसी	१९८८	हीरालाल खन्ना
२३ वाँ	दिल्ली	१९९१	रामदास गौड़
२४ वाँ	इन्दौर	१९९२	डॉ० गोरखप्रसाद
२५ वाँ	नागपुर	१९९३	
२६ वाँ	मद्रास	१९९४	रामनारायण मिश्र
२७ वाँ	शिमला	१९९५	प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा
२८ वाँ	काशी	१९९६	डॉ० गोरखप्रसाद
२९ वाँ	पुणे	१९९७	डॉ० सत्यप्रकाश
३० वाँ	अबोहर	१९९८	जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल
३१ वाँ	हरिद्वार	२०००	सूर्यनारायण व्यास
३२ वाँ	जयपुर	२००१	डॉ० सत्यप्रकाश
३३ वाँ	उदयपुर	२००२	महावीरप्रसाद श्रीवास्तव
३४ वाँ	कराँची	२००३	चन्द्रशेखर वाजपेयी
३५ वाँ	बम्बई	२००४	डॉ० ब्रजमोहन
३६ वाँ	मेरठ	२००५	श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर
३७ वाँ	हैदराबाद	२००६	डॉ० श्रीरंजन
३८ वाँ	कोटा	२००७	कविराज प्रताप सिंह

इन १६ विज्ञान परिषदों में से उत्तर प्रदेश में ४, महाराष्ट्र में २, राजस्थान में ३, दक्षिण भारत में २, पंजाब में १, दिल्ली में १ तथा सुदूर स्थानों में २ आयोजित हुईं। इन परिषदों में जिन विभिन्न विज्ञान विषयों पर चर्चा की गयी वे हैं—भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष, गणित तथा सामान्य वैज्ञानिक समस्याएँ। इन भाषणों में देश में २० वर्षों में (१९३१-१९५०) विज्ञान के विविध क्षेत्रों में जो प्रगति हुई और हमने जो संकल्प किये उनका लेखा-जोखा प्राप्त होता है। हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन का इतिहास लिखते समय यह सामग्री महत्वपूर्ण सिद्ध होगी।

ये १६ भाषण १४ विभिन्न व्यक्तियों ने दिये जिनमें डॉ० गोरखप्रसाद तथा डॉ० सत्यप्रकाश को दो-दो बार भाषण देने का गौरव प्राप्त हुआ। सम्मेलन की विज्ञान परिषदों के सभापतियों का चुनाव किस प्रकार होता था इसकी एक झलक कविराज जी के भाषण से प्राप्त होती है किन्तु इतना तो निश्चित है कि इसके लिए हिन्दी-सेवा के अतिरिक्त नेतृत्व भी प्रमुख कसौटी थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण विज्ञान परिषद् के प्रथम सभापति हीरालाल खन्ना का चुनाव था। उनका शिक्षण के क्षेत्र में अत्यधिक दबदबा था, वे अच्छे शिक्षक थे किन्तु साथ ही, राजनीतिक नेताओं से भी उनका सम्पर्क था। विज्ञान परिषद्, प्रयाग के लिए उनकी सेवाएँ अभूतपूर्व थीं। इसी प्रकार पं० रामनारायण मिश्र का चुनाव भी। मिश्र जी अपनी सादगी के लिए विख्यात थे। जीवनपर्यन्त वे भूगोल की सेवा में तत्पर रहे। किन्तु सूर्यनारायण व्यास, डॉ० गोरखप्रसाद, डॉ० सत्यप्रकाश, डॉ० ब्रजमोहन, प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा या डॉ० श्रीरंजन का चुनाव निःसन्देह उनकी विद्वत्ता, उनकी लेखन-क्षमता तथा प्रसिद्धि के कारण ही हुआ होगा।

सम्मेलन की विज्ञान परिषदों की एक विशेषता यह भी रही है कि सम्मेलन ने आयुर्वेद विषय को सम्मेलन-परीक्षाओं में सम्मिलित कर रखा था फलतः कई परिषदों का सभापति आयुर्वेद के विद्वानों को बनाया गया। सर्वप्रथम पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल 'आयुर्वेद पंचानन' को यह अवसर प्रदान किया गया। उसके पश्चात् श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर तथा कविराज प्रताप सिंह को सभापति बनाया गया। केवल चन्द्रशेखर वाजपेयी ऐसे व्यक्ति थे जिनकी रुचि विज्ञान के प्रति तो थी किन्तु वे साहित्यकार थे।

मैंने विभिन्न सभापतियों के भाषणों के अतिरिक्त उनके जीवन तथा कृतित्व के सम्बन्ध में संक्षिप्त परिचय भी यथास्थान संलग्न कर दिये गये हैं

जिससे पाठकों को उनके विषय में जानकारी प्राप्त हो सके और वे उनके विषय में राय बना सकें।

भाषणों का विश्लेषण

इन १६ भाषणों का विश्लेषण आवश्यक एवं समीचीन होगा। इनमें से कुछ भाषण अत्यन्त संक्षिप्त हैं तो कुछ अत्यन्त विस्तृत हैं। केवल दो व्यक्तियों को दो बार भाषण देने का अवसर प्राप्त हुआ—डॉ० गोरखप्रसाद तथा डॉ० सत्यप्रकाश। हम बिना हिचक के यह कह सकते हैं कि रामादस गौड़, प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा, डॉ० गोरखप्रसाद तथा डॉ० सत्यप्रकाश इन चार व्यक्तियों की तपस्या से आज वैज्ञानिक क्षेत्र में हिन्दी फूली फली है। सौभाग्य-वश आज भी हमारे बीच डॉ० सत्यप्रकाश विद्यमान हैं। यद्यपि उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया है किन्तु उनकी लेखनी ने विराम नहीं लिया। वे ही एकमात्र ऐसे विज्ञान लेखक हैं जिन्होंने प्राचीन भारत की वैज्ञानिक परम्परा को पूर्णतया आत्मसात् करके लेखन कार्य किया है इसीलिए वे विज्ञान के भारतीयकरण पर जोर देते रहे हैं। एक समय था जब विज्ञान परिषदों के माध्यम से विज्ञान लेखकों का परिचय हिन्दी के साहित्यकारों को प्राप्त होता रहता था किन्तु अब कोई वैसा मंच प्राप्त नहीं है। यह आश्चर्यजनक बात है कि हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास में देश की वैज्ञानिक परम्परा का सही-सही अंकन नहीं हुआ, न ही विज्ञान लेखकों को साहित्य-कार माना जाता है।

अब हम विभिन्न विद्वानों के भाषणों के मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित करेंगे जिससे यह पता चल सके कि हमने क्या सोचा, क्या किया और क्या हो पाया।

१. हीरालाल खन्ना जी का भाषण

सम्मेलन की 'विज्ञान परिषद्' का सूत्रपात झाँसी अधिवेशन (सन् १९३१) से होता है। इसके सभापति बनाये गये कानपुर डी. ए. वी. कॉलेज के प्रिन्सिपल श्री हीरालाल खन्ना। खन्ना जी गणित के शिक्षक तथा विद्यालय के संचालक मात्र थे किन्तु उन्होंने प्रयाग स्थित 'विज्ञान परिषद्' की गतिविधियों के साथ अपने को सम्बद्ध कर रखा था और वे उसके अत्यन्त सक्रिय सभ्यों एवं अधिकारियों में से थे। उनके भाषण से स्पष्ट झलकता है कि उस समय रामदास गौड़, डॉ० गणेशप्रसाद, सालिगराम,

ब्रजराज, गोपाल स्वरूप भार्गव, डॉ० निहालकरण सेठी, महावीर प्रसाद जैसे विज्ञान-सेवी कार्यरत थे जिनके होते हुए भी उन्हें इस प्रकार का गुरुतर भार दिया गया तो उनमें संकोच का होना स्वाभाविक था। तो भी उन्होंने अपने भाषण में 'हिन्दी के वैज्ञानिक अंग को बलहीन एवं अपूर्ण' कहकर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करना चाहा, वह वस्तुस्थिति से उनकी पूरी-पूरी जानकारी का सूचक है। उनका स्पष्ट मत था कि "हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की आवश्यकता इसलिए और भी है कि साधारण जन-समुदाय में वैज्ञानिक विचारों का प्रचार भलीभाँति हो सके।" उन्होंने वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण और विज्ञान के प्रचार के निमित्त तीन सुझाव भी रखे—

१. वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा

२. पारिभाषिक शब्दों का अभाव एवं अनिश्चयता

३. सहकारिता एवं सहयोगिता

उनका विश्वास था कि पारिभाषिक शब्दों का निर्माण राष्ट्रीय दृष्टि से होना चाहिए। संसार के सभी देशों में सहकारिता के आधार पर ही ज्ञान-वृद्धि हुई है अतः हमारे देश को भी यही करना चाहिए। वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली को देशव्यापक एवं सर्वमान्य होना चाहिए। शब्दों का उच्चारण देश की जलवायु, प्राकृतिक अवस्था एवं मनुष्य के शरीर-संगठन पर आश्रित है।

२. रामदास गौड़ का भाषण

सम्भवतः यह तीसरी विज्ञान परिषद् के समक्ष दिया गया भाषण है। इसकी महत्ता इस दृष्टि से अधिक है कि गौड़ जी 'विज्ञान परिषद्' नामक संस्था के संस्थापकों में से थे और हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अवतरण के लिए इन्होंने जिस मनोयोग से कार्य किया तथा जिस सुरुचिपूर्ण प्रवाहमयी शैली की खोज की वह अपने में एक अप्रतिम योगदान है।

यह बड़ी विचित्र बात थी कि साहित्य के प्रति समर्पित रहते हुए भी गौड़ जी विज्ञान के औद्योगिक पक्ष की ओर निरन्तर अपनी दृष्टि लगाये हुए थे। उनका विश्वास था कि विज्ञान के व्यावहारिक उपयोगों से जनसामान्य को लाभान्वित कराने के लिए सभी यत्न किये जाने चाहिए। उनका विचार था कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन में यन्त्रविज्ञान की शिक्षा देने के लिए वैसी ही यान्त्रिक प्रयोगशाला बने जिस प्रकार 'सिटी एण्ड गिल्ड्स आफ लन्दन' है और परीक्षाएँ सम्पन्न करायी जायँ। यदि कोई यह कहे कि सम्मेलन के

उद्देश्यों में यह नहीं है तो उसके उत्तर में वे स्वयं कहते हैं "मैं नहीं मान सकता कि जहाँ हिन्दी के द्वारा ही सब तरह का शिक्षण है और विश्व-विद्यालय है वहाँ यह काम उद्देश्य के विपरीत होगा।"

स्पष्ट है कि सम्मेलन के मंच से न केवल वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन अपितु औद्योगिकीकरण की दिशा में समुचित वैज्ञानिक शिक्षा देने पर उन्होंने बल दिया।

३. डॉ० गोरखप्रसाद का भाषण

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति डॉ० गोरखप्रसाद चुने गये। डॉ० गोरखप्रसाद प्रयाग स्थित **विज्ञान परिषद्** के उन्नायकों में से थे। वे सदैव चिन्तित रहते थे कि ऐसा क्या किया जाय जिससे विज्ञान-साहित्य की उन्नति हो। वे अपनी चिन्ता को प्रकट करते हुए कहते हैं "हिन्दी साहित्य में अन्य अंगों की अपेक्षा वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति के लिए पारिभाषिक शब्दों, फोटो और ब्लाकों की बहुत आवश्यकता है।" चूँकि वैज्ञानिक पुस्तकों की छपाई में प्रचुर धन व्यय होता है अतः उनका सुझाव था, "वैज्ञानिक साहित्य को छापने का काम केवल ऐसी संस्थाओं द्वारा हो सकता है जो वैज्ञानिक पुस्तकों की आवश्यकता बहुत ज्यादा समझती हों।"

उनका विचार था कि वैज्ञानिक साहित्य ऐसा हो जिसे पढ़े-लिखे लोग अच्छी तरह समझ लें तो बेकारी की दशा में सुधार हो सके। लेकिन साथ ही, वे सतर्क करते हैं "इस समय बहुत-से हिन्दी लेखक ऐसे हैं जो विज्ञान को तो नहीं जानते केवल कुछ-न-कुछ लिखने के उद्देश्य से लिख डालते हैं।"

डॉ० गोरखप्रसाद जी का स्वर गौड़ जी की ही दिशा को लक्षित करने वाला था। कारण कि विज्ञान परिषद्, प्रयाग में वे साथ-साथ कार्य करते थे। उन्हें वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति के साथ-साथ जनसामान्य को विज्ञान से लाभान्वित कराने के लिए उपयोगी साहित्य के सृजन की धुन थी। विज्ञान परिषद्, प्रयाग में आपने 'घरेलू डाक्टर', 'उपयोगी नुस्खे तथा हुनर' तथा 'सरल विज्ञान सागर' जैसी पुस्तकें लिख कर इस कमी को पूरा किया। उनकी 'फोटोग्राफी' पुस्तक अत्यधिक प्रशंसित हुई।

४. रामनारायण मिश्र का भाषण

अत्यन्त संक्षिप्त भाषण है आपका जिससे आपकी भूगोल के प्रति लगन का पता चलता है। किसी भी विषय में शोध कार्य करते समय कितने-कितने

कष्टों का सामना करना पड़ता है इसका उन्हें व्यक्तिगत अनुभव था। उनका विचार था कि भूगोल का क्षेत्र विज्ञान की ही तरह विस्तृत है। आज तो भूगोल को विज्ञान के विषयों में मान्यता प्राप्त हो चुकी है।

मिश्र जी के अनुसार अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक नहीं। वस्तुतः उन्होंने इसे अपने जीवन में उतार रखा था।

५. प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा का भाषण

वर्मा जी का भाषण अत्यन्त सन्तोष एवं हर्ष के स्वर से प्रारम्भ होता है—"बड़े हर्ष की बात है कि आज सारा देश इस बात को स्वीकार कर रहा है कि इस देश की राष्ट्रीय भाषा हिन्दी हो सकती है।" फिर वे यह दावा करते हैं कि १६३८ ई० तक हिन्दी में प्रचुर वैज्ञानिक साहित्य का सृजन हो चुका था—"मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अब भी हिन्दी में जितना विज्ञान साहित्य विद्यमान है उतना उत्तर भारत की अन्य भाषाओं में नहीं है" किन्तु तुरन्त ही वे कहते हैं कि "यह हमारा ही उत्तरदायित्व है कि इसके साहित्य की पूर्ति करें। यह हमारा कर्तव्य है कि हिन्दी साहित्य की अपरिपूर्णता के कलंक को मिटा डालें अन्यथा आगे आने वाली पीढ़ी हमें दोष देगी कि हमने साहित्य निर्माण के कार्य को सम्पादित न कर अपने कर्तव्य की अवहेलना की है, हमने उत्तरदायित्व को निभाया नहीं है।"

डॉ० वर्मा कोरे उपदेशक न थे। उन्होंने साहित्य निर्माण की आवश्यकता के दो कारण बताये—एक तो वैज्ञानिक अन्वेषणों से अवगत होना तथा दूसरे बेकारी की समस्या को हल करना। उन्होंने स्पष्ट किया कि विज्ञान का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए देशी भाषाओं का माध्यम आवश्यक है। वे यहाँ तक कह डालते हैं "हिन्दी में विज्ञान साहित्य का होना न होना हमारे राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है।"

उन्होंने इस दिशा में जो चिन्तन किया था उसे उन्होंने अपने भाषण में "दशवर्षीय योजना" के रूप में अत्यन्त ही विचारपूर्वक एवं विधिवत् प्रस्तुत किया। ऐसी महत्त्वाकांक्षी योजना शायद ही किसी ने इसके पूर्व बनायी या सुझायी हो। यह उनकी आकुलता एवं उनकी निष्ठा की परिचायक है। उन्होंने जिस धुन से साहित्य सृजन किया, वह उसके जीवन-परिचय से स्पष्ट हो जाता है। ऐसी योजना भारत के कर्णधारों के मानस-पटल पर भारत के स्वतन्त्र होने पर ही उभरी। सचमुच एक वैज्ञानिक पुरुष भविष्य-द्रष्टा होता है। राष्ट्र का कल्याणकर्ता भी वही होता है। वर्मा जी की यह

'दशवर्षीय योजना' उनके जीवन-काल के अन्तिम दिनों में ही पूरी हो पायी जब केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी प्रान्तों को एक-एक करोड़ रुपये की धनराशि प्रदान करके विश्वविद्यालय स्तर के वैज्ञानिक तथा मानविकी विषयों पर साहित्य निर्माण करने की छूट दी ।

६. डॉ० गोरखप्रसाद का भाषण

इस दूसरे भाषण में डॉ० साहब प्रारम्भ में सन्तोष व्यक्त करते हैं कि हाईस्कूल की विज्ञान परीक्षाओं में हिन्दी को माध्यम स्वीकार कर लिया गया है । स्पष्ट है कि विज्ञान क्षेत्र में लगे हुए लेखकों या कार्यकर्ताओं को हिन्दी को प्रतिष्ठित कराने के लिए जो संघर्ष करना पड़ा उससे जो शुभ परिणाम निकला उस पर हर्ष प्रकट करना स्वाभाविक था । लेकिन इसी के साथ लेखकों के समक्ष जो विशेष उत्तरदायित्व आया उससे वे अनभिज्ञ नहीं थे । वे सचेत करते हुए कहते हैं "उन लोगों के सामने जो विज्ञान-साहित्य-निर्माण में लगे हैं अभी अति बृहद् कार्य ज्यों-का-त्यों पड़ा है । अनेक विषयों को किसी ने अभी तक छुआ नहीं है, विशेषकर विज्ञान की उच्च शाखाओं को । यह परमावश्यक है कि शीघ्र ही प्रत्येक अंग पर कोई-न-कोई छोटी मोटी पुस्तक प्रकाशित हो ।" वे आगे कहते हैं "यह कार्य तीव्रगति से करना होगा ।" वे इसका व्यावहारिक हल भी प्रस्तुत करते हैं । वे हिन्दी की चार संस्थाओं का नाम लेते हैं—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी एकेडमी तथा विज्ञान परिषद् । वे सुझाव रखते हैं कि "इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी विज्ञान परिषद् प्रतिवर्ष एक या दो पुस्तकें, हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी एक या दो पुस्तकें और काशी नागरी प्रचारिणी सभा दो-तीन पुस्तकें छाप सकती है । इस प्रकार संयुक्त प्रान्त की इन संस्थाओं के सहयोग से प्रतिवर्ष पाँच-छह पुस्तकें छप सकती हैं...दस-बीस वर्षों में इस ओर भी पर्याप्त उन्नति हो सकती है । यदि प्रान्त के बाहर की संस्थाओं का भी सहयोग हो तो उन्नति और शीघ्र हो सकती है ।"

उन्हें एक उपयोगी अंग्रेजी-हिन्दी कोश की भी चिन्ता लगातार सताती रहती थी क्योंकि चाहे अनुवाद हो या मौलिक लेखन, लेखकों की गाड़ी शब्दों के उचित पर्याय न मिलने से रुक जाती है । वे सुझाव देते हैं कि कोश-निर्माण का कार्य नागरी प्रचारिणी या सम्मेलन सम्पन्न करे । सौभाग्यवश सम्मेलन ने उनके इस सुझाव को ध्यान में रखकर १९७० में एक मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश का प्रकाशन किया । देर ही सही किन्तु दुरुस्त प्रयास । वे यह

भी चाहते थे कि हिन्दी में एक विश्वकोश तैयार हो। संयोग ही कहा जायगा कि नागरी प्रचारिणी सभा ने जब हिन्दी विश्वकोश की योजना बनायी तो उसमें डॉ० गोरखप्रसाद तथा प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा को कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ किन्तु काफी अर्से बाद। पुनः मैं कहना चाहूँगा कि एक विज्ञानी मूलतः भविष्यद्रष्टा होता है। धनाभाव उसका मार्ग भले रोके रहे किन्तु सामयिक बात कहने में वह चूकता नहीं। ऐसे थे हमारे मनीषी जो विज्ञान परिषदों की अध्यक्षता करके मार्गदर्शन करा रहे थे।

डॉ० गोरखप्रसाद अपने इस भाषण में विज्ञान लेखकों की कुछ कठिनाइयों पर विशेष बल देते हैं। वे निरन्तर उनके उत्तरदायित्वों की याद दिलाते हैं "अभी हिन्दी वैज्ञानिक भाषा परिमार्जित नहीं हो पायी...इस कारण उनका उत्तरदायित्व जो वैज्ञानिक साहित्य निर्माण में लगे हैं, भारी है।" वे वर्तनी, उच्चारण, लिंग-वचन आदि के विषय में भी विस्तार से विवेचना करते हैं।

७. डॉ० सत्यप्रकाश का भाषण

द्वितीय महायुद्ध छिड़ चुका था। देश में राजनीतिक उथल-पुथल थी। डॉ० सत्यप्रकाश ने श्रोताओं को ललकारते हुए उन्हें सर्वप्रथम वैज्ञानिक परिषदों की भूमिका से परिचित कराया और खेद प्रकट किया कि भारत में अनेक वैज्ञानिक संस्थाओं के होते हुए भी उनका सहयोग नहीं लिया जा रहा। विदेश में ऐसी संस्थाएँ आर्थिक सम्पन्नता बढ़ाने तथा युद्ध की तैयारी करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उन्होंने आशा व्यक्त की "मैं तो उस दिन का स्वप्न देखना चाहता हूँ जबकि साहित्य सम्मेलन की इस परिषद् के संकेतों पर राष्ट्र का जीवन निर्भर हो।"

चूंकि यह अधिवेशन महाराष्ट्र (पूना) में हो रहा था अतः अध्यक्ष महोदय ने मराठी में हुई वैज्ञानिक प्रगति का भी उल्लेख किया और महाराष्ट्रियों द्वारा की गयी हिन्दी-सेवा की चर्चा की। यहीं नहीं, अन्य प्रान्तीय भाषाभाषियों से पारस्परिक सहयोग की आकांक्षा व्यक्त की "मैं यह चाहता हूँ कि उच्च साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी में लिखना वे गौरव मानें क्योंकि हिन्दी उनकी है और उनके राष्ट्र की भाषा है।" उन्होंने हिन्दी के तत्कालीन वज्ञानिक साहित्य की कुल पृष्ठ संख्या डेढ़ हजार के लगभग बतलायी और सूचित किया कि यह यूरोप के २०० वर्ष पूर्व के साहित्य के तुल्य भी नहीं है अतः सभी लोग पारस्परिक सहयोग के द्वारा साहित्य सृजन करें। यह सहयोग

दो प्रकार से हो सकता है—एक तो एक ही पारिभाषिक शब्दावली का समस्त प्रान्तों द्वारा उपयोग और दूसरा हिन्दी को वैज्ञानिक साहित्य का माध्यम स्वीकार करके। हिन्दी से उनका अर्थ सर्वसम्मत राष्ट्रभाषा से था। वे इस बात के पक्षधर थे कि हाईस्कूल तथा इण्टर तक प्रान्तीय भाषाओं में विज्ञान की शिक्षा दी जाय किन्तु कालेजों में हिन्दी भाषा का प्रयोग हो "मैं यह चाहता हूँ कि हिन्दी को कम-से-कम वह स्थान अवश्य प्राप्त हो जाय जो अब तक संस्कृत को मिलता रहा है।"

उन्होंने खेद व्यक्त किया अन्य प्रान्त वाले हिन्दी की प्रगति में बाधक हैं। "अहिन्दी भाषियों का वैज्ञानिक विभागों पर प्रभुत्व होना हिन्दी के माध्यम बनाने में सदा बाधक रहा है......अतः हिन्दीभाषी प्रान्तों में विश्व-विद्यालयों में उच्चाध्यापकों की नियुक्ति करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वे हिन्दीभाषी हों।"

उन्होंने हिन्दीभाषियों को झकझोरते हुए कहा, "जब तक उच्चकोटि के वैज्ञानिक कार्यों में हमारे हिन्दी भाषा-भाषी भाग न लेंगे और संसार के समक्ष अपनी योग्यता का परिचय न देंगे तब तक हिन्दी को गौरव नहीं मिल सकता।" उन्होंने स्पष्ट किया कि पहले तो कहा जाता था कि हिन्दी को माध्यम बनाने में सरकार की ओर से ही सारी अड़चनें हैं परन्तु अध्यापकों की ओर से और अधिक बाधाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। अध्यापकों की न परिश्रम करने की आदत के प्रति उन्होंने खेद व्यक्त किया। साथ ही, उन्होंने निःसंकोच भाव से बताया कि कांग्रेस ने न केवल मुसलमानों का पक्षपात किया अपितु हिन्दी के साथ अत्याचार भी किया। उन्होंने काका कालेलकर की नीति से असहमति व्यक्त की और स्पष्ट किया "साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं प्रत्युत राष्ट्र की दृष्टि से मैं यह चाहता हूँ कि भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रधानता उत्तरोत्तर बढ़ती जावे।......मैं तो संयुक्त प्रान्त में यह भी चाहता हूँ कि लोग उर्दू को भूल जावें।" उनका स्पष्ट मत था कि उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं के पारिभाषिक शब्द एक-से नहीं हो सकते। वे हिन्दु-स्तानी को भी व्यर्थ बताते हैं और तर्क देते हैं कि बोलचाल की भाषा से साहित्य का काम नहीं निकल सकता। उन्होंने हिन्दुस्तानी कमिटी द्वारा बनायी गयी शब्दावली का विहंगावलोकन कराते हुए 'चूमचाट्टी' शब्द की विशद व्याख्या की और उसे नितान्त उपहासास्पद बताया। उन्होंने पाश्चात्य शब्दों के संसर्ग से देश की बदलती भाषा को "इंग्लिस्तानी" नाम प्रदान किया। उन्होंने डॉ० अमरनाथ झा द्वारा प्रस्तुत किये विचारों से असन्तोष

व्यक्त किया कि वैज्ञानिक साहित्य में पाश्चात्य शब्दों का प्रवेश होता रहे। उन्होंने तर्क दिया कि यूरोप में ही तीन प्रकार की शब्दावलियाँ प्रचलित हैं— अंग्रेजी की, जर्मन की और रूस की। और यह कहना ठीक नहीं कि समस्त यूरोप में वैज्ञानिक शब्दावली लगभग एक-सी है। उन्होंने अंग्रेजी और जर्मन शब्दों की विस्तृत सूची देते हुए विभिन्नता की विशद व्याख्या की। अन्त में उन्होंने पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने विज्ञान विषयों के पठन में रुचि लेने वालों का अभाव बताया और सभी प्रान्त के विज्ञान-प्रेमियों को निमन्त्रण दिया कि पारिभाषिक शब्दावली बनाने में योग दें।

कुल मिलाकर डॉ० सत्यप्रकाश ने अपने भाषण में कुछ सर्वथा नवीन मुद्दों की चर्चा की जिनसे श्रोतागण लाभान्वित हो सके और भविष्य के लिए मार्ग सहज बन सका।

८. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल का भाषण

विज्ञान परिषद् के मञ्च पर आयुर्वेद को प्रतिष्ठित किये जाने और फिर देश के जाने-माने आयुर्वेदविज्ञ होने के नाते पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल को विज्ञान परिषद् का अध्यक्ष बनाये जाने पर प्रसन्नता होनी स्वाभाविक थी। शुक्ल जी ने आयुर्वेद की वैज्ञानिकता प्रतिपादित की और इस प्रसंग में एलोपैथी के विरुद्ध आरोपों का उल्लेख किया। उन्होंने प्राचीन काल में विज्ञान परिषदों के स्थान पर 'सम्भाषा परिषदों' का उल्लेख किया। इसके बाद उन्होंने भौतिक विज्ञान की परिभाषा एवं उसके क्षेत्र का विवरण दिया। यह परिचयात्मक विवरण आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी उपयोगी है।

शुक्ल जी ने विज्ञान की देनों की चर्चा करते हुए सञ्जय द्वारा हस्तिनापुर में बैठे-बैठे महाभारत का दृश्य देखने या कि जीवकवैद्य द्वारा शरीर के भीतर झाँकने के यन्त्रों के होने की तुलना आधुनिक विज्ञान के रेडियो या एक्स-रे उपकरणों से की। उन्होंने आजकल के हवाई जहाजों के प्रसंग में रावण के विमान की चर्चा की। उन्होंने आधुनिक कीट विज्ञान द्वारा रोगों के निदान में जो सहायता मिलती है उसकी प्रशंसा करते हुए अपने श्रोताओं को बताया कि आयुर्वेद के अनुसार रोगों की उत्पत्ति वात-पित्त-कफ के प्रकोप से होती है। आधुनिक शल्यक्रिया के प्रसंग में उन्होंने प्राचीन आयुर्वेद विद्या के विविध पक्षों से अवगत कराया। नाड़ी परीक्षा को उन्होंने भारतीय

वैद्यों की मौलिक देन बताया । उन्होंने विज्ञान के क्षेत्र में जगदीश चन्द्र वसु तथा आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के कार्यों की सराहना की ।

वैज्ञानिक साहित्य का भी उन्होंने सर्वेक्षण प्रस्तुत किया । उन्होंने आयुर्वेदिक विषयों पर प्रणीत साहित्य को अपर्याप्त बताया । कृषि विषयक ग्रन्थों के प्रणयन पर बल दिया । उन्होंने स्मरण दिलाया कि हमारा बहुत-सा वैज्ञानिक साहित्य संस्कृत में है अतः उसे अपनी राष्ट्रभाषा में ले आना अभीष्ट है । उन्होंने प्रसंगवश भाषा, पारिभाषिक शब्द आदि के विषय में भी सूझ-बूझ की बातें कहीं । अन्त में उन्होंने जो बात कही उससे यह आभास मिलता है कि विज्ञान परिषद् की योजना नाम के लिए होने के कारण लोग सन्दिग्ध हो उठे हैं और इस प्रकार की अन्य परिषदों की आवश्यकता नहीं रह गयी है । किन्तु उन्होंने समर्थन किया कि विज्ञान परिषद् में बारी-बारी से सारे विषयों पर विचार किया जाय ।

९. पं० सूर्यनारायण व्यास का भाषण

व्यास जी का भाषण संस्कृत पदावली से युक्त होने के कारण प्रारम्भ में अत्यन्त जटिल है किन्तु जब उन्हें काम की बात कहनी हुई तो भाषा सरल हो गयी है । उन्होंने खेद व्यक्त किया कि हमने पुराणों, उपनिषदों का सही-सही मूल्यांकन न करके उन्हें 'गल्प' मान रखा है । उन्होंने खगोल शास्त्र का विशद विवेचन किया और बताया कि यद्यपि आजकल ग्रहों की खोज में प्रचुर धन व्यय किया जा रहा है तो भी हमारे प्राचीन ऋषियों के अवलोकनों की बराबरी नहीं हो पा रही है ।

व्यास जी ने यूरोप की विविध यन्त्रवेधशालाओं की यात्रा के अनुभवों के आधार पर स्पष्ट किया कि जिस खगोल विज्ञान में भारत अग्रणी था, उसमें यूरोप के विज्ञानी अपूर्व उत्साह एवं जिज्ञासा से प्रवृत्त हैं । अतः व्यास जी की आन्तरिक इच्छा थी कि इस महान् शास्त्र की उपेक्षा न की जाय ।

१०. डॉ० सत्यप्रकाश का भाषण

पुणे के भाषण में डॉ० सत्यप्रकाश जी ने जो बातें कही थीं उसी शृंखला में ३ वर्ष बाद उन्हें कुछ बातें विस्तार से कहनी पड़ीं । उदाहरणार्थ उन्होंने हैदरी समिति की विस्तृत आलोचना की और बताया कि इसके परामर्श न तो नये हैं, न ही उनमें कोई विशिष्टता है । इसी प्रसंग में वे उर्दू वालों की प्रवृत्ति का जायजा लेते हैं और उस्मानिया यूनिवर्सिटी द्वारा वैज्ञानिक साहित्य

सृजन के विषय में जो नीति अपनायी गयी उसमें हिन्दी-क्षेत्र पर किसी प्रकार के प्रभाव न पड़ने की बात बताते हैं। उन्होंने इस धारणा का भी खण्डन किया कि हम पहले की अपेक्षा अब अपनी हिन्दी भाषा को अधिक संस्कृत-गर्भित बना रहे हैं। उन्होंने दाक्षिणात्य भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन का उल्लेख करते हुए बताया कि मद्रास सरकार ने सन् १९२३ में ही शब्दावली के स्थिरीकरण की योजना बनायी थी और १९३१ में यह कार्य पूरा हो चुका था। फलस्वरूप दक्षिण भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रणयन हो रहा है।

इस भाषण का महत्त्वपूर्ण अंश विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण से सम्बन्धित है। डॉ० साहब ने सूचित किया कि लखनऊ विश्वविद्यालय की साइन्स फैकल्टी ने वैज्ञानिक शिक्षण की ओर ध्यान दिया है किन्तु इसके लिए रोमन लिपि अपनाने का निश्चय किया है जो ठीक नहीं है। उन्होंने सुझाव रखा कि इलाहाबाद तथा बनारस विश्वविद्यालयों को चाहिये कि विज्ञान के छात्रों को कुछ हिन्दी सम्बन्धी शिक्षण का प्रबन्ध करें जिससे उन्हें हिन्दी में अध्ययन करने में सुविधा हो।

डॉ० सत्यप्रकाश विज्ञान परिषद् प्रयाग के कर्णधारों में से रहे हैं। वहाँ से प्रकाशित **विज्ञान** पत्रिका के वे सम्पादक रह चुके हैं अतः उन्होंने आवश्यकता देखते हुए हिन्दी में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका निकालने का सुझाव रखा। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि उनका यह स्वप्न १४ वर्ष बाद जाकर १९५८ ई० में पूरा हुआ जब विज्ञान परिषद् प्रयाग ने ही "विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका" का प्रकाशन उन्हीं के सम्पादकत्व में प्रारम्भ किया। तब से यह पत्रिका निरन्तर प्रकाशित हो रही है और उसे राष्ट्रभाषा हिन्दी में एकमात्र वैज्ञानिक शोध पत्रिका होने का गौरव प्राप्त है।

११. महावीरप्रसाद श्रीवास्तव का भाषण

श्रीवास्तव जी विज्ञान और धर्म की परिभाषा से प्रारम्भ करते हुए विज्ञान को निर्दोष बताते हैं और विज्ञान का दुरुपयोग करने वालों की भर्त्सना करते हुए एटमबम के दुरुपयोग न होने की कामना करते हैं। वे मिथ्या विश्वासों पर विज्ञान द्वारा कुठाराघात का पक्ष लेते हैं। वे पुराणों में वर्णित सप्तर्षि के चलने का उल्लेख करते हुए बताते हैं कि आधुनिक प्रेक्षणों से इस विचार की पुष्टि नहीं होती। वे विज्ञान की शिक्षा के लिए हिन्दी ग्रहण किये जाने को अनिवार्य बताते हैं और विज्ञान परिषद्, प्रयाग क

प्रयासों की सराहना करते हैं (कारण कि आपका सम्बन्ध विज्ञान परिषद् से था और उस समय विज्ञान परिषद् ही एकमात्र वैज्ञानिक संस्था थी जो हिन्दी के माध्यम से विज्ञान प्रचार-प्रसार कर रही थी और वैज्ञानिक पुस्तकें लिखा रही थी)।

श्रीवास्तव जी अपने भाषण में दो प्रकार की विज्ञान ग्रन्थमालाओं की संस्तुति करते हैं—एक तो विद्वानों के लिए उच्चकोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थ जिनसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी बढ़े और हमारा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठे और दूसरे वे जिनसे हमारे गाँवों में रहने वाले किसानों तथा शहरों में रहने वाले कलाकारों का लाभ हो।

उनका विचार है कि बी० एस-सी० तथा एम० एस-सी० छात्रों को अनिवार्य रूप से हिन्दी पढ़ायी जाय जिससे वे विश्वविद्यालय में हिन्दी में अपने भाव ठीक से व्यक्त कर सकें। उन्होंने वैज्ञानिक पारिभाषिक कोश की आवश्यकता पर बल दिया और सूचना दी कि भारतीय हिन्दी परिषद् द्वारा डॉ० सत्यप्रकाश के सम्पादकत्व में ऐसा कोश तैयार हो रहा है।

वे इस विचार से सहमत नहीं कि अंग्रेजी के शब्दों को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया जाय। वे कहते हैं "अंग्रेजी के हजारों जटिल वैज्ञानिक शब्दों को ज्यों-का-त्यों लेने से हमारी स्मरण शक्ति को व्यर्थ ही अनावश्यक बोझे से लादना कहाँ की बुद्धिमानी है?"

वे अंग्रेजी या रोमन अंकों के प्रयोग के विरोधी हैं। वे कहते हैं "हम अभी से बतला देना चाहते हैं कि हिन्दी पुस्तकों में प्रयुक्त होने वाले अंक हमारे अपने हों······साहित्य सम्मेलन इस पर एक प्रस्ताव स्वीकृत करे और यहाँ के शिक्षा विभाग को बतलावे कि भविष्य में हिन्दी में लिखी विज्ञान, गणित आदि की पुस्तकों में रोमन अंकों का व्यवहार न किया जाय। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन भी इसी विचारधारा के थे किन्तु अन्ततः नागरी अंकों को सरकारी मान्यता नहीं मिली और आज रोमन अंकों का ही प्रयोग धड़ल्ले से होता है।

१२. चन्द्रशेखर वाजपेयी का भाषण

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद दिये गये इस भाषण में विज्ञान की उपयोगिता बताने के बाद विज्ञान के 'कृष्ण पक्ष' को उभाड़ते हुए वाजपेयी जी कहते हैं "युद्ध ने विज्ञान को कलंकित कर दिया है।" वे विविध क्षेत्रों में विज्ञान की व्यवहार्यता का वर्णन करते अघाते नहीं। वे विज्ञान और धर्म, विज्ञान

और दर्शन, विज्ञान और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्धों का मनोयोग से वर्णन करते हैं और साहित्य के प्रसंग में बड़े मार्के की बात कहते हैं, "विज्ञान ही इस बात के कहने का अधिकारी हो सकता है कि जो भी देश-काल के विरुद्ध विषयों का वर्णन करता है वह लोकशास्त्र का व्यतिक्रम करके दोषी ठहराया जा सकता है। साहित्यकारों को भी निरंकुश नहीं होना चाहिए। 'कवि समय' तथा 'काव्य समय' की अनर्गल बातों के प्रचार को रोकना ही अभीष्ट है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में उनका कोई स्थान नहीं रह गया।"

"नायक और नायिका के वर्णन में मनोविज्ञान शास्त्र का उल्लंघन कवियों ने किया है। शरीर रचनाशास्त्र की शिक्षा से प्राय: सभी साहित्यकार अनभिज्ञ मालूम होते हैं—विशेषकर उर्दू के कवि। दिल, हृदय, कलेजा, जिगर आदि एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं।"

विज्ञान परिषद् के पूर्व अधिवेशनों में वैज्ञानिक साहित्य के संवर्द्धन के लिए प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा ने जो दसवर्षीय योजना प्रस्तुत की थी उसका समर्थन करते हुए वाजपेयी जी परिस्थिति को देखते हुए एक पञ्चवर्षीय योजना का प्रस्ताव रखते हैं और साहित्य सम्मेलन को यह योजना अपने हाथों में लेने को कहते हैं।

सम्भवत: वाजपेयी जी पहले व्यक्ति हैं जो यह अनुभव करते हैं कि वैज्ञानिक साहित्य का समावेश साहित्य में किया जाय। वे स्पष्ट कहते हैं कि वैज्ञानिक विशुद्ध साहित्य में क्लिष्टता अवश्यम्भावी है।

काश कि आज के साहित्यकार तथा राजनीतिज्ञ वाजपेयी जी की इन स्पष्टोक्तियों पर बारम्बार विचार करते।

१३. डॉ० ब्रजमोहन का भाषण

यह भाषण एक गणितज्ञ द्वारा भारत को स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के बाद दिया गया अत: इसका विशेष महत्त्व है। डॉ० साहब का विशेष बल वैज्ञानिक साहित्य के सृजन पर है और वे इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण कार्य की दुरूहता की ओर श्रोताओं का ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे ऐसी शब्दावली के निर्माण की योजना प्रस्तुत करते हैं और आशा करते हैं कि १० वर्षों में यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। वास्तव में डॉ० साहब स्वयं गणित-शब्दावली का वर्षों से मन्थन करते रहे हैं। उनका दृढ़ निश्चय है कि अंग्रेजी शब्दावली से हमारा कार्य एक दिन भी नहीं चल सकता। वे "भविष्य

की पीढ़ियों" के प्रति विशेष सतर्क हैं । जो लोग कहते हैं राष्ट्रों के साथ सम्बन्ध बनाये रखने के लिए अंग्रेजी को बनाये रखा जाय उनको वे इस प्रकार का जवाब देते हैं "क्या हम इन १ प्रतिशत व्यक्तियों के कारण देश के ९९ प्रतिशत निवासियों पर एक जटिल विदेशी भाषा की दुरूह वैज्ञानिक शब्दावली लाद दें ?" डॉ० साहब ने देश में वैज्ञानिक शब्दावली के विषय में किये जा रहे प्रयासों का उल्लेख किया और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा १८९८ ई० में नियुक्त समिति द्वारा पारिभाषिक शब्द तैयार किये जाने और १९३१ में उसके पूर्ण होने की बात बतायी । उन्होंने सुझाव रखा कि एक वैज्ञानिक शब्दावली समिति बनायी जाय जो नागरी प्रचारिणी सभा के सहयोग से देश की समस्त शब्दावलियों का अध्ययन करे ।

डॉ० ब्रजमोहन का यह सुझाव कुछ ही वर्ष बाद फलित हो गया जब भारत सरकार की ओर से १९५० ई० में पारिभाषिक शब्दावली निर्माण समिति का गठन किया गया जिसमें हिन्दी के विज्ञान-सेवियों को सम्मानपूर्वक आमन्त्रित किया गया ।

१४. आयुर्वेदाचार्य घाणेकर जी का भाषण

घाणेकर जी आयुर्वेद के लेखक तथा अध्यापक रहे हैं । उन्होंने अपने अध्यापन तथा लेखन से जो अनुभव प्राप्त किये हैं उसी से आधार पर उन्होंने हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के प्रणयन की आवश्यकता पर बल दिया है । वैद्यक शिक्षा का हिन्दी में शुभारम्भ अति शीघ्र हो, इसके लिए वे व्यग्र हैं । पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में वे संस्कृत से शब्दों को ग्रहण करने के पक्षपाती हैं । उसमें साहित्य और विज्ञान का समुचित सङ्गम दिखायी पड़ता है ।

घाणेकर जी ने सुझाव रखा कि सम्मेलन की विज्ञान परिषद् का वास्तविक स्थान तो भारतीय विज्ञान परिषद् है अतः ऐसे प्रयास किये जायँ कि भारतीय विज्ञान परिषद् में हिन्दी को स्थान मिले ।

घाणेकर जी का यह प्रस्ताव अत्यन्त प्रासंगिक था किन्तु इस पर शायद ही किसी ने ध्यान दिया हो । विज्ञान परिषद्, प्रयाग ने १९५८ से भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अन्तर्गत 'विज्ञान गोष्ठी' का आयोजन करना प्रारम्भ किया है जिससे उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति होती है ।

१५. डॉ० श्रीरंजन का भाषण

भौतिकी, रसायन तथा कृषि विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का उल्लेख करते हुए डॉ० श्रीरंजन ने कृषि विज्ञान के विषय में विशेष

सूचनाएँ प्रस्तुत कीं । उन्होंने अपनी प्रयोगशाला द्वारा विकसित गेहूँ की कुछ प्रजातियों का उल्लेख किया । वस्तुतः यह भाषण उस कोटि का है जो सामान्यतः वैज्ञानिक समितियों या भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशनों के समक्ष दिया जाता है जिसमें अध्यक्ष को अपने-अपने विषय में की जाने वाली खोजों का विवरण देना होता है ।

उन्होंने जो सबसे सामयिक बात कही वह यह कि यद्यपि सम्मेलन ने परीक्षाओं में विज्ञान विषयों को मान्यता दे रखी है किन्तु वैज्ञानिक साहित्य के विकास के लिए कोई कार्य नहीं किया । उन्होंने वैज्ञानिक शब्दावली कोश निर्माण की दिशा में सम्मेलन को पहल करने की संस्तुति की ।

१६. कविराज प्रतापसिंह जी का भाषण

प्राचीन भारत में जीव विज्ञान (आयुर्वेद) का जिस प्रकार आविष्कार हुआ और उसके फलस्वरूप आर्य जगत् जिस प्रकार स्वास्थ्य लाभ कर सका उसकी चर्चा करते हुए कविराज जी ने रसशास्त्र का उल्लेख किया और ऐसे अनेक योगों की सूची दी जिनके सेवन से मनुष्य शरीर स्वस्थ रह सकता है ।

कविराज को यू० पी०, बिहार तथा राजस्थान में चिकित्साशास्त्र का दीर्घकालीन अनुभव (३८ वर्ष का) है अतः वे चाहते हैं कि सम्मेलन प्रयाग में आयुर्वेदिक शिक्षणालय निर्माण करे जिसमें अष्टाङ्ग आयुर्वेद की शिक्षा हिन्दी के माध्यम से दी जाय ।

१९५० के बाद

वस्तुतः विज्ञान परिषदों में समय-समय पर जो कुछ कहा गया या जो जो आशाएँ व्यक्त की गयी थीं उनमें से बहुत बड़े अंश की पूर्ति हो चुकी है । इन व्याख्यानों में 'दशवर्षीय या पंचवर्षीय'' योजना तथा 'पारिभाषिक शब्दावली' को लेकर जो उधेड़-बुन होती रही है उसका समाधान हो चुका है । १९७० में हिन्दी प्रदेशों में ग्रंथ अकादमियों की स्थापना करके केन्द्रीय सरकार की ओर से एक-एक करोड़ रुपये की राशि प्रदान की जा चुकी है जिससे विश्वविद्यालय स्तर की पाठ्य पुस्तकें तैयार की गयी हैं । पारिभाषिक शब्दावली के लिए १९५० ई० में ही शिक्षा मन्त्रालय ने 'वैज्ञानिक शब्दावली बोर्ड' की स्थापना करके उसमें चुने हुए वैज्ञानिकों एवं शिक्षाविदों को रखकर विभिन्न समितियों के अन्तर्गत अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के लिए हिन्दी

समानार्थक शब्द चुनने या गढ़ने का कार्य समाप्त कर लिया गया है । अब विज्ञान के विविध अंगों—गणित, भौतिकी, रसायन, वनस्पति तथा आयुविज्ञान की पृथक्-पृथक् एवं समेकित शब्दावलियाँ छप चुकी हैं । इन शब्दावलियों के प्रकाशन से एक बहुत बड़ा गतिरोध दूर हुआ है और सरकार ने संस्तुति की है कि भारत की विभिन्न भाषाएँ इन शब्दावलियों का उपयोग करें जिससे एकरूपता उत्पन्न हो जो वैज्ञानिक लेखन एवं अध्ययन-अध्यापन के लिए मूलभूत आवश्यकता है

कुछ विश्वविद्यालयों ने हिन्दी को समस्त विषयों के अध्ययन एवं परीक्षा का माध्यम भी स्वीकार कर लिया है और विद्यार्थियों को छूट दी गयी है कि वे चाहें तो हिन्दी में प्रश्नोत्तर लिख सकते हैं । यहाँ तक कि अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवाओं की प्रतियोगिता परीक्षाओं में भी वैज्ञानिक विषयों को हिन्दी या प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग करने की छूट है । यदि कोई अवरोध है तो सरकार की भाषा सम्बन्धी ढुलमुल नीति है जिसके कारण वैज्ञानिक विषयों के लिए हिन्दी को अनिवार्य नहीं बनाया जा सका । कुछेक अध्यापक भी इस ओर से उदासीन हैं । अनुवाद के क्षेत्र में भी शिथिलता बरती जाती है जिसके कारण अनूदित पुस्तकों की प्रामाणिकता सन्देहास्पद बनी हुई है । कुछ लोग पारिभाषिक शब्दों की दुरूहता का अब भी रोना रोते हैं और अधिकांश लोग जो कुछ लिखा जा चुका है, उसे न तो पढ़ते हैं और न उससे सन्तुष्ट हैं । यही कारण है कि हिन्दी ग्रंथ अकादमियों द्वारा प्रकाशित अधिकांश वैज्ञानिक कृतियाँ मालगोदामों में सड़ रही हैं ।

तो भी १९४७ के पश्चात् हिन्दी में जो वैज्ञानिक साहित्य रचा गया है उसकी कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं—यथा उच्चकोटि के लेखकों का हिन्दी में पदार्पण, भाषा एवं शैली में स्पष्टता तथा प्रवाह, मौलिक लेखन तथा अनुवाद । प्रकाशकों ने भी जो पुस्तकें प्रकाशित की हैं उनके बाह्य आवरण आकर्षक तथा सुसज्जित एवं उनके आकार बृहत् हैं जिससे कि वैज्ञानिक विषयों को चित्रों से समन्वित किया जा सका है । आज ऐसी अनेक पुस्तकें प्राप्त हैं जो विदेशी पुस्तकों से होड़ ले सकती हैं ।

अभी तृतीय विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर भारत की सबसे बड़ी वैज्ञानिक संस्था सी० एस० आई० आर० नई दिल्ली ने १९६६ से १९८० की अवधि में प्रकाशित वैज्ञानिक पुस्तकों एवं वैज्ञानिक पत्रिकाओं की जो निदेशिका छापी है उससे पता चलता है ३३४४ पुस्तकें लिखी गयीं और ३२० पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं । १९६६ तक ऐसी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं की

संख्या क्रमश: २२५६ तथा ८१ थी। इसको देखते हुए हमें सन्तोष होना चाहिए कि पुस्तकों के प्रणयन में आशातीत वृद्धि हुई है। उक्त सूची में चिकित्सा विज्ञान की ४५३ तथा इंजीनियरी से सम्बन्धित २६१ पुस्तकें हैं किन्तु यह अत्यन्त लज्जा की बात है कि इन्हीं दो क्षेत्रों में हिन्दी का उपयोग सबसे कम हो रहा है। अत: जब लोग वैज्ञानिक साहित्य का अभाव बताकर यथार्थ को छिपाना चाहते हैं तो यह रोष उत्पन्न होने की बात है। डॉ० गोरख-प्रसाद तथा फूलदेवसहाय वर्मा ने जनोपयोगी साहित्य के लिए जो स्वप्न देखे थे वे साकार हो चुके हैं। देहाती भण्डार ने इतनी पुस्तकें हिन्दी में छापी हैं कि बाजार पटा हुआ है। कृषि विषयक पुस्तकों के लिए डॉ० श्रीरंजन ने जो स्वप्न देखे थे वे भारतीय कृषि अनुसन्धान परिषद् दिल्ली तथा पन्तनगर कृषि विद्यालय के हिन्दी प्रकाशनों से पूरी तरह पूरे होते हैं। यही नहीं, १९४० में डॉ० सत्यप्रकाश ने हिन्दी में वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका का जो सुझाव रखा था वह भी १९५८ ई० में पूरा हो चुका है। डॉ० गोरखप्रसाद का हिन्दी विश्वकोश का सपना भी पूरा हो चुका है। सी० एस० आई० आर० नई दिल्ली की ओर से "भारत की सम्पदा" के मनोहारी ७ खण्ड छप चुके हैं। कई एक हिन्दी कोश वैज्ञानिक विषयों पर निकल चुके हैं। 'विज्ञान' तथा 'विज्ञान प्रगति' मासिक पत्रिकाएँ जनसाधारण में विज्ञान विषयक सामान्य चेतना का प्रसार कर रही हैं और 'खेती', 'किसान भारती' तथा 'कृषि और पशुपालन' कृषि-जगत् को वांछित सूचनाएँ देती रहती हैं।

अब एक ही बात करनी शेष है। देश के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को अपने मन से इस झिझक को निकाल फेंकना है कि हिन्दी के माध्यम से वे विदेशों में ख्याति प्राप्त नहीं कर सकेंगे। फ्रेंच, जर्मन तथा रूसी भाषाभाषी क्या कभी ऐसा सोचते हैं ? हिन्दी को राष्ट्र की रग-रग में व्याप्त करना होगा, उसी में मरना और जीना होगा तभी भारत देश प्राचीन वैभव को प्राप्त कर सकेगा और अग्रणी राष्ट्रों की पंक्ति पर आसीन होगा।

यह संकलन

सम्मेलन के प्रधानमन्त्री श्री प्रभात शास्त्री ने मुझसे अनुरोध किया कि विज्ञान परिषद् के समक्ष दिये गये भाषणों का सम्पादन करके भूमिका लिख दूँ। मैं उनका आभारी हूँ कि मुझे उन्होंने अवसर दिया कि मैं इसी बहाने कुछ साहित्य सेवा कर सकूँ। मैंने प्रयास किया है कि यह संकलन सभी तरह से परिपूर्ण बने अतः सर्वप्रथम मैंने 'विज्ञान' की फाइलों से हीरालाल खन्ना तथा

रामदास गौड़ के भाषण खोज निकाले । फिर सभी सभापतियों के जीवनवृत्त एवं उनके कृतित्व की झाँकी प्रस्तुत करने के उद्देश्य से अपनी सूझबूझ के अनुसार सामग्री संचित की । बहुत प्रयास करने पर भी मुझे तीन व्यक्तियों के जीवनवृत्त नहीं मिल पाये, एतदर्थ मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ ।

मैंने भाषणों के नीचे यत्र-तत्र टिप्पणियाँ दे दी हैं, अंग्रेजी अंशों का हिन्दी रूपान्तर कर दिया है और यत्र-तत्र शीर्षक भी जोड़ दिये हैं ।

भूमिका लिखते समय मैंने सम्मेलन के इतिहास के साथ ही विज्ञान परिषद्, प्रयाग का भी इतिहास जोड़ दिया है । ऐसा जानबूझ कर किया है । भूमिका के प्रारम्भ में और अन्त में मैंने उस वैज्ञानिक परिवेश का चित्रण करना समीचीन समझा जो उस समय रहा होगा या इस समय है ।

मुझे प्रसन्नता है कि विज्ञान परिषद्, प्रयाग से सम्बन्धित होने और वैज्ञानिक लेखन का कुछ अनुभव होने के कारण मैंने इस कार्य को अपनी सामर्थ्य भर निभाने का यत्न किया है । यदि इस कार्य से पाठकों को सन्तोष मिल सका तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूँगा ।

इलाहाबाद
भइयादूज, २६ अक्टूबर, १९८४ —शिवगोपाल मिश्र

अभिभाषण*–१

हीरालाल खन्ना

उचित शब्दों के अभाव से मैं आप महानुभावों के प्रति यथेष्ट कृतज्ञता प्रकट करने में असमर्थ हूँ। अपनी वास्तविक दशा का अनुभव कर मैं भयभीत हो रहा हूँ। आपने तो अपने प्रेम से मुझे यहाँ ला बिठाला, किन्तु अपनी सामर्थ्यहीनता और अनभिज्ञता का ध्यान कर मैं घबड़ा रहा हूँ और आपकी रक्षा का इच्छुक हूँ। यदि किसी क्रियाशील अनुभवी सज्जन ने इस आसन को सुशोभित किया होता तो विज्ञान-परिषद् के **इस प्रथम अधिवेशन का कहीं अधिक गौरव होता।** वैज्ञानिक साहित्य के नभोमण्डल में प्रज्वलित और कान्तिमय ताराओं के समक्ष एक टिमटिमाते हुए चिराग का आगे बढ़ने का साहस नहीं पड़ता। **इस आसन के योग्य सबसे पहला नाम मुझे श्री रामदास गौड़ का याद आता है।** वैज्ञानिक क्षेत्र में जो सेवाएँ गौड़ जी ने की हैं वे अनुपम और अद्वितीय हैं। **विज्ञान परिषद्, प्रयाग** के वह केवल संस्थापकों में ही नहीं हैं वरन् आदि-काल में उसके संचालन और **'विज्ञान'** पत्रिका के सम्पादन का पूरा भार आप ही पर था। आपकी पुस्तकों और लेखों के पढ़ने से अथक परिश्रम का पता चल सकता है। सरल भाषा में सुबोध ढङ्ग से लिखकर आपने भावी लेखकों को एक अनुकरणीय परिपाटी विज्ञान के प्रचार के लिए दिखा दी है। ऐसे योग्य व्यक्ति का इस समय इस आसन पर होना उचित ही नहीं, आवश्यक भी था।

डॉ० गणेशप्रसाद जी भी एक प्रख्यात गणितज्ञ और हिन्दी-प्रेमी हैं। उच्चकोटि के गणित पर लार्ड मेस्टन के सभापतित्व में हिन्दी में एक सुन्दर भाषण देकर, आपने यह सिद्ध किया था कि मातृभाषा द्वारा हर प्रकार की वैज्ञानिक खोज का काम सुगमता से किया जा सकता है। डॉ० साहब का आदर करके यह सभा उनके हिन्दी-प्रेम को और भी अग्रसर कर सकती थी। श्रीयुत शालिगराम जी भार्गव, श्री ब्रजराज जी, बाबू गोपालस्वरूप जी भार्गव, डॉ० निहालकरण जी सेठी अथवा बाबू महावीरप्रसाद

***२१वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९८८, झाँसी अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

श्रीवास्तव आदि विज्ञान-सेवियों में से कोई भी एक सज्जन आज के सभापति का आसन कहीं अधिक गौरवपूर्वक ग्रहण कर सकते थे। **मेरा तो सारा विज्ञान-ज्ञान एक साधारण गणित का शिक्षक होना है और सारी हिन्दी-सेवा केवल इतनी है कि मैं साहित्य सम्मेलन और विज्ञान परिषद्, प्रयाग के संचालन में आदि से एक सिपाही का काम करता रहा हूँ।** ऐसी अवस्था में मेरी अपील आप ही से है कि आप मुझको दया का पात्र समझकर रक्षा कीजिये।

हमारा शरीर निरन्तर बनता-बिगड़ता रहता है। जब उसका बनना रुक जाता है, उसी समय से वह नष्ट होने लगता है। हम लोगों की भाषा की स्थिति भी हमारे ही समान है। उसके साहित्य में भी नित्य बनने और बिगड़ने का तार लगा रहता है। जैसे मनुष्य अपने शरीर के अंगों को व्यायाम से पुष्ट करता है और बनाता है वैसे भाषा के अंगों को भी बलवान और पुष्ट रखने के लिए आवश्यकता होती है।

समयानुसार हिन्दी के जिस अंग की जितनी उन्नति चाहिये थी बराबर उसके हितैषी स्वभावतः उसकी ओर दत्तचित्त रहे। पर खेद की बात है कि और अंगों की अपेक्षा **हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक अंग अत्यन्त बलहीन और अपूर्ण है**। इस अपूर्णता की कीर्ति के लिए ही इस विज्ञान परिषद् का आज आयोजन हुआ है।

विज्ञान क्या है? वैज्ञानिक साहित्य के और विज्ञान-ज्ञान के अभाव से हमारी क्या हानि है? इन प्रश्नों का उत्तर मैं अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार इस स्थान से देने की चेष्टा करता हूँ।

विज्ञान क्या है?

सृष्टि के आदि काल से मनुष्य का यह प्रयत्न रहा है कि वह अपने चारों ओर की वस्तुओं को समझे और उनसे लाभ उठावे। जैसे-जैसे उसको नये अनुभव होते गये उसका ज्ञान बढ़ता गया। प्रकृति की नवीन और बड़ी वस्तुओं से परिचय होने ही से मनुष्य की मस्तिष्क-शक्ति बढ़ती है। इस प्रकार प्रयोग, विधान, जाँच-पड़ताल, देख-भाल तथा गणित बल से अपना ज्ञान बढ़ाना ही विज्ञान का मूल कारण हुआ।

विज्ञान हमें बताता है कि प्रकृति अपने कार्यों में सर्वव्यापकता का लिहाज रखती है और किसी एक व्यक्ति की कुछ रियायत नहीं करती वरन् उन व्यक्तियों को अपने कार्य साधन का मार्ग बनाती है। प्रत्येक वस्तु अचल

अवस्था में है, बिगड़ने के बाद फिर बनती है और बनने के बाद बिगड़ती है। ऐसी दुनिया में जहाँ प्रत्येक वस्तु मरती है, प्रत्येक के लिए शोक करना व्यर्थ है। जैसे एक जल-प्रपात साल-दर-साल अपना एक ही-सा रूप रखता है यद्यपि उसका जल सदैव बदला करता है वैसे ही प्राकृतिक संसार में पदार्थों के बहाव के सिवाय कुछ नहीं है। प्राकृतिक वस्तुओं के जो रूप हम देखते हैं वे क्षणिक हैं और मिट जाने वाले हैं।

एक वैज्ञानिक अपने समय के विचारों का व्यर्थ खण्डन-मण्डन नहीं करता। वह केवल इतना जान लेता है कि संसार में एक सर्वमान्य शक्ति तो है, पर सर्वोच्च व्यक्ति नहीं है। यहीं एक अदृष्ट सिद्धान्त के लिए यह धारणा करना कि उसका रूप, विचार और मनोभाव आदमियों के-से हैं एक संकुचित दृष्टिकोण का परिचय देता है। जिसको मनुष्य दैवयोग कहते हैं, यह केवल अज्ञात कारण का प्रतिफल है, जिसको खोज निकालना ही विज्ञान का लक्ष्य है। प्रकृति अरोक नियमों के साथ आगे बढ़ती है। उस जीवन शक्ति को जो संसार में फैली है, लोग ईश्वर कहते हैं। मनुष्य की जीवात्मा एक सजीव ज्वाला, अर्थात् उस जीवन सिद्धान्त की एक चिनगारी मात्र है। शक्ति (energy) के समान वह एक-दूसरे में जाती है और अन्त में उसी सर्वव्यापी वस्तु में मिल जाती है, जिससे वह निकली थी। हिन्दू संस्कृति का यही आवागमन का सिद्धान्त है। इसलिए हमें विनाश का डर न होना चाहिए वरन् उसी ज्योति में मिल जाने की शुभ अभिलाषा होनी चाहिए।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो धर्म और व्यावहारिक विज्ञान के लक्षण में कोई अन्तर नहीं है, केवल विचारधारा की विधि में भेद है। धार्मिक प्रथा सर्वव्यापी वस्तुओं से प्रारम्भ होती है और इन सर्वव्यापी वस्तुओं का अस्तित्व एक विश्वास की बाढ़ है। इनसे उतर कर वह प्रथा विशेष-विशेष और छोटी-छोटी वस्तुओं पर जाती है। इसके प्रतिकूल विज्ञान, अनुमान और अनुसन्धान की सहायता से बढ़ता हुआ छोटी-छोटी वस्तुओं से सर्वव्यापी वस्तुओं तक पहुँचता है। धर्म कल्पना शक्ति का भरोसा करता है, विज्ञान बुद्धि, प्रयोग और खोज का आसरा ढूँढ़ता है। धर्म प्राथमिक विचार के विच्छेदन से उतरता हुआ विशेष वस्तुओं तक आया है और विज्ञान विशेष वस्तुओं का समूह जमा करके सर्वव्यापी विचार बनाता है।

घटनाओं के इकट्ठा करने में अनन्त परिश्रम दिखाई देता है, देखने-भालने, अनुभव करने और प्रमाण के लगाने में बड़ी थकावट जान पड़ती है। इसलिए वैज्ञानिक मार्ग बहुत मन्दगामी है परन्तु है बहुत दृढ़मूलक।

इतिहासज्ञों से यह बात छिपी नहीं है कि पूर्वकाल में इस देश का विज्ञान भण्डार परिपूर्ण था, भाँति-भाँति के कला-कौशल एवं शिल्प का प्रचार था। किन्तु समय सबका समान नहीं जाता। भारतीय अपने बड़प्पन के मद में समय के साथ चलना भूल गये। भीतरी झगड़ों में व्यस्त होकर संसार की गति से बेसुध हो गये। जो पीछे थे आगे हो गये और **भारत अपनी प्रगाढ़ निद्रा में पड़ा रहा। परिणाम रूप में विज्ञान के अभाव से गत पन्द्रह सौ वर्षों में हम कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये।** इसी विज्ञान के बल से पश्चिमी देशों ने धीरे-धीरे हमारे हाथ से एक-एक करके सारी कारीगरी छीन ली। जिसे हम हाथ से वर्षों में बनाते थे, मिनटों में बनाकर रख दिया। जिस भारत में कपड़े बनवा कर, छीटें छप कर अन्य देश अपना तन ढँकते थे आज उसी भारत को अपने लिये कपड़ा बाहर से मँगवाना पड़ता है। नमक, शक्कर आदि खाने की चीजों तक के लिए आज कल-बल के न होने से भारत और देशों का मुँह ताकता है। सुई और डोरे तक के लिए हमें जापान जाना पड़ता है। हमारे यहाँ से नील संसार भर लेता था। विज्ञान के बल से जर्मनी ने नकली रंग बना कौड़ियों के मोल बेच कर नील की खेती को तहस-नहस कर डाला। **विज्ञान की ओर हमारी निगाह न होने से जो-जो दुर्दशा हमारी हुई वह संसार को आँखें उघार-उघार कर देखने से जान पड़ती है।** जिस विज्ञान की अवहेलना से हम इस अधोगति को प्राप्त हुए, उसी विज्ञान को बलिवेदी पर अपने सपूतों को न्यौछावर कर देने की तत्परता ने पश्चिम को पश्चिम बना रखा है। इसी विज्ञान के लिए सुकरात विष देकर मारा गया, इसी विज्ञान के लिए ब्रुनो जीता जला दिया गया, इसी विज्ञान के लिए गेलिलिओ का देश-निकाला हुआ, इसी के लिए यूरोप के अनेक विद्वानों को भाँति-भाँति के कष्ट, तरह-तरह की यातनाएँ दी गयीं। यही विज्ञान जिसके लिए इसके इतने भक्त बलि हुए, अपनी जीवन प्रदान की भूमि यूरोप में गत सौ वर्षों से ऐसा फैला, जो अकथनीय है। इसके प्रसाद रूप में जिधर देखिये उधर आश्चर्य-ही-आश्चर्य दिखलाई पड़ते हैं। जहाँ पर पहले बबूल से काँटे और करील के फल लगते थे, जहाँ पर कटैया के जंगलों के अतिरिक्त कुछ दिखलाई न देता था, वहाँ आज पके फलों से लदे हुए लहलहाते उद्यान नन्दन-वन को मात कर रहे हैं। जिन देशों में दुर्गम मार्गों और अन्य कठिनाइयों के कारण जाना दुष्कर था वे ही स्थान आज साधारण जन-समुदाय के क्रीड़ा-स्थल हो रहे हैं। हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटी पर अपनी पताका फहराने को वैज्ञानिक धर्मराज युधिष्ठिर से बाजी बद रहा है। अफ्रीका के विकट

जंगलों में, आस्ट्रेलिया के निर्जन बनों में वह आनन्द मना रहा है । सभ्य संसार की तो उसने काया-पलट ही कर रखी है । समस्त संसार अधिक संघटित होता जा रहा है । एक देश के एक कोने में ही बैठ कर सारे संसार की घटनाएँ सहज ही में मालूम होती हैं । यान्त्रिक बल से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने में कुछ कठिनाई नहीं होती । समुद्र और पहाड़ों के भौतिक प्रबन्ध टूटते जा रहे हैं और सारा संसार एक विशाल नगर में परिणत हो रहा है । संगठन और सहकारिता के कारण ज्ञान की सीमा भी दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है ।

वैज्ञानिक साहित्य

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की आवश्यकता इसलिए और भी है कि साधारण जन-समुदाय में वैज्ञानिक विचारों का प्रचार भली-भाँति हो सके। हमारे मामूली कारीगर भी वैज्ञानिक सिद्धान्तों को समझ कर उनके द्वारा अपने-अपने कार्य में विशेष कुशलता प्राप्त कर सकें ।

वर्तमान वैज्ञानिक साहित्य की जो स्थिति है, थोड़े शब्दों में उसका दिग्दर्शन करा देना आवश्यक प्रतीत होता है । प्राचीन विज्ञान पर हमारी भाषा में पुस्तकों की कमी नहीं है । संस्कृत के ज्योतिष ग्रन्थों के सिवा हिन्दी में दो-एक स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं । इनमें सबसे उत्तम मनोरञ्जन पुस्तकमाला की 'ज्योति-विनोद' नामक पुस्तक है । फलित ज्योतिष से सर्वसाधारण को विशेष रुचि नहीं है । गणितमय ज्योतिष ग्रन्थ तो तभी उपयोगी हो सकते हैं जब 'मान-मन्दिर' के यन्त्रों के आधार पर वह लिखे जायँ और हमारे ज्योतिषी स्वयं ही दृढ़ गणित से काम लें ।

अंग्रेजी के माध्यम होने पर भी प्रारम्भिक शिक्षा में देशी भाषाओं का रखा जाना अनिवार्य था । आवश्यकतानुसार छोटी-छोटी सुबोध पुस्तकें बनने लगीं । १८६० ई० में पहली पुस्तक 'सरल विज्ञान विटप' के नाम से प्रकाशित हुई । उसी समय काशी के पण्डित मथुराप्रसाद जी मिश्र जी ने कई एक छोटी-छोटी आधुनिक विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें लिखीं । १८८३ ई० में मुंशी नवल किशोर ने एक रसायन सम्बन्धी ग्रन्थ अपने प्रेस से प्रकाशित किया । पण्डित लक्ष्मीशंकर मिश्र ने त्रिकोणमिति पर एक सुन्दर ग्रन्थ लिखा । इन्होंने "काशी पत्रिका" भी निकाली जिसमें कई वर्षों तक साहित्य और विज्ञान विषयों पर उत्तम लेख निकालते रहे ।

फिर गणित, भौतिक, रसायन तथा जीव-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना

होने लगी । पं० बापूदेव शास्त्री ने बीजगणित पर एक पुस्तक लिखी । पं० सुधाकर जी ने "चलन कलन" और "चल-राशि कलन" नामक दो ग्रन्थ उच्च गणित पर लिख कर एक बड़ी कमी की पूर्ति की । समीकरण मीमांसा पर भी एक पुस्तक निकली है । गुरुकुल काँगड़ी से महात्मा मुंशीराम जी की अध्यक्षता में कई ग्रन्थ निकले, जिनमें से अधिकांश के लेखक श्री महेशचरण सिंह हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने वैज्ञानिक कोश का निर्माण कर पारिभाषिक शब्दों को नियमबद्ध करने की चेष्टा की । इस सम्बन्ध में सबसे अधिक कार्य **प्रयाग का विज्ञान परिषद्** कर रहा है । भौतिक तथा रासायनिक विज्ञान पर अच्छे ग्रन्थों की रचना करायी है । 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र पिछले १६ वर्षों से बराबर निकल रहा है । इसमें विज्ञान के सभी विषयों के अनेक लेख निकल चुके हैं । परिषद् ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया है । हिन्दी-हितैषियों को उचित है कि उसे अपनायें और उसके कार्यकर्त्ताओं के उत्साह को बढ़ाते रहें ।

हाल ही में डॉ० गोरखप्रसाद का "फोटोग्राफी" नामक ग्रन्थ "इण्डियन प्रेस" प्रयाग ने प्रकाशित किया है । यह अपने विषय का एक ही ग्रन्थ है । अंग्रेजी भाषा में भी इससे अच्छी सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक मिलना कठिन है । उन्हीं का रचा हुआ "हिन्दुस्तानी एकेडमी" ने "सौर परिवार' नामक एक बृहत् ग्रन्थ निकाला है, जिसके लिए लेखक और प्रकाशक दोनों हमारी बधाई के पात्र हैं । दानवीर बिड़ला जी की सहायता से हिन्दू विश्वविद्यालय भी इस ओर ध्यान दे रहा है । इन सब सद्-चेष्टाओं के फलस्वरूप आशा है कि हिन्दी में भी समय पाकर यथेष्ट वैज्ञानिक-साहित्य प्राप्त होगा ।

यह सब होते हुए भी यदि हम इन प्रयत्नों की तुलना पाश्चात्य विज्ञान की सामयिक दशा और प्रगति से करते हैं तो उनको 'नहीं' के समान पाते हैं । जो कुछ परिश्रम हो रहा है वह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता ।

वर्तमान आवश्यकताओं पर विचार करते हुए, वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण और विज्ञान के प्रचार के निमित्त निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है :—

(१) वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा ।

(२) पारिभाषिक शब्दों का अभाव एवं अनिश्चयता ।

(३) सहकारिता और सहयोगिता ।

इन सब बातों के प्रत्येक अंग पर विचार कर, मुझे विश्वास है कि हिन्दी संसार के लिए इस परिषद् द्वारा कोई उचित मार्ग निर्धारित कर दिया

जायगा । इस सम्बन्ध में मेरा जो निजी मत है वह मैं आपके सामने रखने की धृष्टता करता हूँ ।

वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा सरल एवं सुबोध होनी चाहिए, विशेष करके फलित विज्ञान सम्बन्धी, जिससे कि सर्वसाधारण जटिल सिद्धान्तों के वास्तविक मर्म को समझ कर उनको अपने नित्य के व्यवहार में ला सके। अध्यापक रामदास जी गौड़ अपनी पुस्तकों, लेखों में प्रायः बोलचाल की भाषा काम में लाते हैं । उनके समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती । यदि हमारे अन्य लेखक उनके प्रदर्शित मार्ग पर चलें तो विज्ञान-ज्ञान के प्रचार में बड़ी सहायता मिले । उच्च साहित्य की दृष्टि से क्लिष्ट भाषा का स्वागत किया जा सकता है किन्तु उससे आम लोग फायदा नहीं उठा सकते ।

आजकल अनेक नये ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं और उसके साथ ही भिन्न-भिन्न नये पारिभाषिक शब्दों का भी निर्माण हो रहा है । ऐसी अवस्था में परमावश्यक है कि निर्माण-पद्धति पर उचित रूप से विचार कर समस्त हिन्दी के लेखकों के लिए एक मार्ग निर्धारित कर दिया जाय, नहीं तो "अपनी-अपनी डफली और अपना-अपना राग" होने से लाभ होने के स्थान पर अधिक हानि होने की सम्भावना है ।

विज्ञान की भाषा

अब यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि शब्द कैसे होने चाहिये ? उनका आकार क्या होना चाहिये ?

'शब्द' से अर्थ के संकेत का काम लिया जाता है । कुछ संकेत मनुष्येच्छा से किसी विशेष सुभीते के लिए बनाये जाते हैं और फिर उसी अर्थ में व्यवहृत होने लगते हैं । ऐसे आधुनिक संकेतों को 'परिभाषा' कहते हैं । पारिभाषिक शब्दों की उत्पत्ति ज्ञान रूप से आवश्यकता पड़ने पर होती है । कभी प्रचलित शब्दों को ही पारिभाषिक अर्थ दे दिया जाता है और कभी आवश्यकतानुसार बिलकुल नये शब्द गढ़ लिये जाते हैं । जो शब्द रोज़मर्रा की बोलचाल में आ गये हैं, चाहे वह कहीं से भी आये हों, उनको तो वैसा ही व्यवहार में ले आना चाहिये । **उनके स्थान पर संस्कृत अथवा फारसी से कठिन शब्दों को लाना न केवल भेदभाव को बढ़ाना है वरन् भाषा को दूषित करना है ।** मुझे विश्वास है कि कोई भी हिन्दी या उर्दू का लेखक थरमामीटर के स्थान में तापमापक यंत्र अथवा मिकपातुल हरारत को काम में न लायेगा । मुझे याद है कि एक लेखक ने एक छोटी-सी पुस्तक में 'रेल' शब्द

का अर्थ 'वाष्पलढ़िया' से और 'टेलीग्राफ अथवा तार' का अर्थ "तड़ित समाचार" करके अपनी हँसी आप उड़ाई थी। जहाँ तक प्रचलित शब्दों का सम्बन्ध है, कोई मतभेद होने की सम्भावना नहीं है।

जिन वैज्ञानिक भावों को प्रकट करने के लिए हमारे **यहाँ कोई प्रचलित संकेत नहीं उनके लिए नये-नये शब्द गढ़ने की आवश्यकता है।** इस सम्बन्ध में आधुनिक हिन्दी लेखकों में तीव्र मतभेद है। एक ओर हमारे उत्साही नवयुवक, 'विज्ञान' के सम्पादक श्री सत्यप्रकाश जी का यह मत है कि नवीन वैज्ञानिक शब्दों का निर्माण संस्कृत की संज्ञा और क्रियाओं के आधार पर होना चाहिये, दूसरी ओर मेरे परम मित्र डॉ० निहालकरण सेठी के विचार में "वैज्ञानिक सिद्धान्तों और आविष्कारों को व्यक्त करने वाले पारिभाषिक शब्द के लिए तो यह और भी आवश्यक जान पड़ता है कि वे शब्द ज्यों के-त्यों हिन्दी भाषा में सम्मिलित कर लिये जायँ। इसका एक विशेष कारण है। **ये किसी खास भाषा के शब्द नहीं। इन पर किसी भी जाति का कोई विशेष अधिकार नहीं है।** इङ्गलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका और यहाँ तक कि जापान में भी इन्हीं शब्दों का प्रयोग होता है। ये शब्द अन्तर्जातीय हैं। इनके प्रयोग से किसी भाषा का अपमान नहीं समझा जाता और न किसी के स्वाभिमान में किसी प्रकार का फर्क आता है।"

विद्वानों का जो कुछ निर्णय हो वह सबको मान्य होना चाहिये। इस सम्बन्ध में उनके सम्मुख मैं दो बातें रखना चाहता हूँ। **वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का निर्माण राष्ट्रीय दृष्टि से होना चाहिये।** विविध प्रान्तों और भिन्न-भिन्न संस्थाओं को सहकारिता के बिना राष्ट्रीय विज्ञान का आदर्श स्थापित और पूर्ण होना कठिन है। **संसार के सब देशों में सहकारिता से ही ज्ञान की वृद्धि हुई है और हमारे देश में भी इसके बिना काम न चलेगा।** वैज्ञानिक भाषा का मुख्य भाग पारिभाषिक शब्दों का ही होता है। अतएव राष्ट्रीय दृष्टि से यह परमावश्यक है कि प्रान्तीय भाषाओं के वैज्ञानिक शब्द एक-से हों। पारिभाषिक शब्दों की एकता के कारण समस्त देशीय भाषाओं में वैज्ञानिक पुस्तकों का समझना और अनुवाद करना बड़ा सरल काम हो जायगा। अभी तक किसी भी भारतीय भाषा का वैज्ञानिक साहित्य प्रौढ़ता को प्राप्त नहीं हुआ है इसलिए ऐसी अवस्था में पारिभाषिक शब्दों को एक-सा बनाने का प्रयत्न करना उचित ही प्रतीत होता है।

इस सम्बन्ध में पहले अंग्रेजी, फ्रेञ्च और जर्मन भाषाओं के विविध वैज्ञानिक शब्दों की सूची तैयार होनी चाहिये और साथ ही संस्कृत, फारसी

और अरबी तथा हिन्दी, उर्दू, बँगला, गुजराती, मराठी आदि अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में पाये जाने वाले वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की सूची बननी चाहिये । जो दोनों सूचियों में हों उनके सम्बन्ध में कुछ कहना ही नहीं है । अब बचे हुए, अंग्रेजी, फ्रेञ्च और जर्मन भाषाओं के शब्दों का प्रश्न रहा । इसके स्थान पर पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किस रीति से किया जाय ? डॉ० सेठी के मतानुसार तो विदेशी अन्तर्जातीय वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों को किसी प्रकार से भी रूपान्तर न करके उनको अपने असली रूप में ही मिला लेना चाहिये । इसमें एक बात विचारणीय है । **शब्दों का उच्चारण देश की जलवायु, प्राकृतिक अवस्था एवं मनुष्य के शरीर संगठन पर आश्रित है** । अतएव अपने स्वभाव से उनका रूपान्तर किया जाना आवश्यक है । दूसरे प्रत्येक वस्तु को अपना स्वरूप दे देने से उसके ऊपर न केवल प्रेम बढ़ जाता है वरन् उसके द्वारा बोध भी अधिक होने लगता है । अतः यदि हम विदेशी शब्दों को अपनी भाषाओं में व्यवहार भी करें तो उन पर अपने स्वभाव और सुभीते के अनुकूल अपनी जातीय छाप अवश्य लगा दें ।

इसके प्रतिकूल मतानुसार संस्कृत को आधार मान कर, उसके धातुओं से नये यौगिक शब्द गढ़े जाने चाहिये । भारत की अधिकांश प्रान्तीय भाषाएँ इसके आश्रित हैं । यह पूर्णरूप से वैज्ञानिक होने के साथ ही, भारत के अधिकांश निवासियों की धार्मिक भाषा है । यदि हम नवीन वैज्ञानिक शब्द संस्कृत धातुओं की सहायता से बनायेंगे तो फारसी और अरबी के प्रेमी यह आक्षेप कर सकते हैं कि इन भाषाओं से नये शब्द क्यों न बनाये जायँ । अरबी और फारसी ने हमारे जातीय जीवन पर भारी प्रभाव डाला है ।

चाहे जिस साधन का भी अवलम्बन किया जाय किन्तु इस बात को सदा ध्यान में रखनी आवश्यक है कि **वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली देशव्यापक और सर्वमान्य होनी चाहिये,** नहीं तो एक शिक्षक के रूप में मुझे डर है कि कम-से-कम संयुक्त-प्रान्त के स्कूलों में भाषा द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा देना बड़ा कठिन हो जायगा ।

यदि हिन्दी और उर्दू में पारिभाषिक शब्द भिन्न-भिन्न हुए तो एक ही स्कूल में भौतिक और रासायनिक विज्ञान, गणित और ज्यामिति, भूगोल और खगोल आदि विषय उर्दू और हिन्दी में पृथक्-पृथक् पढ़ाने पड़ेंगे । ऐसी स्थिति का अनुमान कर भी मेरा हृदय काँप उठता है । यह विषय बहुत समस्यापूर्ण है और इसलिए इसमें बड़ी सावधानी और विचार से काम लेना चाहिये ।

उपसंहार

अपना कथन समाप्त करने के पूर्व मैं एक बार और आपके अनुग्रह के लिए आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ और यह आराधना करता हूँ कि जगदीश हमारे जगदीश[1] का विज्ञान भण्डार अधिक पूर्ण और संकुल करें; रामानुज[2] भगवान् रामचन्द्र अनुज की नाईं भारतीय नन्दन-वन में तपस्या कर गणित बल से शक्ति का संचय करें, प्रफुल्ल चन्द्र[3] का चन्द्र और विकसित एवं उज्ज्वल हो, गणेशप्रसाद[4] वेदव्यास के प्रसाद से सुन्दर वैज्ञानिक ग्रन्थों की रचना करें। रमण[5] की तितिक्षा एवं स्पृहा प्रत्येक नवयुवक हृदय-पथ, और मेघनाथ,[6] इन्द्र के समान मेघों के नाथ तड़ित् की वर्षा द्वारा भारत को एक सुन्दर उद्यान बनाने में सफलीभूत हों। हमारे विश्वविद्यालयों में भास्कराचार्य और आर्यभट्ट के समान नररत्न और लीलावती-सी विदुषियाँ हों। यदि प्रत्येक गृहस्थी में एक मोटर हो जाये, यदि प्रत्येक नवयुवक एक वायुयान रख सके, यदि प्रत्येक पुरुष की दीवाली प्रतिदिन विद्युत् से सजे तो भी हमारे देश में विज्ञान-ज्ञान की खोज का अन्त न हो। **विज्ञान के व्यवहार के दूषित परिणाम से यहाँ के लोग बाल-बाल बचते रहे हैं**। हमारा अतीत साक्षी है कि हममें विज्ञान से कभी भी पौरुषहीनता, अलसता एवं विलासिता उत्पन्न नहीं की, और न आध्यात्मिक उत्कर्ष से ही हमें उसने वंचित रखा। उच्च विचार और सरल जीवन भारत का निजी है। **विज्ञान के ध्वंसकारी व्यवहार पाश्चात्य देशों तक ही सीमित रहें**। घात-प्रतिघात के दाँव-पेंच में उलझा हुआ जीवन अशान्ति से परिणत व्यक्तियों के लिए चरम उत्कर्ष हो सकता है। हमारे आदर्श व्यक्तियों का सम्पूर्ण समाहार इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि भारत के लिए विज्ञान-ज्ञान शारीरिक उपभोग की वस्तु कभी नहीं रहा।

---

१. जगदीश चन्द्र वसु, जिन्होंने सिद्ध किया कि पौधों में जीवन है।

२. रामानुज, सुप्रसिद्ध गणितज्ञ।

३. प्रफुल्लचन्द्र राय, सुप्रसिद्ध रसायनवेत्ता।

४. डॉ० गणेशप्रसाद, सुप्रसिद्ध गणितज्ञ।

५. डॉ० चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन, सुप्रसिद्ध भौतिक शास्त्रवेत्ता, भारत के पहले नोबुल पुरस्कारविजेता विज्ञानी।

६. डॉ० मेघनाथ साहा, सुप्रसिद्ध भौतिकशास्त्री।

—सम्पादक

भारद्वाज मुनि के सूक्ष्म विज्ञान-तत्त्व के व्यावहारिक चमत्कार के इन्द्रजाल में आमंत्रित भरत जी की क्या दशा थी इसके विषय में स्वयं कविसम्राट् गोस्वामी तुलसीदास जी के मुख से सुनिये ।

संपति चकई भरत चक,
मुनि आयसु खिलवार ।
तेहि निसि आश्रम पींजरा,
राखे भा भिनुसार ॥

भरत भारत के अभिधान-प्रेरक ही नहीं, आदर्श की प्रेरणा भी हैं ।

[विज्ञान, मार्च, १६३२ से साभार उद्धृत]

अभिभाषण*—२

श्री रामदास गौड़

महानुभावो !

कवि और साहित्यिकों को जीविका और यश के लिए ही आश्रय चाहिए। परन्तु वैज्ञानिकों को तो यश और जीविका के सिवा वैज्ञानिक उपकरण और सामग्री भी चाहिए। अतः उसे तो आश्रय की अत्यधिक आवश्यकता है। यदि वह यश और जीविका के प्रश्न को किसी तरह सुलझा भी चुका हो तो भी वैज्ञानिक उपकरणों के बिना उसका काम कभी चल ही नहीं सकता। यह सभी जानते हैं कि प्रयोगशाला बिना वैज्ञानिक कोई काम नहीं कर सकता। जिस वैज्ञानिक का किसी प्रयोगशाला से सम्बन्ध नहीं है वह लुञ्ज है, निकम्मा है। सर चन्द्रशेखर वेङ्कट रमन पहले जब कलकत्ते में अकाउण्टेण्ट जनरल थे उस समय उन्होंने 'इण्डियन एसोसिएशन फार साइन्स' की प्रयोगशाला से सम्बन्ध कर लिया था और नियम से वहाँ काम करते थे। कलकत्ता में यह भारी सुभीता है। यह सुविधा देश में अन्यत्र भी होनी चाहिए। यदि खोज के काम के लिए न हो तो घरेलू उद्योगों के लिए तो हमें प्रत्येक बड़ी बस्ती में प्रयोगशाला या सिखाने वाले कारखानें चाहिए। अभी आरम्भ करने के लिए और नहीं तो कम-से-कम प्रयाग की हिन्दी विद्यापीठ में यन्त्र-विज्ञान की शिक्षा हो और यान्त्रिक प्रयोगशाला बने तो यह अभाव दूर हो सकता है और देश का भारी उपकार हो। कोई **कहे कि यन्त्रों के लिए पारिभाषिक शब्द पहले गढ़ लो तब यन्त्र मँगवाना, तो बड़ी हास्यास्पद बात होगी।** यन्त्र मँगवा कर और उनका प्रयोग समझ लेने पर ही उनके लिए शब्दों का गढ़ा जाना बहुत उपयोगी होगा।

छोटे-छोटे कामों की शिक्षा

यन्त्रों के साथ-साथ रोजगारी के काम भी सिखाये जायँ जिससे सीखते ही छात्र कुछ-न-कुछ कमाने लायक हो जाय। उदाहरण की भाँति यन्त्र-रचना,

---

***२३वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९९१, दिल्ली अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

यन्त्र-निर्माण, यन्त्र-गणित यान्त्रिक-चित्रण, फ़रसे बनाना, लोहे-पीतल-इस्पात की ढलाई, लोहा-ताँबा-टीन के काम, औजार बनाना, पानी-चढ़ाना, बिजली और गैस से झाल लगाना, कलई करना, किरें और चूड़ी काटना, इञ्जन-मोटर, डैनमो आदि का अध्ययन और चालन, ब्रश बनाना, काँच की फुँकाई, साबुन बनाना, मोमबत्ती बनाना, रंग बनाना, स्याही बनाना, वारनिश-रोगन आदि बनाना, यन्त्रों की मरम्मत करना, बटन बनाना, हुक बनाना, सेफ्टीपिन बनाना, निब बनाना, सुई बनाना, आलपीन बनाना, छतरी-ताले-चाकू-कैंची-खिलौने आदि छोटी-छोटी चीजें बनाना, लकड़ी के फाउण्टेनपेन बनाना, पेन्सिलें बनाना, ऐक्सिलें बनाना और मरम्मत, इत्यादि-इत्यादि ऐसे काम हैं कि सीख कर आदमी कुछ-न-कुछ कमाई कर सकता है। ऐसे कामों के सिवा बड़े-बड़े इञ्जनों का, मोटर-गाड़ियों का और मोटर साइकिलों का चलाना, उनकी मरम्मत, उनका निर्माण आदि विषय भी सिखाये जाने चाहिए।

ये सभी विषय विश्वविद्यालयों के नहीं हैं। इनकी पढ़ाई और शिक्षा का प्रबन्ध इंग्लिस्तान में भी 'सिटी एण्ड गिल्ड्स आफ लन्दन' द्वारा होता है। वही संस्थाएँ परीक्षा लेती हैं। **सम्मेलन भी वही परीक्षाएँ क्यों न ले और अपने परीक्षा और शिक्षा-विभाग का इस सीमा तक क्यों न विकास करे ?** विद्यापीठ की इस प्रयोगशाला में बिना किसी बन्धन के जो कोई फीस दे वही भरती हो जाय और शिक्षा पावे। शिक्षा सिद्धान्ततः ऐसी हो जिससे देश का सर्वतः कल्याण ही हो, प्रवेश पाने वाले को आवश्यकता होने पर पढ़ना-लिखना और गणित आदि भी सिखाया जाय। इस व्यावहारिक विद्यालय से काम करने वाले निकलें, कराने वाले नहीं, मजूर निकलें, बाबू नहीं। जो निकलें वह नौकरी खोजें, रोजगार करें या मजदूरी। सम्मेलन में विज्ञान-विभाग के द्वारा यदि यह काम हो जाय तो देश उसका कृतकृत्य हो जाय और उसे इस तरह के काम में अगुआ होने का श्रेय मिले।

यह कहा जा सकता है कि ऐसी बात सम्मेलन के उद्देश्यों में नहीं है। **मैं नहीं मान सकता कि जहाँ हिन्दी के द्वारा ही सब तरह का शिक्षण है और विश्वविद्यालय है वहाँ यह काम उद्देश्य के विपरीत होगा**, और यदि हो भी तो सम्मेलन अपने उद्देश्यों में ऐसे उपयोगी काम को स्थान देने में आगा-पीछा न करेगा और आवश्यकतानुसार उद्देश्यों और नियमों में परिवर्द्धन करेगा।

परन्तु आश्रय केवल सामग्री का ही न चाहिए। जीविका और प्रोत्साहन के लिए धन का आश्रय भी चाहिए। यश और सम्मान के लिए बड़ों का, विद्वानों का एवं राजा का भी आश्रय चाहिए। आश्रय की यही सुविधाएँ अपने

देश में होतीं तो राय, बोस, प्रसाद, रमन, साहा प्रभृति जगद्विख्यात विद्वान् ऐसी विदेशी भाषा में अपनी खोजों के विवरण प्रकाशित न कराते। आश्रय की सुविधाएँ होतीं तो अद्वैतदर्शी विश्वविख्यात आइंस्टीन स्वदेश से निकलकर स्वामी शंकराचार्य के देश में सहज ही किसी-न-किसी विश्वविद्यालय में सम्मान-भागी हो जाता और उसी तरह के अनेक प्रख्यात आचार्य आज भारतीय बन जाते। यूरोप में ऐसा आश्रय सुलभ है। हमारे देश में नहीं। परन्तु हमें नितान्त निराश न हो जाना चाहिए। हमारे देशी नरेशों में विज्ञान के प्रेमी मौजूद हैं जो देश की प्रकृत अवस्था और आवश्यकता को खूब समझते हैं, जो उचित व्यवहारसाध्य योजना देखकर आश्रय बन सकते हैं और सहायता दे सकते हैं। ऐसे समृद्ध देशभक्त भी जो इस काम के मूल्य को समझकर इसमें धन लगा सकते हैं।

हमारी वर्तमान आवश्यकताएँ

देश की वर्तमान आवश्यकताएँ छिपी नहीं हैं। हर एक समझदार आदमी अकुला रहा है कि काम कैसे हो। व्यापार की मन्दी, भयानक बेकारी, घोर दरिद्रता हर आदमी के पीछे अंकुश का काम कर रही है। अमीर, गरीब सभी इसका अनुभव कर रहे हैं। इसका फल यह है कि भली या बुरी संगठित, वैयक्तिक या सामूहिक औद्योगिक संस्थाएँ देश में खुल रही हैं। इनकी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर एकत्र करने वाली कोई संस्था चाहिए जिसमें देश के अनुभवी विद्वान् और कार्य कुशल लोग मार्ग-दर्शक हों। सम्मेलन की विज्ञान-समिति ऐसी ही संस्था बने और इसका ठोस संगठन हो।

—विज्ञान, अप्रैल, १९३४ से साभार

अभिभाषण*–३

डॉ० गोरखप्रसाद

उपस्थित सज्जनो तथा बहिनो,

मैं हिन्दी-संसार को धन्यवाद देता हूँ कि इस विशाल परिषद् का सभापति बनने का अवसर मुझे दिया गया। यद्यपि मैं इस योग्य नहीं हूँ, तथापि आज्ञा की अवहेलना के डर से मैं इस भार को ग्रहण करता हूँ। मैं थोड़े ही समय में ही कह देना चाहता हूँ कि **हमें क्या करना चाहिए जिससे साहित्य की उन्नति हो सके।** आजकल सब जगह धन की आवश्यकता होती है, परन्तु विज्ञान की साहित्यिक उन्नति के लिए तो धन की और भी ज्यादा आवश्यकता है। जैसे अभी एक लाख रुपया महात्मा गांधी जी को मिला है, वैसे ही यदि हमें कम-से-कम एक लाख रुपया मिले तो विज्ञान का थोड़ा-बहुत साहित्य तैयार कर सकते हैं, किन्तु इस समय कोई ऐसी योजना का वर्णन नहीं करना चाहता, क्योंकि अभी इतने धन मिलने की सम्भावना नहीं है। अतः, मैं आपको अभी ऐसी बात बतलाना चाहता हूँ जिसे आप अभी आरम्भ कर सकते हैं। वर्तमान समय में हिन्दी की काफी उन्नति हुई है, साथ ही, विज्ञान की भी, परन्तु बहुत धीरे-धीरे। इसी कारण से गंगा[1] नामक मासिक पत्रिका में विज्ञान सम्बन्धी लेखों को देखकर मेरी तथा सब सज्जनों की तबीयत खुश हो जाती है। उसका विशेषांक देखने से हमें यह स्पष्ट मालूम होता है कि **इस वक्त हिन्दी में विज्ञान विषय को पढ़ने वालों की कमी नहीं है।** कभी-कभी लोग यह समझ लेते हैं कि हिन्दी में ऐसे शब्द नहीं हैं जिनका उपयोग पारिभाषिक शब्दों के लिए ठीक तौर से किया जा सके अर्थात् पारिभाषिक शब्दों की बहुत कमी है। किन्तु विज्ञान सम्बन्धी लेखों को 'गंगा' के विशेषांक में देखते हुए यह मालूम होता है कि यह भावना बहुत ठीक नहीं है। हम लोग विज्ञान-परिषद् की सहायता से हिन्दी में लिख

***२४वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९९२, इन्दौर अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

१. प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ने १९३४ ई० में 'गंगा' नामक पत्रिका का विज्ञान विशेषांक निकाला था। **—सम्पादक**

सकते हैं । महात्मा जी ने कहा था कि हिन्दी का साहित्य अभी बहुत पिछड़ा हुआ है अर्थात् उसकी पोजीशन बहुत नीची है । उन्होंने हिन्दी की अपेक्षा बंगाली और मराठी के साहित्य को बहुत ऊँचा बताया है । हिन्दी में अभी तक यह भारी कमी है और जिस गति से हम आगे बढ़ रहे हैं उसे देखते हुए तो यह मालूम होता है कि हम लोग शायद ही उनकी बराबरी में पहुँच सकें । अतः, यह आवश्यक है कि इसमें साहित्यिक उन्नति शीघ्र की जाय । आज हमें वैज्ञानिक साहित्य पर विचार करना है । **हिन्दी साहित्य में अन्य अंगों की अपेक्षा वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति के लिए पारिभाषिक शब्दों, फोटो और ब्लाकों की बहुत आवश्यकता रहती है ।** उनको छपाने में बहुत पैसा खर्च होता है । यदि कोई साधारण पुस्तक छपाने में एक रुपया खर्च होता है तो उतनी ही बड़ी विज्ञान की पुस्तक छपाने में चार रुपये खर्च पड़ते हैं । मेरी पुस्तक जिसका नाम 'फोटोग्राफी' है, उसके चित्र बनवाने के लिए एक हजार रुपया खर्च पड़ा था । कपड़ा लगवाने के लिए चार हजार और अच्छे कागज पर छपाई आदि में तीन हजार और खर्च हो गये । इस प्रकार आठ हजार रुपये खर्च करने पर एक पुस्तक तैयार हुई । उसकी कीमत बारह रुपये रखी गयी तथापि उसके खरीदने वालों की संख्या बहुत कम है । इस प्रकार आप देख सकते हैं कि वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण में कितने धन की आवश्यकता होती है । अभी हम पाश्चात्य देशों की तरह ऐसी पुस्तकें छापने में असमर्थ हैं । दूसरी बात यह है कि ऐसी पुस्तकों की माँग यहाँ बहुत कम है । कोई आदमी आज ऐसी पुस्तकें नहीं छपा सकता जो साल में केवल बीस-पच्चीस बिके । **इसलिए वैज्ञानिक साहित्य को छापने का काम केवल ऐसी संस्थाओं द्वारा हो सकता है जो वैज्ञानिक पुस्तकों की आवश्यकता बहुत ज्यादा समझती हो ।** बनारस में जो खिलौने बनाये जाते हैं उनको बनारस वालों के सिवाय और कोई शायद ही जानता हो । वे लोग रंग भरना और बनाना इत्यादि भली प्रकार से नहीं जानते परन्तु हिन्दी में कोई ऐसी पुस्तक या मासिक पत्र नहीं जिसे पढ़कर मामूली लोग या स्त्रियाँ यह बात जान सकें और खिलौने घर में बना सकें । इसका परिणाम यह हुआ है कि आज तक वैसे ही खिलौने बनाये जाते हैं जैसे आज से सौ वर्ष या हजार वर्ष पूर्व हमारे पूर्वज बनाते थे । इधर जापानियों को देखिए । अपनी वैज्ञानिक उन्नति के कारण सुन्दर ढंग के नये-नये खिलौने बनाते हैं । उन जापानी खिलौनों से ही आज सारा भारतवर्ष भर गया है । यदि हिन्दी में कोई ऐसी वैज्ञानिक पुस्तक होती जिसे सरलता से पढ़कर हर एक समझ सकता तो देश की यह दरिद्रता अवश्य नष्ट

होती। इसी प्रकार बनारस में चाँदी के तारों पर सोना चढ़ाते हैं, परन्तु उसमें भी ऐसी उन्नति नहीं हुई जैसी चाहिए। बहुत-से लोग यह प्रश्न करते हैं कि चाँदी के तार पर सोने का मुलम्मा कैसे चढ़ाया जाता है ? मैंने कहा कि आप लोग अंग्रेजी पुस्तक पढ़कर इसे सीख सकते हैं। यद्यपि मैं जानता था बनारस तथा समस्त भारत में सब लोग अंग्रेजी नहीं जानते, तथापि हिन्दी में कोई ऐसी वैज्ञानिक किताब न होने के कारण मुझे अंग्रेजी पुस्तक का नाम लेना पड़ा। मेरा अनुभव है कि यदि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य होता तो आज चाँदी पर सोना चढ़ाने का काम बहुत ही अच्छी दशा में होता। मैं चाँदी पर सोना चढ़ाने की नयी-नयी बातें खोजकर निकालता हूँ परन्तु उनका प्रचार करना बहुत मुश्किल है।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का स्वरूप

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य ऐसा हो जाय जिसे आजकल के पढ़े-लिखे लोग अच्छी तरह समझ लें तो इस बेकारी की दशा बहुत-कुछ सुधर सकती है। इसी प्रकार उद्योग-धन्धों के लिए भी बहुत-सी किताबों की आवश्यकता है और साथ ही, साइन्स की किताबों की भी बहुत जरूरत है, चाहे बहुत से लोग विज्ञान न भी पढ़ें तो भी कलों के बल पर कैसी-कैसी चीजें तैयार हो गयी हैं, इन सब बातों को जानने के लिए साइन्स की किताबों की आवश्यकता अवश्य है। उनसे यह ज्ञान होगा कि लाउडस्पीकर क्या चीज है ? कैसे बोलता है ? इसकी आवाज दूर तक कैसे जाती है ? इन पुस्तकों को छपाने में लाभ के साथ-साथ खर्च अधिक है। इसलिए यह काम ऐसी संस्थाओं को अपने हाथ में लेना चाहिए जो लागत से भी कम मूल्य में याने घाटे पर बेंच कर भी प्रचार करने के लिए तैयार हों। हमारे देश में ऐसी बहुत-सी संस्थाएँ हैं, जैसे काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि। इसी प्रकार भारत सरकार से भी २५०००) रुपये इस काम के लिए मिलते हैं। उससे भी हम विद्यालयों में विज्ञान साहित्य की उन्नति कर सकते हैं। देशी रियासतें भी इस कार्य में सहयोग दे सकती हैं। यदि सभी देशी नरेश मिलकर एक ऐसी योजना द्वारा इस काम को बाँट लें और छपाने के काम को हिन्दी साहित्य सम्मेलन अपने ऊपर ले ले तो प्रायः प्रत्येक विषय पर बड़ी आसानी से पुस्तकें बन सकती हैं। सैकड़ों विषय ऐसे पड़े हैं जिन पर एक भी पुस्तक नहीं हैं। उन विषयों के लेखकों की कमी नहीं है, परन्तु उनकी जो कठिनाइयाँ हैं वे, यदि कोई संस्था सहायता करे तो, दूर की जा सकती हैं। हिन्दी प्रचा-

रिणी आदि संस्थाओं को सहायता करनी चाहिए क्योंकि वैज्ञानिक साहित्य प्रकाशित करने में परिश्रम होता है। **इस समय बहुत-से हिन्दी-लेखक ऐसे हैं जो विज्ञान को तो नहीं जानते केवल कुछ-न-कुछ लिखने के उद्देश्य से लिख डालते हैं।** अभी एक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका में विज्ञान विषय पर एक लेख छपा था जिसमें बहुत-सी गलतियाँ थीं। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह एक साधारण विद्यार्थी द्वारा लिखा गया है। इसी प्रकार बहुतेरे पत्रों में विज्ञान से अनभिज्ञ लेखकों द्वारा लिखे लेख रहते हैं। इस प्रकार अपने आप को नष्ट न करके परिश्रम करके नये-नये विषयों पर लेख लिखवाये जायँ तो बहुत अधिक फायदा हो सकता है। अभी वह समय नहीं आया है कि वैज्ञानिक साहित्य में मौलिक लेख लिखे जा सकें। अभी जमाना नहीं है कि हम पाश्चात्य देशों के साहित्य का हिन्दी में अनुवाद कर सकें। इस बात में हमें अमेरिका से अधिक सहायता मिल सकती है, क्योंकि वहाँ के साहित्य का कॉपी-राइट हिन्दुस्तान में नहीं है और यहाँ पर वे छप सकते हैं। साथ में एक ऐसे शब्दकोश की भी आवश्यकता है जो अनुवादों के लिए लिखा जाय और उसमें अंग्रेजी विज्ञान के प्रत्येक शब्द के लिए हिन्दी के ठीक पारिभाषिक शब्द रहें। समय बहुत कम मिलने के कारण मेरा भाषण आपको छप कर नहीं मिल सका। इसका मुझे दुःख है। बस, इतना कहकर मैं अपना भाषण समाप्त करूँगा।

अभिभाषण*–४

श्री रामनारायण मिश्र

सज्जनो और देवियो !

मेरा प्रधान विषय भूगोल है। उसी विषय में मैं कुछ कहूँगा। पहले पहल इसको भुवनकोष कहते थे। महाभारत की एक कहावत है—"यत्र सायं तत्र ग्रह:" भूगोल का आरम्भ घरों में आराम से बैठने से नहीं होता, उसके लिए जीवन की आहुति देनी पड़ती है। इस समय मुझे अपने जीवन की वह स्मृति सामने आती है, जब मैं ऐसे देश और ऐसी परिस्थिति में था जब मेरे आगे जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित था। यात्राओं के कष्ट सहते-सहते, उनके मुकाबले से मेरा साहस बढ़ गया। मुझे आरम्भ में अपने विषय में बहुत कठिनाई हुई। लेकिन बाद में इस विषय के दूसरे विद्वानों और संस्थाओं के क्रमश: विकास को देखकर मुझे भी कुछ उत्साह हुआ। हमारी भूगोल की संस्थाएँ इंग्लैण्ड, जर्मनी आदि की भौगोलिक संस्थाओं से बहुत छोटी हैं। वहाँ तो कमरों के कमरे केवल संसार के मानचित्रों से भरे हुए थे। आज के 'प्रामाणिक नक्शे', (Survey Maps) हमारे देश में नहीं हैं। इस विषय में पटवारियों ने ज़रूर सहायता दी लेकिन अभी हम 'सर्वे मैप्स' तक नहीं पहुँचे। भूगोल के विषय में जलवायु के लिए बहुत ग़लतफ़हमियाँ फैलायी जाती हैं। आज राममूर्ति का मुकाबला कौन कर सकता है? खोजने के लिए तैयारी करने की ज़रूरत है। खैर! मैं जब बीस-पचीस साल पहले यात्रा में निकला था, उसमें मुझे कई कठिनाइयाँ आयीं। कई स्थानों पर तो पत्ते खाकर जीवन व्यतीत करना पड़ा। यह काम काफ़ी कठिन है। इसके लिए समय भी काफी लगेगा। यह काम एक दिन में होने वाला नहीं है। **सच्चे भूगोल के माने हैं, अपने देश और दूसरे देशवालों के साथ जीवित सम्बन्ध स्थापित करना।**

भूगोल का क्षेत्र संकुचित नहीं। विज्ञान की तरह उसका क्षेत्र काफ़ी विस्तृत है। आरम्भ में हमारा भूगोल इतना बड़ा था कि चीन आदि देशों

---

*२६वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९९४, मद्रास अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

से लोग यहाँ आकर यहाँ की यात्राएँ करते थे। मिशनरी होने के कारण अपने आपको लक्ष्य के लिए समर्पण करके खतरे में पड़ने से वे न घबराते थे।

मैं यह चाहता हूँ कि **सब लोग अंग्रेजी न सीखें।** जिन लोगों को अंग्रेजी से कुछ लेना है, वे लें। लेकिन अन्धाधुन्धी उसके पीछे पड़ने की ज़रूरत नहीं है। हमें अपने साहित्य में दूसरी भाषाओं का साहित्य मूल से ही लेना चाहिये। इंग्लिश से नहीं। हमें अलग-अलग देशीय तथा जातीय साहित्य के सम्बन्ध के लिए भिन्न-भिन्न मण्डली की आवश्यकता है। इस प्रकार के प्रयत्नों से हम जीवित भौगोलिक साहित्य पैदा कर सकते हैं। वैसे इस समय हम केवल वातावरण ही पैदा कर सकते हैं।

अभिभाषण*–५

प्रो० फूलदेवसहाय वर्मा

देवियो और सज्जनो !

आप लोगों ने मुझे इस साहित्य सम्मेलन के विज्ञान परिषद् का जो अध्यक्षपद प्रदान किया है उसके लिए मैं आप लोगों का बड़ा अनुगृहीत हूँ। मैं सर्वथा इसके अयोग्य हूँ। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मैंने ऐसा कोई कार्य नहीं किया है जिससे इस सम्मान का पात्र बन सकूँ। यह केवल आप लोगों की अनुकम्पा है कि आज मैं इस पद पर प्रतिष्ठित हूँ। यद्यपि मैंने हिन्दी की कोई विशेष सेवा नहीं की है पर हिन्दी के प्रति मेरा प्रेम अवश्य ही असीम है। कौन ऐसा समझदार व्यक्ति होगा जिसे अपनी राष्ट्रीय-भाषा के प्रति प्रेम न होगा। यदि यह राष्ट्रीय-भाषा उसकी मातृभाषा भी है तो कहना ही क्या। शायद हिन्दी के प्रति इस मेरे प्रेम के कारण ही आप लोगों ने मुझे इस पद पर प्रतिष्ठित कर मुझे सम्मानित किया है। इस पद-प्राप्ति से मैं हिन्दी की कुछ सेवा कर सकूँगा इसी भावना से प्रेरित होकर मैंने आपका आमंत्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसके फलस्वरूप आज मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ। इतना तो मैं जानता हूँ कि मैं यदि अपने साहित्य की कुछ सेवा कर सकूँगा तो वह आप लोगों के सहयोग और सहानुभूति से ही। मैं आशा करता हूँ कि जिस भावना से प्रेरित होकर मैंने यह सम्मान स्वीकार किया है उसी भावना से प्रेरित हो आप भी मुझे साहाय्य प्रदान करेंगे।

बड़े हर्ष की बात है कि आज सारा देश इस बात को स्वीकार कर रहा है कि इस देश की राष्ट्रीय-भाषा हिन्दी ही हो सकती है। यह संतोष का विषय है। हिन्दी को राष्ट्रीय-भाषा बनाने के प्रयत्न में इस युग के महान् पुरुष महात्मा गांधी, श्री राजगोपालाचारी एवं श्री सुभाषचन्द्र बोस सरीखे प्रमुख देश-भक्त लगे हुए हैं। यद्यपि नक्कारखाने में तूती की आवाज सदृश इधर-उधर से कभी-कभी यह ध्वनि भी सुनाई दे देती है कि हिन्दी का साहित्य अपरिपूर्ण होने के कारण यह राष्ट्रभाषा बनने के योग्य नहीं है। **उत्तर भारत की भाषाओं**

***२७वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९९५, शिमला अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

के विज्ञान-साहित्य की मुझे कुछ जानकारी है। बंगाली भाषा के विज्ञान-साहित्य से मैं अनभिज्ञ नहीं हूँ। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि अब भी हिन्दी में जितना विज्ञान-साहित्य विद्यमान है उतना उत्तर भारत की अन्य भाषाओं में नहीं है। हिन्दी के विज्ञान-साहित्य का सविस्तार वर्णन मैंने बिहार-प्रान्तीय साहित्य-सम्मेलन की त्रैमासिक पत्रिका "साहित्य" के वर्ष १ खण्ड २ अंक में "हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य और उसकी प्रगति" शीर्षक लेख में किया है।

मेरे इस कथन का यह आशय कदापि नहीं है कि हिन्दी में विज्ञान-साहित्य पर्याप्त है। जब हम हिन्दी के इस अंग की पाश्चात्य देशों की भाषाओं के विज्ञान-साहित्य से तुलना करते हैं तब हमें साफ़ मालूम होता है कि हमारा विज्ञान-साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है। यह अवश्य ही हमारे लिये लज्जा और दुःख की बात है। जिस भाषा को हम राष्ट्र-भाषा होने का गौरव दे रहे हैं उसमें आवश्यक साहित्य का अभाव अवश्य ही एक बड़ी खटकनेवाली बात है और कुछ सीमा तक हमारी अकर्मण्यता का स्पष्ट द्योतक है।

हमारा उत्तरदायित्व

साहित्य-निर्माण का कार्य हम हिन्दी-भाषा-भाषी ही अधिक सुविधा और सरलता से कर सकते हैं। यह **हमारा ही उत्तरदायित्व है कि इसके साहित्य की पूर्ति करें। यह हमारा ही कर्तव्य है कि हिन्दी साहित्य की अपरिपूर्णता के कलंक को मिटा डालें। अन्यथा आगे आनेवाली पीढ़ी हमें दोष देगी कि हमने साहित्य-निर्माण के कार्य को सम्पादित न कर अपने कर्तव्य की अवहेलना की है, अपने उत्तरदायित्व को नहीं निभाया है।**

आज का समय 'वैज्ञानिक युग' कहा जाता है। इस युग में पग-पग पर हमें वैज्ञानिक साधनों का आश्रय लेना पड़ता है। जो वस्त्र हम धारण करते हैं वे अधिकांश कृत्रिम रंगों से रँगे होते हैं। जिस रेशम का हम प्रयोग करते हैं वे अधिकांश कृत्रिम रीति से, रासायनिक विधि से, तैयार किये होते हैं। जो कपड़े आज बनते हैं उनके अत्यधिक भाग (केवल खादी अपवाद है) उन मशीनों के द्वारा बने होते हैं जिनका आविष्कार वैज्ञानिकों ने किया है। जो जूते हम लोग पहनते हैं उनके चमड़े क्रोम-टैनिंग द्वारा तैयार होते हैं। जिस तेल का हम उपयोग करते हैं वह वैज्ञानिक ढंग से शोधित कृत्रिम विधि से प्रस्तुत द्रव्यों द्वारा सुगन्धित किये जाते हैं। वस्तुतः वैज्ञानिकों के द्वारा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म गन्धों की नकलें कर ली गयी हैं। हमारे खाद्य पदार्थों के प्रस्तुत करने में विज्ञान का हाथ कम नहीं है। गेहूँ, धान और ईख की खेती में वैज्ञानिक

अन्वेषण से बहुत उन्नति हुई है। छोटे-छोटे नगरों में भी ताज़े अंगूर, सेब, संतरा और नाशपाती इत्यादि सुन्दर पुष्टिकर फल केवल कश्मीर और अफगानिस्तान से ही नहीं, वरन् अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया से भी वैज्ञानिक विधि से सुरक्षित बर्फ से ढके कमरों में लाये जाते हैं ताकि वे सड़-गल कर नष्ट न हो जायँ और उनमें ताज़ापन बना रहे।

औषधियों के निर्माण में विज्ञान ने आशातीत उन्नति की है। अनेक रोगों की चिकित्साएँ जो पहले मालूम न थीं आज रासायनिक विधि से तैयार होकर मनुष्यमात्र की व्याधि दूर करने में समर्थ हो रही हैं। जब हम आधुनिक वाहनों का विचार करते हैं तब हमें मालूम होता है कि विज्ञान ने कितने अद्‌भुत चमत्कार दिखलाये हैं। जहाँ पहले केवल हाथों से चलायी जाने वाली नावें, बैल-घोड़ा-गाड़ियाँ और घोड़े ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के साधन थे वहाँ आज वाष्प-सञ्चालित जहाजें, रेलगाड़ियाँ, मोटर बसें, मोटर कारें और वायुयान का प्रयोग हो रहा है, और जिस यात्रा के सम्पादन में पहले महीनों और वर्षों लग जाते थे उस यात्रा को अब आधुनिक साधनों से घण्टों और दिनों में ही सम्पादित कर लेते हैं।

आजकल रेडियो के द्वारा ख़बरें हज़ारों मीलों से आकर हमें प्राप्त होती हैं। हज़ारों मीलों की दूरी पर स्थित किसी महान् व्यक्ति का व्याख्यान अथवा प्रसिद्ध गायक वा गायिका का सुमधुर गान हम सुन लेते हैं। सिनेमा के द्वारा एक-से-एक अद्‌भुत दृश्य और संसार के प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध स्थान, व्यक्ति, अभिनेता वा अभिनेत्रियों को देखते हुए उनके सुमधुर गान और हृदयाकर्षक अभिनय से हम आनन्द उठाते हैं। विशिष्ट अवसरों के लिए विज्ञान ने हमें जो सुख-साधन दिये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन भी इस भाषण के कलेवर को बहुत अधिक बढ़ा देगा।

उपर्युक्त कारणों से आज विज्ञान का अध्ययन अनिवार्य है। **बेकारी की समस्या को हल करने के लिए भी विज्ञान का अध्ययन आवश्यक है**। पाश्चात्य देशों में विज्ञान के सहयोग से व्यवसायियों ने नयी-नयी साधन-विधियों का आविष्कार कर उद्योग-धन्धों में बड़ी उन्नति की है। यदि हम उनसे मुकाबला करना चाहते हैं तो हमें भी विज्ञान का सहारा लेना पड़ेगा। बिना विज्ञान के सहारे रंग बनाने के, धातुओं के निर्माण के, मिट्टी के बर्तन बनाने के, सूती वा रेशमी वस्त्रों के प्रस्तुत करने के, युद्ध-सामग्रियों के निर्माण के धन्धों में हम उनसे मुकाबला नहीं कर सकते।

माध्यम का चुनाव

विज्ञान का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए देशी भाषाओं का माध्यम आवश्यक है। जिस प्रकार माँ के दूध के समान पुष्टिकर और जल्द पचकर शक्ति उत्पन्न करने वाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है उसी प्रकार जो ज्ञान मातृ-भाषा के द्वारा प्राप्त होता है वही सच्चा और वास्तविक होता है और उसी से लाभ उठाया जा सकता है। विदेशी भाषाओं के द्वारा प्राप्त ज्ञान छिछला होता है और उससे लाभ नहीं उठाया जा सकता, परीक्षाएँ भले ही पास कर ली जायँ। अतः हिन्दी के द्वारा ही प्राप्त ज्ञान को हम अपना वास्तविक ज्ञान कह सकते हैं और उससे लाभ उठा सकते हैं। **इस कारण हिन्दी में विज्ञान साहित्य का होना न होना हमारे राष्ट्र के जीवन-मरण का प्रश्न है**। हिन्दी में विज्ञान साहित्य की वृद्धि पर विचार करना प्रत्येक देश-भक्त का कर्तव्य होना चाहिए। अनेक वर्षों के सोच-विचार के फलस्वरूप **एक "दशवर्षीय योजना" मैं आपके सम्मुख रख रहा हूँ**। आशा करता हूँ कि इस योजना पर गम्भीरता से विचार कर देखेंगे कि इससे वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण में कहाँ तक सहायता मिल सकती है।

वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में दो बड़ी अड़चनें हैं। एक तो वैज्ञानिकों की हिन्दी में कुछ लिखने से अरुचि और दूसरे प्रकाशकों का अभाव। कुछ वर्ष हुए 'गङ्गा' नामक मासिक-पत्र के एक विशेषाङ्क "विज्ञानाङ्क" का मैंने सम्पादन किया था। उस समय इस सम्बन्ध में कुछ कार्य करने का अवसर मिला था। उस अनुभव से मैं निःसंकोच कह सकता हूँ कि हिन्दी भाषा-भाषियों में वैज्ञानिकों की कमी नहीं है। अनेक वैज्ञानिक विद्यमान हैं जो चाहें तो उत्कृष्ट कोटि के ग्रंथ लिख सकते हैं। ऐसे वैज्ञानिकों से काम लेना, उन्हें इस कार्य से उत्साहित करना, हमारा कर्तव्य है।

जो विज्ञानवेत्ता कोई ग्रन्थ लिखते भी हैं उन्हें छपवाने के लिए प्रकाशकों का सर्वथा अभाव है। जिस पुस्तक को पाठ्य-पुस्तक बनने की आशा नहीं उसके प्रकाशक साधारणतया मिलते नहीं। प्रकाशक उन्हीं पुस्तकों के प्रकाशन में धन लगाते हैं जिनसे अर्थ-लाभ की आशा रहती है। ये प्रकाशक साहित्य-निर्माण की दृष्टि से तो इस क्षेत्र में आये नहीं हैं। अतः उनसे यह आशा रखनी व्यर्थ है कि वे साहित्य-निर्माण की दृष्टि से पुस्तकों का प्रकाशन करेंगे। प्रयाग की **विज्ञान परिषद्** ही एक ऐसी संस्था है जो केवल वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण की दृष्टि से पुस्तकों का प्रकाशन करती है पर जनता

के सहयोग के अभाव से वह विशेष कार्य नहीं कर सकी है । जब तक वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का विशेष यत्न नहीं किया जायगा तब तक ऐसी पुस्तकों का प्रकाशन सम्भव नहीं है ।

दशवर्षीय योजना

मेरी दशवर्षीय योजना यह है—वैज्ञानिक पुस्तकों के लेखन और प्रकाशन के लिए जल्द-से-जल्द एक लाख रुपये इकट्ठा किया जाय । अधिक-से-अधिक ६ महीने के प्रयत्न से यह धन संग्रह हो सकता है । इसके लिए प्रान्तीय सरकारों से वार्षिक सहायता प्राप्त की जा सकती है । कम-से-कम तीन प्रान्तीय सरकारें, संयुक्त प्रान्त, बिहार और मध्य प्रान्त जहाँ की भाषा हिन्दी है, ऐसी हैं जिनसे अवश्य ही सहायता प्राप्त की जा सकती है । कुछ देशी रियासतें भी हैं जहाँ की भाषा हिन्दी है । उनमें भी वार्षिक चन्दे के रूप में सहायता प्राप्त हो सकती है । इस धन के एकत्र करने के साथ ही पाँच हज़ार ऐसे स्थायी ग्राहक भी ठीक कर लिये जायँ जो पुस्तकों के प्रकाशित होते ही उनकी एक-एक प्रति ख़रीद लें । अनेक पुस्तकालय हैं, अनेक शिक्षा-संस्थाएँ हैं, अनेक विश्वविद्यालय हैं, अनेक देशी रियासतें हैं, अनेक देशी एवं अनेक धनी-मानी व्यक्ति हैं जो ऐसी ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन सकते हैं । इस एक लाख रुपये से प्रारम्भ में एक-एक हज़ार रुपया लगा कर १०० पुस्तकें लिखवायी और प्रकाशित की जायँ । प्रति पुस्तक में पहले हजार-हजार रुपया खर्च करना पड़ेगा । इस एक हज़ार में पाँच सौ रुपया फी लेखक को पुरस्कार दिया जाय और पाँच सौ रुपया प्रकाशन के प्रारम्भिक खर्च में लगाया जाय । ये पुस्तकें १०० से २०० पृष्ठों की हों और उनका मूल्य फी पुस्तक एक रुपया रहे । पाँच हजार स्थायी ग्राहकों के होने से हर एक पुस्तक की बिक्री से प्रायः पाँच हजार रुपया तत्काल प्राप्त हो जायगा । ऐसी दस पुस्तकें प्रति वर्ष प्रकाशित की जायँ ताकि १० वर्षों में १०० पुस्तकें उत्कृष्ट कोटि की—विज्ञान की प्रत्येक शाखाओं की कम-से-कम एक और किसी-किसी शाखाओं की दो वा दो से अधिक भी तैयार हो जायँगी । इन सौ पुस्तकों में कुछ अर्थकारी, उद्योग-धन्धा सम्बन्धी, वैज्ञानिक पुस्तकें भी रह सकती हैं जिनका उल्लेख स्वर्गीय श्री रामदास जी गौड़ ने नागपुर के सम्मेलन के विज्ञान-परिषद् के अध्यक्ष पद से किया था । ये सौ पुस्तकें वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण की पहली सीढ़ी होंगी । सम्भवतः उन्हीं पुस्तकों के लाभ से

दूसरी पीढ़ी की २०० से ३०० पृष्ठों की दूसरी सौ पुस्तकें अन्य दस वर्षों में लिखवायी और प्रकाशित की जा सकती हैं। तब इसकी तीसरी पीढ़ी की ४०० से ५०० पृष्ठों की पुस्तकों के प्रकाशन से हम पाश्चात्य देशों की भाषाओं के वैज्ञानिक-साहित्य से तुलना करने में समर्थ हो सकेंगे। यह कार्य या तो प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन वा प्रयाग की विज्ञान परिषद् वा काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को सौंपा जा सकता है।

पुस्तकों की भाषा

वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा कैसी हो, इस सम्बन्ध में कुछ कहना यहाँ असंगत नहीं होगा। वैज्ञानिक पुस्तकों का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक विचारों को जनता में फैलाना होता है। जब-जब महान् पुरुष इस पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और वे किसी विशेष विचार को जनता में फैलाना चाहते हैं तब-तब उन लोगों ने उस समय की प्रचलित सरल-से-सरल और सुबोध भाषा का ही उपयोग किया है। यही कारण है कि बौद्धधर्म की सारी धर्म-पुस्तकें उस समय की प्रचलित भाषा प्राकृतिक वा पाली में ही मिलती हैं, श्री गुरुनानक देव और अन्य सिख गुरुओं ने अपने सदुपदेशों को उस समय की प्रचलित भाषा हिन्दी में ही दिया है, गोस्वामी तुलसीदास ने '**रामचरितमानस**' की रचना हिन्दी में ही की और महर्षि दयानन्द ने '**सत्यार्थ प्रकाश**' को हिन्दी में ही लिखा। इससे हम इस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि वैज्ञानिक पुस्तकों की भाषा सरल-से-सरल होनी चाहिए।

वैज्ञानिक ग्रन्थों में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अनिवार्य है। कुछ वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जो किसी विशेष अर्थ को लेकर प्रयुक्त हुए हैं। उसी अर्थ को जताने के लिए नये शब्दों को हम गढ़ सकें तो अवश्य ऐसा करें और ऐसा करना उचित भी है। यदि ये पारिभाषिक शब्द भारत की सब भाषाओं—हिन्दी, बंगाली, मराठी और गुजराती में एक ही हों तो हमारा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाता है और हमें अधिक विद्वानों का सहयोग प्राप्त हो सकता है। यद्यपि पारिभाषिक शब्दों के अनुवाद के पक्ष में मैं हूँ पर रासायनिक द्रव्यों और अन्य पदार्थों के नामों को हिन्दी में अनुवाद करने के मैं बिलकुल विरुद्ध हूँ। इससे हमें कोई लाभ नहीं दिखाई पड़ता पर त्रुटियाँ अनेक प्राप्त होती हैं। केवल कार्बनिक रसायन के यौगिकों की संख्या ही दो लाख से अधिक है। इसके अनुवाद करने में जो समय, दिमाग और धन लगेगा

वह तो है ही, पर ऐसा होने से हम सरलता से पाश्चात्य देशों के साहित्य से लाभ नहीं उठा सकेंगे जो विज्ञान के परिपूर्ण ज्ञान के लिए अत्यावश्यक है।

आधुनिक शिक्षा-पद्धति में दोष है, इसे प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। इस शिक्षा से मस्तिष्क की उन्नति अवश्य होती है पर शरीर के अन्य अवयव बहुत कुछ निकम्मे रह जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि आजकल के शिक्षित व्यक्ति स्वतन्त्र व्यवसाय की ओर नहीं झुकते। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के लिए नौकरी मिलना सम्भव नहीं है। इस कारण इस शिक्षा-पद्धति को परिवर्तित कर इसके दोषों के दूर करने में देश के प्रमुख व्यक्ति संलग्न हैं। इसके फलस्वरूप कुछ समय से प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक योजना देश के सम्मुख उपस्थित है। यह योजना "मौलिक शिक्षा की वार्धा योजना" के नाम से विख्यात है। इस योजना पर सामयिक पत्रों में बहुत कुछ वाद-विवाद, पक्ष और विपक्ष में, चल रहा है। इस योजना में विज्ञान का क्या स्थान है, इस पर विचार करना हमारा कर्तव्य है।

वार्धा-योजना ७ वर्ष से १४ वर्ष की उम्र के बालकों के लिए है। इसमें विज्ञान विशेषतः व्यावहारिक विज्ञान का स्थान बहुत ऊँचा रहना चाहिये। सन्तोष की बात है कि इस योजना में विज्ञान का समावेश समुचित रूप से किया गया है। उदाहरणस्वरूप गाँवों में कौन-कौन फसलें, वृक्ष और पौधे हैं उपजते हैं; वे कितने बड़े होते हैं; उनकी छालें, जड़ें, पत्ते, फूल, फल और बीज किस रूप, रंग और आकार के होते हैं; फसलें कब बोयी और काटी जाती हैं; उनके बीज कितने दिनों में अंकुरित होते हैं; पौधों को भी आहार, जल और प्रकाश की जरूरत होती है; उनकी जड़ों, धड़ों, पत्तों, फूलों और बीजों से कौन और कैसे कार्य होते हैं; बीज कितने प्रकार के होते हैं; वे कैसे पवन, जल और पशुओं के द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जाते हैं; पौधे कैसे साँस लेते हैं; कार्बन को वे कैसे ग्रहण करते और उससे बढ़ते हैं; जड़ों से वे कैसे जल और आहार को ग्रहण करते हैं; वायु क्या है; साँस के लिए वह क्यों आवश्यक है; जलने में वायु का क्या भाग है; आग क्या है; रहने के कमरे क्यों हवादार होने चाहिए; वायु में जो धूलकण रहते हैं उनसे क्या लाभ व हानि होती है; कौन-कौन बीमारियाँ धूल के कारण फैलती हैं; जो वायु साँस के द्वारा बाहर निकलती है उसमें और साँस के द्वारा अन्दर जाने वाली वायु में क्या भेद है; वायु किन-किन गैसों से बनी है; उनमें क्या-क्या अशुद्धियाँ रह सकती हैं; इन अशुद्धियों को कैसे दूर किया जा

सकता है; वायु के शुद्ध करने में पेड़-पौधे कैसे सहायक होते हैं; कमरे कैसे हवादार बनाये जा सकते हैं; वायुमण्डल का दबाव क्या है ?

उसी प्रकार जन्तु-विज्ञान, रसायन, भौतिक विज्ञान, गणित, ज्योतिष, शरीर-क्रिया विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, वानस्पतिक विज्ञान इत्यादि व्यावहारिक विज्ञान के सभी अङ्गों का उस योजना में समावेश है; यद्यपि इधर-उधर कुछ दो-चार आवश्यक बातें पाठ्यक्रम में छूट गयी हैं। इस शिक्षा-पद्धति में पढ़े बालक आज के बालकों से कहीं अधिक जानकार होंगे इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। विशेषतः जब उनकी शिक्षा मातृ-भाषा के द्वारा दी जायगी।

पर इस योजना को सफल बनाने के लिए अच्छे शिक्षकों का होना अत्यावश्यक है। ऐसे सुयोग्य शिक्षक इस समय प्राप्त हो सकेंगे, इसमें मुझे सन्देह है। इसके लिए विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है। समय-समय पर इन शिक्षकों को विश्वविद्यालयों के नगरों में बुलाकर विशेषज्ञों के द्वारा व्याख्यान दिलाना आवश्यक है। यह कार्य प्रान्तीय सरकारें कर सकती हैं। ऐसा होने से ही वार्धा-योजना के सफल होने की सम्भावना हो सकती है और इसे सफल बनाने का प्रयत्न प्रत्येक देशहितैषी को करना चाहिये।

अभिभाषण-६

डॉ० गोरख प्रसाद

महिलाओ तथा सज्जनो,

इस परिषद् का सभापति चुन कर हिन्दी-भाषी जनता ने मेरा जो सम्मान किया है उसे मैं हृदय से अनुभव कर रहा हूँ और मैं इसके लिए धन्यवाद देता हूँ। वैज्ञानिक क्षेत्र में भी हिन्दी का महत्त्व दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है और यह उचित ही है। उदाहरणतः **संयुक्त प्रान्त के इण्टर-मीडिएट बोर्ड ने हाईस्कूल की विज्ञान की परीक्षाओं में हिन्दी या उर्दू में उत्तर देना अनिवार्य कर दिया है।** एक समय था जब लोगों को सन्देह हुआ करता था, कि हिन्दी द्वारा सरल विज्ञान की भी शिक्षा या परीक्षा हो सकेगी या नहीं; परन्तु अब वह समय आ गया जब ऐसी शिक्षा और परीक्षा में हिन्दी या उर्दू को ही माध्यम बनाना अनिवार्य हो गया है। यह बड़े सन्तोष की बात है। इस कठिन कार्य के लिये क्षेत्र तैयार करने का अधिकांश श्रेय उन व्यक्तियों को है जिन्होंने अनेक कठिनाइयाँ झेल कर हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी प्रथम पुस्तकें लिखीं।

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं जान पड़ता कि अब शीघ्र ही हिन्दी में हाई स्कूल तक के लिये अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार हो जायेंगी। परन्तु यह साहित्य सम्पूर्ण विज्ञान के साहित्य का कदाचित् एक हजारवाँ भाग भी न होगा। उन लोगों के सामने जो **विज्ञान साहित्य निर्माण में लगे हैं अभी अतिबृहद् कार्य ज्यों-का-त्यों पड़ा है। अनेक विषयों को किसी ने अभी तक छुआ नहीं है, विशेषकर विज्ञान की उच्च शाखाओं को। यह परम आवश्यक है कि शीघ्र ही प्रत्येक अङ्ग पर कोई-न-कोई छोटी-मोटी पुस्तक प्रकाशित हो जाय; अवश्य ही प्रथम प्रयास होने के कारण ये पुस्तकें कदाचित् प्रथम श्रेणी की न हो सकेंगी और सम्भवतः ये अधिक ब्यौरेवार भी न होंगी, परन्तु एक बार ढाँचा तैयार हो जाने पर आगामी लेखक त्रुटियों को सहज ही दूर कर लेंगे और आवश्यक ब्यौरा भी भर लेंगे।**

२८वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १६६६ काशी अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

परन्तु जिस धीमी चाल से हम इन दिनों वैज्ञानिक साहित्य के निकालने में आगे बढ़ रहे हैं उस गति से चलने में हमें उपर्युक्त उद्देश्य के साधन में सैकड़ों वर्ष लगेंगे। हमें अधिक तीव्र गति से आगे बढ़ना पड़ेगा। परन्तु इसमें कई एक अड़चनें हैं जिनमें से मुख्य है धनाभाव। सम्मेलन की इसी विज्ञान परिषद् के गत वर्ष के सभापति ने जो दशवर्षीय योजना रखी थी वह बड़ी ही सुन्दर थी, परन्तु उसमें एक लाख रुपये की आवश्यकता थी। वह कहाँ से आये? दुर्भाग्यवश अभी तक कोई भी योग्य व्यक्ति इस कार्य के पीछे तन-मन-धन से नहीं लग सका है। न कोई आशा ही दिखलाई दे रही है कि निकट भविष्य में कोई ऐसा मिलेगा जो इतना धन इकट्ठा कर देगा।

मेरी राय में वह समय आ गया है जब सरकार और दानवीरों को चाहिये कि वे स्वयं वैज्ञानिकों की सहायता करें।

चार संस्थाएँ

जब तक अन्य कोई उपाय नहीं निकलता तब तक लाचार होकर उन्हीं ही साधनों का सहारा लेना पड़ेगा जो इस समय वर्तमान हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी और प्रयाग की विज्ञान परिषद् ये **चारों संस्थाएँ** आज हिन्दी में अच्छा वैज्ञानिक साहित्य छाप सकती हैं। व्यवसायी प्रकाशकों से उच्च वैज्ञानिक पुस्तकें छापने की आशा करना वृथा है क्योंकि इनके प्रकाशन में घाटा-ही-घाटा है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी को छोड़ अन्य संस्थाओं में इतना धन नहीं है कि वे लेखकों को उचित पारिश्रमिक दे सकें। हिन्दुस्तानी एकेडेमी में भी प्रति वर्ष केवल लगभग तीस हजार की आमदनी है, जिसमें से पचीस हजार तो सरकार से मिलता है और लगभग पाँच हजार पुस्तकों की बिक्री से। दुर्भाग्यवश वहाँ दफ्तर-खर्च और रेल भाड़ा कुछ अधिक होता है और इसलिए आय से सत्रह हजार रुपया तो यों निकल जाता है। कुछ पारितोषिक, पुस्तकालय आदि में खर्च होता है। शेष का आधा उर्दू के लिये निकल जाता है। जो बचता है उसमें से एक मासिक पत्रिका छपती है, और यदि शेष का एक चौथाई वैज्ञानिक पुस्तकों के लिये रखा जाय तो आठ सौ रुपये से कुछ कम ही इस काम के लिए मिलता है। सम्मेलन की विज्ञान परिषद् के गतवर्ष के सभापति की योजना में लगभग डेढ़-सौ पृष्ठों की एक पुस्तक के लिए एक हजार रुपये का खर्च आँका गया था जो मुझे भी ठीक जान पड़ता है। इस प्रकार

हिन्दुस्तानी एकेडेमी से तीन वर्ष में दो पुस्तकों के छापने की आशा की जा सकती है ।

उपर्युक्त अन्य तीन संस्थाओं में अपेक्षाकृत बहुत सस्ते में काम चलता है । उदाहरणतः प्रयाग की विज्ञान परिषद् ने अभी तक जितनी भी पुस्तकें छापी हैं उनके लिये लेखकों को एक कौड़ी भी नहीं दी गयी है । इसलिए ऐसी संस्थाओं को उन उदार लेखकों पर आश्रित रहना पड़ता है जो या तो स्वान्तःसुखाय या मातृभाषा पर तरस खाकर कुछ लिख देने की कृपा करते हैं । इस प्रकार कुछ बहुत ही अच्छी पुस्तकें निकल सकी हैं, परन्तु ऐसे लेखक इने-गिने ही हैं और किसी से भी दो-तीन वर्ष में एक से अधिक पुस्तक की आशा नहीं की जा सकती । प्रयाग की विज्ञान परिषद् के मन्त्री रहने के कारण मैं मुफ्त पुस्तक प्राप्त करने की कठिनाइयों को अच्छी तरह जानता हूँ ।

मुफ्त में पुस्तक लिख देने वालों की संख्या इतनी परिमित है कि अधिकांश विशेष विषयों पर लेखक ही नहीं मिलते । एक छोटा-सा उदाहरण लीजिये । मैं बहुत दिनों से इस प्रयत्न में हूँ कि एक छोटी-सी पुस्तिका कपड़ा रँगने पर कोई लिख कर मुझे दे दे । इलाहाबाद और कानपुर में मैंने काफी कोशिश की, परन्तु अभी तक ऐसा कोई मुझे नहीं मिल सका जो इस काम को करने के लिये तैयार हो ।

खैर इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी प्रयाग को विज्ञान परिषद् प्रति-वर्ष एक या दो पुस्तकें, हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी एक या दो पुस्तकें, और काशी नागरी प्रचारणी सभा दो-तीन पुस्तकें छाप सकती है । इस प्रकार संयुक्त प्रांत की सब संस्थाओं के सहयोग से प्रतिवर्ष पाँच या छह पुस्तकें छप सकती हैं । यदि इनमें सहयोग हो तो ये पुस्तकें विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं पर निकल सकती हैं और दस-बीस वर्षों में इस ओर भी पर्याप्त उन्नति हो सकती है । साथ ही, यदि इस प्रान्त के बाहर की संस्थाओं का भी सहयोग हो तो उन्नति और भी शीघ्र होगी ।

मार्ग में कठिनाइयाँ

ऊपर मैंने कहा है कि साहित्य-सेवा की दृष्टि से मुफ्त लिखने वालों की संख्या अत्यन्त परिमित है परन्तु निश्चय है कि इनकी संख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जायगी । उनकी संख्या शीघ्र नहीं बढ़ती, इसका एक कारण यह है कि नवीन लेखकों के मार्ग में इस समय अनेक कठिनाइयाँ हैं । हमारे सभी वर्तमान

वैज्ञानिकों ने अपने-अपने विषय का ज्ञान अंग्रेजी माध्यम द्वारा प्राप्त किया है । अन्य जो कुछ साहित्य भी वे पढ़ते हैं उनका अधिकांश अंग्रेजी में रहता है । दैनिक समाचार भी वे अंग्रेजी पत्रों में पढ़ते हैं । पढ़ने-पढ़ाने का काम भी अंग्रेजी में होता है । इसीलिए स्वाभाविक है कि वे अंग्रेजी में अधिक सुगमता से अपने भावों को प्रकट कर सकते हैं । ऐसे लोग जब हिन्दी लिखने बैठते हैं तब उनको उपयुक्त शब्द और मुहावरे सूझते ही नहीं । केवल विज्ञान में ही यह बात नहीं है । विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र में भी यही बात लागू है । इसका कभी-कभी तो हास्यप्रद परिणाम होता है । जब कोई मौलिक कहानी लेखक उन भावों को जो उसे अंग्रेजी भाषा में पढ़ी किसी रचना के कारण सूझे हैं अपनी मनगढ़न्त हिन्दी में लिखता है और अपने नवीन शब्दों या मुहावरों पर भरोसा न कर उनके सामने कोष्ठों में अंग्रेजी शब्दों को भी लिख देता है तब आप क्या कहेंगे ? मेरा अभिप्राय यहाँ उन अंग्रेजी शब्दों या मुहावरों से नहीं है जिसे लेखक जान-बूझ कर अपने किसी विशेष पात्र के कहे वाक्यों में डाल देता है, और जिसका अभिप्राय उस पात्र की अंग्रेजी शिक्षा और बोल-चाल के ढंग का सच्चा चित्र अङ्कित करना रहता है । ऐसा करना तो सर्वथा उचित ही है, ठीक उसी प्रकार जैसे गँवार पात्रों के मुख से देहाती भाषा और बंगाली पात्रों के मुख से लिंग-भेद रहित वाक्यों का कहलाना । मेरा यहाँ केवल उन प्रयोगों से तात्पर्य है जिन्हें लेखक स्वयं अपनी ओर से करता है । कुछ वर्ष हुए मैंने 'माधुरी' में कहीं देखा था कि लेखक महोदय ने लिखा था 'यह सफलता की कुञ्जी है ।' परन्तु उन्हें इसका भरोसा नहीं था कि पाठकगण उनकी 'बड़ी कुञ्जी' समझ सकेंगे और इसलिए उन्होंने इसके सामने कोष्ठों के भीतर Master-key भी जोड़ दिया था । परन्तु ऐसे प्रयोगों की तलाश में बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं है । मध्य-भारत हिन्दी साहित्य समिति की मासिक मुखपत्रिका 'वीणा' की नवीनतम प्रति (अक्टूबर १९३९) में 'नग्न ज्वाला' नाम की एक कहानी है जिसमें लेखक महोदय लिखते हैं—

'उस स्वप्न से वह इतना बेचैन हो गया कि वह मानो अब बैठ न सकेगा, रुक न सकेगा । सृष्टि का केन्द्र (Centre of Gravity) जैसे उसे खींच रहा है ।

भला इस Centre of Gravity की क्या आवश्यकता थी ? एक पृष्ठ आगे इसी कहानी में है—

'अपनी समस्त शक्तियाँ और साहस बटोर कर नीलमणि ने तीन दिन पहले के उस दृश्य को अपनी स्मृति के Perspective में देखा—जैसे किसी पिछली रात का भयानक स्वप्न हो।'

बेचारे लेखक को Perspective की हिन्दी न सूझी होगी। कोई शब्द वह ऐसा न गढ़ सका होगा जिसके आगे वह कोष्ठों में इस शब्द को रख सकता। इसलिये उसने इस शब्द को ज्यों-का-त्यों घोर रोमन लिपि में रख दिया। सम्भवत: उसने सम्पादक महोदय से प्रार्थना भी की हो कि आप इन शब्दों का हिन्दी रूपान्तर कर दीजियेगा। कदाचित सम्पादकजी को भी कोई उपयुक्त शब्द न सूझा हो।

इसी प्रकार 'वीणा' की इसी प्रति में प्रसाद के 'विशाख' नाटक की आलोचना करते हुए एक लेखक लिखता है :—

'शेक्सपीयर के सदृश प्रसाद जी का हास्य भी बौद्धिक (Intellectual) है।'

इन उदाहरणों से आप देख सकते हैं कि पारिभाषिक शब्दों की कौन कहे साधारण बोलचाल की भाषा लिखने में किसी ऐसे सुगम उपाय की बराबर आवश्यकता प्रतीत होती है जिससे अंग्रेजी जानने वालों को उचित हिन्दी शब्द तुरन्त मिल जायँ। परन्तु **आज तक कोई भी ऐसा अंग्रेजी-हिन्दी कोश, जो लेखकों के लिये वस्तुत: उपयोगी हो, नहीं बन पाया है।** मैं अपने निजी और अनेक लेखकों और भावी लेखकों के भी अनुभव से जानता हूँ कि एक 'अनुवादकों के लिये कोश' की विशेष आवश्यकता है जिसमें साधारण अंग्रेजी शब्दों में से प्रत्येक के लिये वे सभी हिन्दी शब्द दिये हों जो सम्भवत: प्रयुक्त हो सकते हैं और उस अंग्रेजी शब्द के प्रत्येक अर्थ के लिये उपयुक्त हिन्दी शब्द दिये जायँ। ऐसे कोश में अंग्रेजी शब्दों के समझाने की चेष्टा न की जाय, सदा ध्यान इस बात पर रखा जाय कि उसी विचार को मुहावरेदार हिन्दी में प्रकट करना हो तो कैसे किया जायगा और यह कितने प्रकार से किया जा सकता है। ऐसा कोश उन लोगों के लिए उपयोगी होगा जो अंग्रेजी और हिन्दी दोनों अच्छी तरह जानते हैं, परन्तु समय पर उनको उपयुक्त शब्द या मुहावरा नहीं सूझता। ऐसे व्यक्तियों को कोश में दिये हुए बहुत-से शब्दों में से उस शब्द को चुन लेने में कोई कठिनाई न होगी जो उनके मतलब का हो। ऐसा कोश अवश्य ही बड़े काम का होगा। अभी तक जितनी भी अंग्रेजी-हिन्दी डिक्शनरियाँ मैंने देखी हैं वे सभी लेखकों के लिये

नहीं, उन विद्यार्थियों के लिये बनी हैं जो किसी विशेष अंग्रेजी शब्द का अर्थ जानना चाहते हैं। लेखकों के लिये सबसे उपयोगी कोश अब भी आप्टे की 'इंगलिश-संस्कृत डिक्शनरी' है। परन्तु बहुत-से शब्द संस्कृत से नहीं निकले हैं। फिर बहुत से नवीन शब्द भी अब गढ़ लिये गये हैं जो समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में बराबर आते हैं और जिनका समावेश अभी किसी अंग्रेजी-हिन्दी कोश में भी नहीं हुआ है। लेखकों के कोश मे भी नहीं हुआ है। लेखकों के कोश में इनको भी सम्मिलित कर लेना चाहिये।

कदाचित् काशी नागरी प्रचारिणी सभा या हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस काम को आसनी से कर सकेगा। ऐसे कोश से नवीन वैज्ञानिक लेखकों को बड़ी सहायता मिलेगी।

वैज्ञानिक लेखकों को साधारण भावों के प्रकट करने वाले शब्दों के अतिरिक्त पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में भी बड़ी कठिनाई पड़ती है। **पारिभाषिक शब्दों के कोश काशी नागरी प्रचारिणी सभा और प्रयाग की विज्ञान परिषद् की ओर से छपे हैं परन्तु ये सर्वथा अपूर्ण हैं।** हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से एक समिति इस सम्बन्ध मे कार्य कर रही है। आशा है कि इसके परिश्रम से अधिक सम्पूर्ण कोश शीघ्र तैयार होगा।

अभी हिन्दी वैज्ञानिक भाषा परिमार्जित नहीं हो पायी है। यह जिस किसी भी धारा में बहा दी जायगी बह जायगी। परन्तु **इसी कारण से उनका उत्तरदायित्व जो वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण में लगे हैं भारी है।** तो भी कई लोग प्रचलित पुस्तकों और कोशों की अवहेलना करते हैं। यदि कोई अधिक उत्तम नवीन शब्द गढ़ सकें तो अवश्य उन्हें नवीन शब्द चलाना चाहिये। परन्तु पहले वाले अच्छे शब्दों के बदले केवल आलस्यवश तुरन्त गढ़े हुए शब्दों के प्रचार से हानि छोड़ कर लाभ नहीं हो सकता। प्रत्येक लेखक को उसी विषय की लिखी पूर्व पुस्तकों पर और तत्सम्बन्धी पारिभाषिक कोश पर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

अन्य बातें

ऊपर की बातें महत्त्वपूर्ण हैं। उनके बाद कुछ कम महत्त्व वाली बातों पर भी विचार कर लेना अनुचित न होगा। इनमें से एक तो है अंग्रेजी शब्दों का देवनागरी में लिखना। कुछ लोग न जाने क्यों अंग्रेजी शब्दों को देवनागरी में लिखते समय उन्हें बेमतलब तोड़-मरोड़ देते हैं। यदि किसी

अंग्रेजी शब्द के उच्चारण या लेखन में कठिनाई पड़ती हो तब तो उसमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर देना कदाचित् अनुचित न होगा, पर सीधे-सादे शब्दों को बदलना अवश्य ही अनुचित है। यदि अंग्रेजी शब्द के बदले कोई हिन्दी शब्द रख लिया जाय जिसके अर्थ से पाठक को कुछ सहायता मिलती हो तो बात बिलकुल दूसरी है, परन्तु यदि अंग्रेजी ही शब्द रखना है और वह न तो उच्चारण में और न लिखने में किसी प्रकार कठिन है तो अंग्रेजी शब्द को ज्यों-का-त्यों रखना ही उचित प्रतीत होता है।

परन्तु कई एक ध्वनियों के लिखने में वास्तविक कठिनाई पड़ती है। हिन्दी में ह्रस्व ए, ऐ, ओ और औ हैं नहीं। फिर कुछ लोग आ का गोल उच्चारण ऑ के लिए विशेष चिह्न ॅ का उपयोग नहीं करते। कभी-कभी ह्रस्व ऑ की भी आवश्यकता पड़ती है। इन सबके लिये क्या करना चाहिये इस पर नियम बन जाना चाहिये। फिर, जहाँ हिन्दी में ध्वनियाँ हैं वहाँ भी लोग मनमानी गड़बड़ी करते हैं। उदाहरणतः ए और ऐ में अकसर बहुत-से लोग बदली-बदला कर डालते हैं। डाक्टर सेठी नेगेटिव के बदले नैगेटिव लिखते हैं (देखो उनका प्रारम्भिक भौतिक विज्ञान) परन्तु जहाँ वे 'कैमरा' लिखते वहाँ एक फोटोग्राफी की पुस्तक लिखने वाला 'केमरा' लिखता है (देखो अमजद अली खाँ, सरल फोटोग्राफी शिक्षा)। अधिकांश विज्ञापनों में भी 'केमरा' लिखा मिलता है। इसी प्रकार अंग्रेजी शब्द ounce के बदले कोई आउंस और कोई औंस लिखता है। अंग्रेजी शब्द height को कोई हाइट और कोई हैट लिखता है। यदि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग की विज्ञान परिषद्, इण्टरमीडियेट बोर्ड और वर्नाक्यूलर एजुकेशन बोर्ड मिल कर कोई एक विशेष शैली नियत कर लें और अपनी प्रत्येक पुस्तक में उन नियमों का पालन करें और करावें तो यह गड़बड़ी शीघ्र ही मिट जायगी।

इस सम्बन्ध में अक्षर-विन्यास के कुछ अन्य अङ्गों पर भी विचार करना पड़ेगा। जैसे इस पर कि संयुक्ताक्षरों का कहाँ तक उपयोग किया जाय। अकसर हम साधारण उच्चारण में कई एक स्थितियों में बिना हलन्त वाले अक्षरों को हलन्त युक्त की तरह पढ़ते हैं। उससे, इससे, . गरमी आदि शब्दों के मध्य अक्षर इसके उदाहरण हैं। इसके आधार पर ऐनैस्टिग्मैट् को ऐनैस-टिगमैट लिखना ठीक होगा या नहीं? बहुत कठिन उच्चारण और वर्ण-विन्यास रहने से अवश्य ही अंग्रेजी से पूर्णतया अनभिज्ञ लोगों में शब्द

धीरे-धीरे दूसरा हो जायगा, कुछ-कुछ उसी प्रकार से जैसे हमारे माली लोग कैंडिटफ़्ट को चाँदी टप या वर्बेना को बबीना कहते हैं। परन्तु, दूसरी ओर वर्ण-विन्यास में अधिक सरलता लाने की चेष्टा करने में इसका भी डर रहेगा कि शब्द इतने बदल जा सकते हैं कि वे पहचान न पड़ें। जर्म्स को जरमस लिखने से अवश्य यह जर-मस पढ़ा जायगा। इसलिए कुछ मोटे नियमों का बना लेना उचित होगा और इनका सभी लेखक पालन करें।

वैज्ञानिक शब्दों के लिङ्ग के विषय में भी बड़ी गड़बड़ी रहती है। क्यों न कुछ नियम बना लिये जायँ जिनके आधार पर विदेशी नपुंसक शब्दों का हिन्दी के लिये लिंग निर्धारण किया जाय। लिंग आसानी से शब्द के अन्तिम स्वर के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। उदाहरणतः, यदि हम मान लें कि सब अकारान्त विदेशी शब्द जिनसे किसी नर-नारी-भेद रहित वस्तु का बोध होता है पुँल्लिङ्ग गिने जायँगे तो क्या हर्ज होगा ? आखिर हम बोलते ही हैं कि हवा बहती है; पवन बहता है। तो फिर यदि कहीं बरबस हमें विण्ड शब्द का प्रयोग करना पड़े तो विण्ड बहता है इस वाक्य को शुद्ध मानने में क्या हानि है ? परन्तु स्थिर नियमों के अभाव में कोई लिखेगा विण्ड बहता है, कोई लिखेगा विण्ड बहती है और भविष्य के कोशकारों को पुस्तकों में ढूँढ़-ढूँढ़ कर देखना पड़ेगा कि किस शब्द को किस लेखक ने किस-किस लिङ्ग में प्रयुक्त किया है, और हमारे भावी विद्यार्थियों को पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ उनका लिङ्ग भी रटना पड़ेगा। निकट भविष्य के विद्यार्थी तो शायद मनमाना लिङ्ग लिख कर ही परीक्षा-सागर पार हो जायँगे।

ऊपर मैंने ज्यों-के-त्यों ले लिये गये विदेशी शब्दों के बारे में जो कुछ कहा है उससे यह न समझना चाहिये कि मैं सभी या अधिकांश विदेशी शब्दों को ज्यों-का-त्यों ले लेने के पक्ष में हूँ। कदापि नहीं। इस विषय पर मेरी सम्मति आज भी वैसी ही है जैसी मैंने अपनी पुस्तक 'फोटोग्राफी' के लिये गढ़े शब्दों के सम्बन्ध में दस वर्ष पहले प्रकाशित की थी। उस समय मैंने लिखा था—

''ऊपर के वर्णन में कई एक नये-नये गढ़े शब्द लिखे गये हैं; पाठकों के मन में यह अवश्य खटकेगा, पर किया क्या जाय। या तो अंग्रेजी शब्दों को ज्यों-का-त्यों प्रयोग किया जाय, या नये शब्द गढ़े जायँ। उन शब्दों को जिनका प्रयोग फोटोग्राफी सम्बन्धी बात-चीत में बार-बार किया जाता है

हमने ज्यों-का-त्यों रख देना ही उचित समझा है। और शब्दों के बदले नया शब्द ही गढ़ लेना उचित जान पड़ता है, क्योंकि वे पहले कितने ही बेढब क्यों न जान पड़ें, पीछे प्रिय जान पड़ेंगे। कुछ भी हो, अंग्रेजी न जानने वाले को "इनफ़िनिटी-कैच" से तो "अनन्त-पकड़" ही अच्छा और सरल जान पड़ेगा। कुछ लोग इन नये गढ़े शब्दों पर अवश्य हँसेंगे, पर उन्हें विचार करना चाहिये कि अंग्रेजी के शब्द भी कुछ कम उपहास योग्य नहीं हैं। नमूने के लिये डार्क स्लाइड ही लीजिये। डार्क हुआ "अँधेरा" और स्लाइड हुआ "खिसकने वाला"। इन शब्दों के अर्थ को जान कर फ़ोटोग्राफ़ी न जानने वाला कौन ऐसा विलक्षण बुद्धिमान है जो अनुमान कर सकेगा कि डार्क स्लाइड किस जानवर का नाम है? लाल बुझक्कड़ को छोड़ कर दूसरा तो कोई नहीं दिखलाई पड़ता। हमारे एक फोटोग्राफर मित्र, जिनसे इस विषय पर हम बातें कर रहे थे, सहसा बोल उठे "मार ली है बाजी। इसको कहना चाहिये हिन्दी में अन्धेर खसकर।"

सारांश यह कि बाज़ार में बिकने वाली चीजें जिनका अंग्रेजी नाम प्रचलित हो गया है, या ऐसे शब्द जो शिक्षित समाज के साधारण बोल-चाल में आ गये हैं, प्रायः ज्यों-के-त्यों ले लिये जायँ, परन्तु अन्य शब्दों का अनुवाद कर लिया जाय।

ऊपर मैंने कहा है कि यदि वैज्ञानिक साहित्य का प्रथम ढाँचा तैयार हो जाय तो उसमें पीछे आवश्यक ब्यौरा आसानी से भरा जा सकता है। इस सम्बन्ध में मेरी राय है कि **यदि एक वैज्ञानिक विश्वकोश तैयार किया जाय तो यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।** ऐसा विश्वकोश यदि प्रसिद्ध एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका के वैज्ञानिक अंशों के प्रसार का हो तो हम प्रायः सभी विषयों का प्रारम्भिक साहित्य तैयार कर लेंगे और प्रायः सभी आवश्यक पारिभाषिक शब्द बन जायँगे। यह कार्य हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य-विभाग के बूते के बाहर जान पड़ता है, परन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा यदि चेष्टा करे तो इस काम को कर सकती है, या यदि सम्मेलन ही सरकार से आवश्यक धन प्राप्त कर सके तो इस कार्य के करने में सफल हो सकता है।

भाषण समाप्त करने के पहले कुल का निष्कर्ष मैं दोहरा देना चाहता हूँ। वह यह है कि गत वर्ष के सभापति की बतलायी दश-वर्षीय योजना के लिये प्रयत्न किया जाय और आवश्यक धन प्राप्त करने की चेष्टा की जाय। तब

तक जो कुछ भी काम वर्तमान साहित्यिक संस्थाएँ कर सकती हैं उसे वे एक दूसरे के सहयोग और परामर्श से करें। ऐसे विषय पर जिस पर पहले कोई पुस्तक कहीं से निकल चुकी है और वह अब भी खरीदी जा सकती है, दूसरी पुस्तक निकालने की चेष्टा अभी न की जाय। हाँ, यदि यह विषय ऐसा हो कि उस पर लिखी पुस्तक से संस्था को आर्थिक लाभ होने की सम्भावना हो तो बात दूसरी है। सब संस्थाएँ मिलकर ऐसी चेष्टा करें कि कुछ ही वर्षों में विज्ञान के प्रत्येक अंग पर कम-से-कम प्रारम्भिक पुस्तकें अवश्य निकल जायँ। पारिभाषिक शब्दकोश-निर्माण-समिति अपना कार्य अधिक वेग से चालू करे और एक अच्छा अंग्रेजी-हिन्दी कोश भी बने। विदेशी शब्दों को नागरी में लिखने के लिये नियम बन जायँ और यथासम्भव लेखकों से उनका पालन कराया जाय। जहाँ तक सम्भव हो विदेशी नपुंसक शब्दों के लिये लिङ्ग-निर्धारण-नियम भी बन जायँ। हो सके तो एक वैज्ञानिक विश्व-कोश भी तैयार किया जाय। आवश्यक कार्यों के लिये सरकार से आर्थिक सहायता माँगी जाय और धनी व्यक्तियों और रियासतों से भी धन एकत्रित किया जाय।

अभिभाषण*–७

डॉ० सत्यप्रकाश

उपस्थित भद्र महिलाओ और सज्जनो,

वैज्ञानिकों से अधिक शिष्टाचार की आशा करना व्यर्थ है। यदि मैं थोड़े-से ही सीधे-सादे शब्दों में उस सम्मान के लिए, जो मुझे इस समय प्रदान किया गया है, कृतज्ञता प्रकाशित करूँ तो आप क्षमा करें। मैं उस ललित पदावलि का प्रयोग नहीं करना चाहता जो साधारणतः ऐसे अवसरों पर उपयुक्त समझी जाती है। इस वर्ष का यह सम्मेलन विशेष परिस्थितियों में हो रहा है। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि आपके सम्मुख संसार का वह वर्तमान नग्न रूप चित्रित करूँ जिसमें मानव-शक्तियों का उपयोग पैशाचिक इष्टियों की सिद्धि के लिए किया जा रहा है। जिस प्रकार का रक्तपात, हाहाकार एवं संसार हमारे पूर्व और पश्चिमी देशों में हो रहा है उसको देखकर बहुतों के हृदय में ज्ञान और सभ्यता दोनों के प्रति ग्लानि उत्पन्न होने लगी है। मैं इस बात का उल्लेख यहाँ न करता, पर संसार की वर्तमान परिस्थिति का कलंक विज्ञान और वैज्ञानिक युग के मस्तक पर लगाया जा रहा है। विज्ञान ने संसार को शान्ति एवं युद्ध दोनों के नवीन साधन प्राप्त कराये हैं। शान्ति और युद्ध दो परस्पर विरोधी शब्द प्रतीत होते हैं। पर दोनों का अन्ततोगत्वा अभिप्राय एक ही है। विज्ञान ने पहले की अपेक्षा मनुष्य को आज अधिक सुरक्षित बना दिया, पर इस कथन का भी तो अर्थ यह है कि, यदि कोई युद्ध सम्भावित हुआ तो वह पहले के युद्धों से अधिक भयंकर होगा। मैं तो वर्तमान युद्ध की भयंकरता देखकर अधिक विस्मित नहीं होना चाहता। संसार के इतिहास में आज से पूर्व अनेक बार एक-से-एक भयंकर युद्ध हुए हैं और आगे भी होते रहेंगे। राजनीतिज्ञों के कूट-स्वार्थ के कारण संसार की जो परिस्थिति हो गयी थी उसमें युद्ध का होना अनिवार्य था। मैं तो इस युद्ध में भी मानव-कल्याण की भावना देखता हूँ। विप्लवों और भूकम्पों का उद्देश्य विषमताओं का तिरोभाव करना है। इस युद्ध से अनेक

*२९वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् १९९७ पूना अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

राष्ट्रों को नया पाठ सीखने का अवसर प्राप्त होगा, और आशा करता हूँ कि हमारा देश भी अपनी स्थिति को भली-भाँति समझ सकेगा।

वैज्ञानिक परिषदें

संसार की वैज्ञानिक परिषदों के समक्ष आज दो प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं। पहला तो यह कि अपने-अपने देश की आर्थिक सम्पन्नता किस प्रकार बढ़ाई जाय, और दूसरा युद्ध के लिए क्या-क्या तैयारियाँ की जावें। इन दोनों समस्याओं का समाधान राष्ट्रीय और वैज्ञानिक परिषदें पारस्परिक सहयोग से करती हैं। पर दुर्भाग्य तो हमारे देश का है। **हमारे देश में कई वैज्ञानिक परिषदें हैं—इण्डियन सायन्स कांग्रेस, इण्डियन एकेडेमी ऑफ सायन्सेज, नेशनल एकेडमी आफ सायन्सेज, इण्डियन केमिकल सोसायटी, विज्ञान-परिषद् और अनेक संस्थाएँ, पर युद्ध के इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर हमारे राष्ट्रीय कर्णधार और सूत्रधार इन संस्थाओं के प्रति जिस उदासीनता का परिचय दे रहे हैं, वह देश के लिए लज्जा की बात है।** एक तो यूरोप के वे देश हैं जहाँ आजकल युद्ध-सामग्री तैयार करने के लिए वैज्ञानिक शिक्षाप्राप्त युवक कठिनता से मिलते हैं और एक हमारा देश है, जहाँ हमारे शिक्षित युवकों को छोटी-छोटी नौकरियाँ भी नहीं मिल रही हैं। **यदि हमारा देश अपनी समस्या पर स्वयं विचार करने के लिए स्वतन्त्र होता तो कदाचित् साहित्य सम्मेलन की आज की यह विज्ञान परिषद् सम्मेलन के अन्तर्गत अन्य परिषदों की अपेक्षा अधिक मूल्य रखती और हम आज जिन बातों पर विचार करते उसका प्रभाव देश की समस्याओं पर पड़ता।** पर हमें तो यह सौभाग्य ही नहीं प्राप्त है कि अपनी परिषदों में उन गूढ़ समस्याओं पर विचार करें जिनका सम्बन्ध हमारे राष्ट्रीय जीवन से है। मैं तो उस दिन का स्वप्न देखना चाहता हूँ जब कि साहित्य सम्मेलन की इस परिषद् के संकेतों पर राष्ट्र का जीवन निर्भर हो। इस वैज्ञानिक युग में राष्ट्रों का परिचालन वैज्ञानिक परिषदों द्वारा ही हो सकता है। पर यह तभी संभव है जब शासकों और शासितों का दृष्टिकोण और लक्ष्य एक हो, अथवा दूसरे शब्दों में जब राज्य-भक्ति और राष्ट्रप्रेम दोनों शब्द एक ही भाव के द्योतक हों।

मराठी साहित्य

महाराष्ट्र प्रान्त के मुख्य केन्द्र पूना में साहित्य सम्मेलन का होना हमारे लिए गौरव की बात है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लिए महाराष्ट्र ने

जो सेवाएँ की हैं वे इतिहास में अमर रहेंगी। मराठी भाषा के साहित्य-पुजारियों ने अपने भाषा-भण्डार के परिपूर्ण करने में जिस अध्यवसाय का परिचय दिया है वह हम सब के लिये एक उदाहरण है। उनका पुरातत्त्व और इतिहास-प्रेम अद्वितीय है। महाराष्ट्र-राज्यों के इतिहास की जो प्रागतिक सामग्री उन्होंने एकत्र की, वह हमारे लिए अनमोल है। इसी नगर का 'भाण्डारकर अन्वेषणालय' हमारे लिए एक तीर्थ-स्थान हो गया है। यही नहीं, इस पूना के 'महाराष्ट्र कोश मण्डल' ने सात भागों में जो विशाल 'महाराष्ट्र शब्दकोश' प्रकाशित किया है वह भी विशेष महत्त्व का है। कुछ दिन हुए इस मण्डल के संचालकों से मुझे यह भी पता लगा था कि वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का एक प्रामाणिक संग्रह भी वे निकालने जा रहे हैं और सम्भवतः यह प्रकाशित हो भी गया होगा।

मराठी में वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति भी प्रायः संतोषजनक है। मैं इनमें से कुछ का उल्लेख करना चाहता हूँ। श्री मराठे की 'रसायन शास्त्र प्राइमर'; प्रो॰ मोडक का 'निरिन्द्रिय रसायन शास्त्र' और 'सेन्द्रिय रसायन शास्त्र'; श्री कालेजी का 'भारतीय रसायन शास्त्र' और डॉ॰ आपटे की 'रसायन भूमिका' और 'इन्द्रिय-रसायन' आदि पुस्तकें उपयोगी हैं। प्रो॰ मोडक और श्री आपटे ने भौतिक विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले विभिन्न विषयों पर भी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं। प्रो॰ मटंगे का 'अपेक्षावाद' ग्रन्थ भी महत्त्व का है। भौतिक और रसायन की अनेक शालोपयोगी पुस्तकों का उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं।

मराठी भाषा में गणित की उच्च पुस्तकों का अभाव है। शालोपयोगी ग्रन्थ तो अवश्य हैं। ज्योतिष-सम्बन्धी कुछ अच्छी पुस्तकें निकली हैं जैसे श्री दीक्षित जी का 'ज्योतिर्विलास' और 'भारतीय ज्योतिःशास्त्र', श्री ढवलेजी का 'विश्व की रचना' और 'उत्क्रान्ति' और श्री कोल्हटकर-देशपांडे आदि के ग्रन्थ। वनस्पति शास्त्र में श्री भाटवडेकर, सांबारे और दामले जी की पुस्तकें एवं ताम्हने और कान्हेरे का 'सुलभ वनस्पति शास्त्र' इस विषय के संतोषजनक ग्रन्थ हैं। अन्य विषयों पर भी छोटी-छोटी पुस्तकें हैं। विज्ञान-सम्बन्धी स्वतन्त्र पत्रिकाओं का अभी अभाव है। पहले 'मेकेनिकल इञ्जीनियर', अथवा 'इञ्जीनियर' नामक एक पत्रिका अंग्रेजी और मराठी दोनों में निकलती थी। इधर 'उद्यम' नामक एक उपयोगी पत्रिका प्रकाशित होने लगी है।

महाराष्ट्रियों ने हिन्दी साहित्य की भी कम सेवा नहीं की । श्री छत्रपति शिवाजी का हिन्दी-प्रेम सब को विदित है जिनका आश्रय भूषण जैसे कवि को प्राप्त हुआ । मराठी और हिन्दी दोनों की लिपि एक होने के कारण इन दोनों भाषाओं का सम्बन्ध तो और दृढ़ हो गया है । मैंने अपने सम्पादन-काल में 'विज्ञान' में अनेक महाराष्ट्र युवकों के लेख प्रकाशित किये जिनसे उनके हिन्दी-प्रेम का परिचय मिलता है । डॉ. वा. वि. भागवत का एक ग्रन्थ 'प्रकाश रसायन' प्रयाग की विज्ञान परिषद् ने प्रकाशित किया है । श्री शंकरराव जोशी ने हिन्दी की जो सेवा की है वह अद्वितीय है । इन्होंने कृषि और वनस्पति विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें हिन्दी में लिखी हैं । अभी बम्बई के प्रो० रा० ना० भागवत की एक पुस्तक का अनुवाद श्री गजानन जागीरदार जी ने 'रसायन शास्त्रान्तर्गत नवलकथा' नाम से किया है । श्री केशवअनन्त पटवर्धन का 'वनस्पति शास्त्र' भी उल्लेखनीय है । हमें यह आशा है कि हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य के उत्थान में हमें अपने महाराष्ट्र बन्धुओं का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा । राष्ट्रभाषा होने के कारण हिन्दी से जितनी ममता हमें है, उतनी ही सब प्रान्त वालों को होनी चाहिए । हम तो उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब हिन्दी में ग्रन्थ लिखना सभी प्रान्तों में उतने ही गौरव का विषय समझा जायगा जितना कि अंग्रेजी में लिखना इस समय समझा जा रहा है ।

पारस्परिक सहयोग

मुझे हिन्दी के प्रति जितनी निष्ठा है उतनी ही अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति भी, और मैं यह चाहता हूँ कि सभी भाषाएँ एकसमान फलें-फूलें । पर मैं साथ-साथ यह भी चाहता हूँ कि शक्ति का दुरुपयोग न हो । जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ मेरी यह अभिलाषा है कि समस्त भारतीय विद्वान् हिन्दी के प्रति कम-से-कम उतना राग अवश्य प्रकट करें जितना कि वे अंग्रेजी के प्रति प्रकट करते हैं । मैं यह नहीं कहता कि बंगाली भाई बँगला भाषा का परित्याग करें और मराठी या गुजराती सज्जन अपनी भाषा की सेवा न करें । पर मैं यह चाहता हूँ कि उच्च साहित्यिक पुस्तकें हिन्दी में लिखना वे अपना गौरव मानें क्योंकि हिन्दी उनकी और उनके राष्ट्र की भाषा है । यह तो हम सब जानते हैं कि समस्त भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य की उन्नति बहुत ही धीमी है । अनेक कठिनाइयों का सामना करते

हुए हिन्दी में जब आठ-दस से अधिक अच्छी पुस्तकें वर्ष भर में नहीं छप पातीं तो अन्य प्रान्तीय भाषाओं में तो और भी कम छपती होंगी। इस दृष्टि से हम संसार की दौड़ का कभी साथ नहीं दे सकते। सन् १९४० में हमारी प्रान्तिक भाषाओं में जिस कोटि की जितनी संख्या में पुस्तकें निकल रही हैं उनसे अधिक तो यूरोप में सन् १७४० में ही निकलती थीं। आजकल तो **हिन्दी में अच्छे और बुरे सभी प्रकार के वैज्ञानिक साहित्य की वृद्धि कठिनता से एक-डेढ़ हजार पृष्ठों की होती होगी**। इससे कहीं अधिक वृद्धि यूरोपीय देशों में छोटे-से-छोटे प्रकाशक द्वारा होती है! ऐसी परिस्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम सब मिल कर वैज्ञानिक साहित्य की ओर ध्यान दें और अलग-अलग शक्तियों का दुरुपयोग न करें।

मैं अन्य प्रान्तीय भाषाओं का **सहयोग दो प्रकार से चाहता हूँ**। एक-जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हम करें उन्हीं का प्रयोग सब प्रान्तों में हो। यह बात कुछ अधिक कठिन नहीं है। दूसरी बात जिस पर मैं बल देना चाहता हूँ वह यह कि उच्च कोटि के वैज्ञानिक साहित्य के लिए सब प्रान्त हिन्दी को माध्यम बनावें। **हिन्दी से मेरा अभिप्राय सर्वसम्मत राष्ट्र भाषा से है**। मैं इस बात को कुछ और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हाईस्कूल या मैट्रिक्युलेशन तक की परीक्षा के सब ग्रन्थ प्रान्तीय भाषाओं में हों और इन सब भाषाओं में एक ही पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग हो। पर **आगे कालेज की शिक्षाओं के ग्रंथ हिन्दी भाषा में हो**। बी. एस-सी., एम. एस-सी. आदि कक्षा की शिक्षा का माध्यम समस्त प्रान्तों में हिन्दी होना चाहिए। और सभी प्रान्तों के आचार्यों को हिन्दी में लेखन, अध्ययन एवं अध्यापन करने में अपना गौरव समझना चाहिए। सारांश में मेरी यह उत्कट इच्छा है कि निकट भविष्य में हिन्दी को वह स्थान मिले जो इस समय अंग्रेजी को प्राप्त है। अनुसन्धानों एवं अन्वेषण की पत्रिकाओं का माध्यम भी हिन्दी हो।

साहित्य के दो भाग हैं—ललित और उपयोगी। ललित साहित्य के अन्तर्गत गद्य, काव्य, नाटक, गल्प, उपन्यास, पुराण आदि सम्मिलित हैं। ये सब विषय प्रान्तीय भाषाओं के भाण्डार को बढ़ावें। पर सब प्रान्तों के साहित्यकार उपयोगी विषयों के लिए, जिनमें विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र एवं दर्शन सम्मिलित हैं, अपनी राष्ट्रभाषा का आश्रय लें। भारतवर्ष में ऐसा तो सदा होता ही था और यह कोई नयी बात नहीं है। अभी कुछ दिनों पूर्व तक और कुछ अंशों में अब भी कश्मीर से लेकर दक्षिण तक

पण्डित और यही नहीं, पूर्व में नवद्वीप तक के विद्वान् समस्त ज्ञान-विषयक ग्रन्थों के लिए संस्कृत भाषा का आश्रय लेते हैं। कहाँ उव्वट, मम्मट और श्रीहर्ष और कहाँ सायण, रामानुज और शंकर। इन सबने गूढ़ विषयों के लिए प्रान्तीय भेद छोड़कर एक राष्ट्रीय भाषा संस्कृत को अपनाया। और यही कारण है कि ज्ञान के क्षेत्र में (दर्शन, धर्म, ज्योतिष और वैद्यक) समस्त भारत की एक राष्ट्रीयता हमारे अधःपतन के काल में भी बनी रही। शंकर ने अपने ग्रन्थ द्राविड़ भाषा में नहीं लिखे और नवद्वीप के आचार्यों ने नवन्याय के लिये अपनी प्रान्तीय भाषा नहीं अपनायी। 'राजतरंगिणी' के ऐतिहासिक लेखक ने **राष्ट्र की एकमात्र साहित्यिक भाषा संस्कृत का आश्रय लिया**। महाराष्ट्र के कितने ही आचार्यों ने भी यही किया। इन सब के ग्रन्थों में प्रान्तीयता का कहीं आभास नहीं मिलता। संस्कृत की इस व्यापकता को देखकर मेरा हृदय गर्व से गद्गद हो जाया करता है, और कभी-कभी मेरी तो यह इच्छा होती है कि क्यों न संस्कृत को ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में वही स्थान दे दिया जाय जो अब तक दिया जाता रहा है? पर ऐसा प्रतीत होता है कि मेरा यह स्वप्न सम्भव नहीं है। अब **मैं यह चाहता हूँ कि हिन्दी को कम-से-कम वह स्थान अवश्य प्राप्त हो जाय जो अब तक संस्कृत को मिलता रहा है**। जिस प्रकार संस्कृत को ज्ञान का माध्यम बनाने में हमारे आचार्य अपनी प्रान्तीय भाषा को भूल गये और जिस प्रकार अंग्रेजी का आश्रय लेते समय भी सब प्रान्त अपनी प्रान्तीयता विस्मृत कर देते हैं, उसी प्रकार उच्च कोटि के साहित्य के लिए हिन्दी अपनाते समय प्रान्तीय भावों को आने नहीं देना चाहिए। हिन्दी तो समस्त राष्ट्र की भाषा है और सौभाग्यतः यदि मेरे ही समान कुछ व्यक्तियों की वह प्रान्तीय भाषा भी है, तो मुझसे द्वेष करके यदि अन्य प्रान्तवाले अपनी राष्ट्रभाषा हिन्दी का तिरस्कार कर दें अथवा उसको अपनाने में संकोच करें, तो यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है? हिन्दी तो सबको एकसमान ही प्यारी होनी चाहिए। मैं यह दृढ़तापूर्वक कहना चाहता हूँ कि मेरी दृष्टि में राष्ट्रभाषा का अभिप्राय केवल उस भाषा में नहीं है जिसे बोलकर लाहौर, प्रयाग, पटना, कलकत्ता, नागपुर, मद्रास, पूना, बम्बई और कराची में बाजार से सौदा खरीदा जा सके। यदि उच्च कोटि के साहित्य के लिये (दर्शन, धर्म, विज्ञान, अर्थशास्त्र, इतिहास और पुरातत्त्व के लिए) हिन्दी के साहित्यिक रूप को न अपनाया गया तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहना उसका उपहास करना है।

अध्यापकों की दृष्टि से

यदि समस्त प्रान्तों के व्यक्ति परस्पर सहयोग से हिन्दी के उच्च साहित्य का भाण्डार बढ़ावें, तो धन, समय और शक्ति तीनों का ह्रास नहीं होगा। इसके साथ-साथ लाभ भी अनेक होंगे। आज हमें यदि न्याय या वेदान्त—किसी विषय को पढ़ाने के लिये एक आचार्य की नियुक्ति करनी होती है, तो हम किसी भी योग्य पण्डित को रख लेते हैं चाहे वह काशी का हो, या गया का, या नवद्वीप का, मद्रासी हो या महाराष्ट्री। इसी प्रकार इस समय विश्वविद्यालय में जीवविज्ञान, गणित, भौतिक या रसायन का अध्यापक नियुक्त करने में हमें प्रोफेसर रामन्, कृष्णन्, धर, साहनी, देशपाण्डे आदि किसी की नियुक्ति करने में कोई कठिनता नहीं प्रतीत होती। यदि बंगलोर और कलकत्ता दोनों की उच्च शिक्षा का माध्यम एक न होता तो प्रो० रामन् इन दोनों स्थानों में कैसे काम करते ? जिस रसायन विभाग में मैं काम करता हूँ उसमें दो पंजाबी, दो कश्मीरी, दो संयुक्त प्रान्तीय और पाँच बंगाली हैं। इसी प्रकार की खिचड़ी विद्यार्थियों में भी है। हमारे एक अध्यापक पंजाब, पटना, उड़ीसा और ढाका में अध्यापक रह चुके हैं। अतः इस प्रकार की परिस्थिति को देखते हुए हमें यह नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी के स्थान पर प्रान्तीय भाषा को माध्यम बनाना है तो सब प्रान्तों में उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना चाहिए।

प्रयाग के विज्ञान विभाग में अब तक बंगालियों का आधिपत्य बना हुआ है और छोटी श्रेणी के अध्यापकों को छोड़कर अधिकांश अध्यापक भिन्न प्रान्तीय हैं। काशी के विज्ञान विभाग में महाराष्ट्रीय अध्यापकों का प्रभुत्व रहा है। इन अध्यापकों को नीतिवश हिन्दी से कुछ राग रहा हो तो हो, पर उनकी हार्दिक निष्ठा हिन्दी के प्रति कभी नहीं रही। **कम-से-कम बंगालियों के सम्बन्ध में तो यह बात सर्वथा स्पष्ट है। अहिन्दी भाषियों का वैज्ञानिक विभागों पर प्रभुत्व होना हिन्दी के माध्यम बनाने में सदा बाधक रहा है।** कहीं-कहीं तो यह प्रभुत्व इस सीमा तक बढ़ गया है कि हिन्दी-भाषियों को न तो उच्च वैज्ञानिक कार्य करने की सुविधा और अवसर ही दिया जाता है, और न ऊँचे पद पर पहुँचने की कोई सम्भावना प्रतीत होती है। राष्ट्रीय भावना के अभाव में भिन्न प्रान्तियों से हिन्दी के प्रति राग रखने की आशा करना भी अस्वाभाविक है।

मैं यह समझता हूँ कि अहिन्दी प्रान्तों में उच्च शिक्षण का माध्यम हिन्दी हो जाना सर्वथा वांछनीय होते हुए भी अभी दूर की बात है। **अतः हिन्दी-भाषी प्रान्तों में विश्वविद्यालयों में उच्चाध्यापकों की नियुक्ति करते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वे हिन्दीभाषी हों।** हिन्दीभाषी अपने ही प्रान्तों में कुछ ऐसे व्यूह में फँसे हुए हैं कि उन्हें प्रोत्साहन मिलना तो अलग अपने ही विश्वविद्यालयों में निरुत्साहित होना पड़ता है। न तो उन्हें अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का अवसर मिलता है, और न फिर उनकी योग्य पदों पर नियुक्ति ही हो सकती है। हिन्दीभाषी प्रान्त में एक अहिन्दीभाषी अध्यापक की नियुक्ति हिन्दी माध्यम के प्रश्न को बीस वर्ष आगे ढकेल देती है। अतः इस सम्बन्ध में हिन्दीभाषी प्रान्तों में जनता का ध्यान आकर्षित होना चाहिए। इन सब बातों का उल्लेख करना कुछ दुःखदायक अवश्य है, पर प्रयाग में रहते हुए जिस प्रकार की कठिनाइयों का मैं अनुभव प्रति दिवस कर रहा हूँ उस दृष्टि से मैंने यह सब कहना उचित समझा है।

हिन्दीभाषियों का उत्तरदायित्व

कुछ थोड़ी-सी अनुवादित पुस्तकें अथवा सर्वसाधरण की रुचि की पुस्तकें प्रकाशित कर देने में ही हिन्दी साहित्य और हिन्दी-भाषियों का गौरव नहीं बढ़ सकता। **जब तक उच्च कोटि के वैज्ञानिक कार्यों में हमारे हिन्दी-भाषी भाग न लेंगे और संसार के समक्ष अपनी योग्यता का परिचय न देंगे, तब तक हिन्दी को गौरव नहीं मिल सकता है।** जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, कुछ तो असुविधाओं और बाधाओं के कारण हिन्दी-भाषी वैज्ञानिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अभी नहीं बढ़ सके हैं, पर ऐसे भी अनेक सज्जन हैं जिन्होंने अपने स्थान और पद का पूरा लाभ नहीं उठाया। वैज्ञानिक अनुसन्धानों के प्रति उनकी उपेक्षाओं ने उन्हें प्रगति में पीछे डाल रखा है। यही कारण है कि हिन्दी भाषियों में रामन्, रामानुजन्, कृष्णन्, प्रफुल्लराय, जगदीश वसु, मेघनाद साहा आदि की टक्कर के व्यक्तियों का नितान्त अभाव है। केवल एक दो अपवाद हैं। अध्यापक के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि संयुक्तप्रान्त के हिन्दी-भाषी विद्यार्थी योग्यता और अध्यवसाय में किसी भी प्रान्त के विद्यार्थियों से पिछड़े नहीं हैं, पर सारा प्रश्न तो प्रवृत्ति का है। हमारे योग्य विद्यार्थियों में मौलिक अनुसन्धानों के प्रति प्रवृत्ति जागृत नहीं होने दी गयी है। व्यक्तियों के गौरव में समाज एवं साहित्य का गौरव होता है। यदि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा का

गौरव मिलना है तो यह तभी हो सकता है जब हिन्दीभाषियों की गणना कम-से-कम भारत के प्रमुख वैज्ञानिकों में तो हो। प्रमुख वैज्ञानिकों का विश्व-विद्यालयों पर प्रभुत्व सरलता से हो सकता है और जब तक हिन्दी भाषा-भाषियों का प्रभुत्व हमारे विश्वविद्यालयों पर न होगा, तब तक हिन्दी वैज्ञा-निक साहित्य की वास्तविक वृद्धि नहीं हो सकती है।

अध्यापकों की ओर से अड़चनें

हमारे प्रान्त में हाईस्कूल की परीक्षा तक के लिए वैज्ञानिक शिक्षण का माध्यम हिन्दी स्वीकार किया जा चुका है। **यह तो पहले कहा जाता था कि हिन्दी को माध्यम बनाने में सरकार की ओर से ही सारी अड़चनें हैं, पर इधर मेरे अनुभव में यह आया है कि सरकारी अड़चनें तो दूर भी हो सकती हैं, पर अध्यापकों की ओर से और अधिक बाधाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं।** जब मैं स्कूल में पढ़ता था, मेरी कुछ ऐसी धारणा थी कि सायन्स अध्यापक तो केवल बंगाली ही हो सकता है, अथवा बंगालियों को ही सायन्स आ सकती है। बात यह थी कि लगभग सभी स्कूलों में सायन्स के अध्यापक बंगाली थे। पर अब यह बात नहीं है। इस समय हाईस्कूलों में गणित और विज्ञान के जितने अध्यापक हैं वे अधिकतर अंग्रेजी माध्यम द्वारा शिक्षित हैं। वैज्ञानिक विषयों को हिन्दी में पढ़ाने में कुछ कठिनता अवश्य होगी, पर थोड़े-से अभ्यास से उन्हें सिद्धि प्राप्त हो सकती है। **खेद की बात यह है कि हमारे अध्यापक थोड़ा-सा भी परिश्रम नहीं उठाना चाहते।** वे अनेक निर्मूल शंकाएँ प्रस्तुत किया करते हैं। मैं चाहता हूँ कि वे समस्त प्रश्नों पर सहानुभूति से विचार करें और अपनी थोड़ी असुविधाओं के कारण राष्ट्र के इस महान् यज्ञ में बाधक न हों।

इस समय संयुक्त प्रान्त के अध्यापकों और विद्यार्थियों के सामने एक कठिनता है। वह यह कि यद्यपि शिक्षण का माध्यम तो हिन्दी हो गया है, पर प्रश्नपत्र अंग्रेजी में आते हैं। हाईस्कूल और इण्टरमीडिएट बोर्ड से मेरा अनुरोध है कि वे प्रश्नपत्र भी हिन्दी, उर्दू भाषाओं में तैयार करायें। इसमें किसी को आपत्ति न होनी चाहिए। ऐसा करने से हिन्दी माध्यम के प्रचार में बड़ी आसानी होगी।

हिन्दी-उर्दू का प्रश्न

हिन्दू-मुस्लिम समस्या के समान हिन्दी-उर्दू की समस्या भी राष्ट्र की प्रगति में बाधक है। इन समस्याओं का निपटारा भावी संघर्ष कर देगा। मैं

न तो उर्दू से समझौता करके हिन्दी की साहित्यिक रूप-रेखा को विनष्ट कर देना चाहता हूँ और न उर्दू के मार्ग में बाधक होना चाहता हूँ। मैं तो यह चाहता हूँ कि उर्दू अपने ढंग पर उसी प्रकार फले-फूले जैसे भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाएँ। इसमें ललित साहित्य की अभिवृद्धि हो। पर उर्दू को हिन्दी की राष्ट्रीयता में रोड़ा बनकर न अटकना चाहिए।

मैं इस बात के स्पष्ट चिह्न देख रहा हूँ कि निकट भविष्य में उर्दू कुछ मुसलमानों की भाषा रह जाएगी और हिन्दू घरों से एक या दो पुश्तों के बाद उर्दू बिल्कुल अलग हो जायगी। हिन्दू स्त्रियाँ तो उर्दू जानती ही नहीं हैं। अतः हिन्दुओं के लिए तो उर्दू थोड़े वर्षों का प्रश्न है। उर्दू की हिमायत के लिए हिन्दुओं का अग्रसर होना अब उपहास की बात है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को इस प्रकार आयोजना करनी चाहिए कि जब कोई हिन्दू बच्चा आरम्भिक कक्षाओं में पहली बार नाम लिखाता है, तो वह अपनी भाषा हिन्दी ले, न कि उर्दू। कुछ दिनों पहले हिन्दू बच्चे भावी वकील बनने की आकांक्षा से उर्दू लेने को तत्पर हो जाते थे, पर अब इस व्यवसाय में कोई आकर्षण नहीं रहा है। जुलाई मास में प्रत्येक वर्ष कुछ परिश्रम कर लेने से अबोध हिन्दू बच्चे उर्दू के चक्र से बच सकते हैं।

हिन्दी और उर्दू दोनों के माध्यम को सफल बनाने के लिए 'एँग्लो-वर्नाक्यूलर' स्कूलों के स्थान में 'एँग्लो-हिन्दी' या एँग्लो-उर्दू' स्कूल होने चाहिए जिस प्रकार से 'एँग्लो-बंगाली' या 'एँग्लो-मराठी' स्कूल हैं। एक कक्षा में उर्दू और हिन्दी दोनों माध्यमों का पढ़ाया जाना अध्यापकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए अहितकर है। एक स्कूल में एक ही माध्यम से शिक्षण होना चाहिए। हिन्दुओं द्वारा संचालित स्कूलों में शिक्षण का माध्यम स्वभावतः हिन्दी हो जावेगा। उर्दू का प्रश्न कुछ मुसलमानी स्कूलों के लिए ही आवेगा। वे जिस प्रकार से चाहें निपट लें।

कांग्रेस की अनुचित नीति

देशी भाषाओं के प्रचार में कांग्रेस ने जितनी उत्सुकता प्रकट की उतनी बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया। **जितना उन्होंने मुसलमानों का न्याय-विरुद्ध पक्षपात किया उतना ही अत्याचार हिन्दी के साथ भी किया।** काका कालेलकर जी की पवित्र भावनाओं का सत्कार करते हुए भी हम उनकी नीति का पूरा समर्थन नहीं कर सकते हैं। हमारे और उनके विचारों में

भेदक-भित्ति स्थापित करना तो संभव नहीं है। संभव है कि हम दोनों का आदर्श एक ही हो, पर उस आदर्श तक पहुँचने की जो विधि उन्होंने निकाली है वह अस्वाभाविक है और काम बनने की अपेक्षा उससे बिगड़ता अधिक है। **साम्प्रदायिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत राष्ट्र की दृष्टि से मैं यह चाहता हूँ कि भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रधानता उत्तरोत्तर अधिक होती जावे।** मैं जब हिन्दुओं से कहता हूँ कि तुम अपने बच्चों को स्कूलों में उर्दू के स्थान में हिन्दी दिलवाओ, तो इसलिए नहीं कि मैं उन्हें मुसलमानों से पृथक् करना चाहता हूँ। मैं तो मुसलमानों से भी यही कहता कि तुम भी उर्दू छोड़कर हिन्दी पढ़ो। पर मैं जानता हूँ कि इसमें हित होते हुए भी वे मेरी बात सुनने को आज तैयार नहीं हैं। हिन्दू लोगों पर मेरे कथन का प्रभाव अधिक पड़ सकता है। हिन्दी में फारसी शब्दों का अपनाना एक बात है और हिन्दी की प्रतिद्वन्द्विता में जिस ढंग की उर्दू चल रही है उसको ग्रहण करना दूसरी बात है। यदि हम फारसी शब्द अपनावेंगे तो उस प्रकार जैसे गुजराती में अपनाये गये हैं। मैं उर्दू को समानान्तर अलग महत्त्व देने के पक्ष में नहीं हूँ।

इधर कांग्रेसी सरकारों ने उन प्रान्तों में भी जहाँ मुसलमान अब तक उर्दू नहीं पढ़ते थे, उर्दू प्रविष्ट कराने का प्रयत्न किया। मैं इस नीति का घोर विरोध करना चाहता हूँ। पंजाब की हिन्दी में फारसी के शब्द हो सकते हैं, और इसी प्रकार द्राविड़ देश की हिन्दी में अनेक द्राविड़ शब्द भी गृहीत हो जावेंगे, बंगाल की हिन्दी में कुछ वंगीय-प्रयोग भी स्वभावतः मिश्रित हो जायेंगे। **पर राष्ट्रभाषा की दृष्टि से प्रत्येक प्रान्त में हिन्दी के साथ-साथ उर्दू को ले जाना प्रत्येक स्थान में एक पाकिस्तान बनाना है।** सुदूर बँगला और आसाम में जहाँ मुसलमान भाई भी हिन्दुओं के साथ-साथ संस्कृत पदावलि का धाराप्रवाह प्रयोग करते हैं, वहाँ फारसी-निर्मित उर्दू की नींव डालना भारत का भविष्य अधिक कष्टमय बनाना है।

मैं तो संयुक्तप्रान्त में भी यह चाहता हूँ कि लोग उर्दू को भूल जावें। यह मैं हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों से कहूँगा। फारसी और अरबी का पढ़ना तो मेरी समझ में एक अर्थ रखता है पर उर्दू पढ़ना तो निरर्थक है। मै नहीं समझता कि इस्लाम धर्म के व्यक्ति फारस में आकर फारसी भाषा (जो आर्य भाषा है) अपनाने में कोई संकोच नहीं करते, यदि टर्की में तुर्की भाषा अपना सकते हैं, मंगोल प्रदेशों में उन्होंने मंगोलियन भाषा अपनायी। यही नहीं भारत के अनेक प्रान्तों में उन्होंने वहाँ की प्रान्तीय भाषाएँ

अपनायीं, तो अकेली एक बेचारी हिन्दी के अपनाने में उन्हें क्यों संकोच होना चाहिए ?

मैं उर्दू के सम्बन्ध में यह पुरानी चर्चा यहाँ न छेड़ता, पर मैं देखता हूँ कि वैज्ञानिक साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली निर्धारित करते समय उर्दू की समस्या भी हमारे सामने प्रस्तुत कर दी जाती है। कांग्रेसी सरकार से पूर्व मेरे प्रान्त में अनेक कन्या पाठशालाओं में उर्दू कभी नहीं पढ़ायी जाती रही, पर मैं अब देखता हूँ कि **संयुक्त प्रान्त की बालिकाओं को भी हिन्दी के साथ-साथ आरम्भ से ही उर्दू पढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है।** मैं तो विनम्र शब्दो में, इसे अत्याचार ही कहूँगा। मैं यही मानता हूँ कि हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि—यही राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय लिपि है। इसके समानान्तर उर्दू भाषा या उर्दू लिपि को प्रोत्साहन देना हिन्दू और मुसलमान दोनों के हित में नहीं है। यदि कांग्रेस या कांग्रेसी प्रवृत्ति वाले देशभक्त भाषा के प्रश्न को सुलझा नहीं सकते, तो कृपा करके इस प्रश्न को और उलझावें नहीं।

पारिभाषिक शब्दावली का उपहासास्पद प्रयत्न

मैं उर्दू वालों को छेड़ना नहीं चाहता, पर मैं इतना ही आग्रह करना चाहता हूँ कि यदि मिलकर हम लोग काम नहीं कर सकते, तो अलग-अलग काम की हमें बराबर स्वतन्त्रता हो। वैज्ञानिक क्षेत्र में गत बीस वर्षों के अनुभव से मैं **यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं के पारिभाषिक शब्द एक-से नहीं हो सकते।** 'अंजुमन-ए-तरक्की उर्दू' (हैदराबाद) ने जो पारिभाषिक शब्दावली बनायी है वह स्तुत्य है, और मुझे उससे कोई विरोध नहीं। यदि मैं उर्दू भाषा में कुछ लिखूंगा, तो उसी शब्दावली का प्रयोग करूंगा। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं की रूप-रेखा हमारे पूर्व साहित्यिक आचार्यों ने निर्धारित कर दी है। श्रेय इसी में है कि दोनों अलग-अलग अपनी मर्यादा में प्रवाहित हों।

हिन्दी या उर्दू का एकीकरण 'हिन्दुस्तानी' नहीं है। 'हिन्दुस्तानी' बाजारू, कामचलाऊ चीज है, और उसकी रूप-रेखा निर्धारित करने के लिए किसी आचार्य की आवश्यकता नहीं है। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, नागपुर, प्रयाग, लखनऊ और दिल्ली के बाजार की हिन्दुस्तानी जो वहाँ के निवासियों की सुविधा की दृष्टि से स्वतः बन गयी हो, एक दूसरी से बहुत-कुछ

भिन्न होगी । उर्दू शिक्षित मुसलमानों के सम्पर्क से बोलचाल की भाषा में जो अन्तर आया हो उसे ही क्यों हिन्दुस्तानी कहा जाय ? महाराष्ट्र प्रदेश की हिन्दुस्तानी के लिए महाराष्ट्र-भाषियों की सुविधा से कुछ परिवर्तन स्वतः हो जायँगे, बंगाल में सर्वसाधारण की हिन्दी में वंग-पदावली और मुहावरे प्रविष्ट हो जायेंगे । ऐसा होना तो सर्वथा वांछनीय है । उर्दू शिक्षित मुसलमानों की सुविधा की हमें अवहेलना नहीं करनी है । जीवन में एवं अपने प्रतिदिन के व्यवहार में परस्पर हम काम निकाल लेते हैं और किसी को एक दूसरे की भाषा के प्रति शिकायत नहीं मिलती । फिर क्यों ऐसी साधारण-सी बात के लिए समितियाँ और आयोजनाएँ बनाकर पारस्परिक अन्तर को बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है ? मुसलमानों को हमारे साथ रहते-रहते अब पाँच सौ (५००) वर्ष हो गये । हम दोनों ने बोलचाल की दृष्टि से अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लिया है ।

बोलचाल की भाषा से साहित्य का काम नहीं निकल सकता, यह एक परम सत्य है । सृष्टि के आदि से अब तक दार्शनिक और वैज्ञानिक विषयों की बात तो अलग, विशुद्ध ललित साहित्य भी केवल बोलचाल की भाषा पर निर्भर नहीं रह सकता । जो लोग इस प्रकार का भगीरथ प्रयत्न करना चाहते हैं उनका उद्यम सराहनीय है, पर सर्वथा अवाञ्छनीय भी ।

एक बार 'हिन्दुस्तानी एकेडमी' के एक प्रतिष्ठित सज्जन मुझसे आग्रह करने लगे कि कम-से-कम प्रयत्न तो करो कि ठेठ हिन्दुस्तानी शब्दों में (बिना संस्कृत, अरबी, फारसी की सहायता के) वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बनें । मैंने कहा कि मैं अपने पारिभाषिक शब्दों में तब तक हाथ न लगाने दूँगा जब तक आप साहित्यिक लोग परम्परा से आयी हुई व्याकरण के ही पारिभाषिक शब्द हिन्दुस्तानी में न बना लेंगे ।

अक्षर, शब्द, व्याकरण, वचन, लिंग, कारक, काल, उपसर्ग, अव्यय, सर्वनाम, कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान आदि पारिभाषिक शब्दों के 'हिन्दुस्तानी' नाम पहले बना लीजिए, जो हिन्दी और उर्दू दोनों को एकसमान स्वीकृत हों, और जिनमें संस्कृत या फारसी शब्दों का प्रयोग न हुआ हो तो मैं आगे वैज्ञानिक शब्दों की बात सोचूँगा ।

वस्तुतः "हिन्दुस्तानी" का वितण्डा व्यर्थ है । सब की सुविधाओं को सहानुभूति से देखते हुए स्वतः सर्व-साधारण की आवश्यकतानुसार एक बोली बन जाती है, उसके लिए देशभक्तों और साहित्यिकों के उद्गार और वितण्डा

की कोई आवश्यकता नहीं। रही साहित्यिक भाषा की बात, उसमें तो उर्दू और हिन्दी अपनी निश्चित रूप-रेखा पर अलग-अलग विकसित होगी और उन्हें होने दिया जाय।

इस वर्ष 'हिन्दुस्तानी' में पारिभाषिक शब्दों के बनाने का एक प्रयत्न बिहार की हिन्दुस्तानी कमिटी ने किया। मैं इस प्रयत्न को इस वर्ष की सबसे अधिक मनोरंजक घटना मानता हूँ। मैं तो चाहता था कि मैं उनका इस भाषण में उल्लेख भी न करूँ, क्योंकि उसका उल्लेख, विरोध या उपहास करके मैं उसे अनुचित महत्त्व भी नहीं देना चाहता। मैं केवल इसलिए उसकी ओर यह संकेत कर रहा हूँ कि उससे आपका कुछ समय के लिए मनोरंजन हो जावेगा। इस कमिटी ने पारिभाषिक शब्दों के बनाने में निम्नलिखित नीति का पालन किया[१]—

(a) Scientific terms should be, as far as possible, drawn from current Indian Sources commonly understood, and not directly from Sanskrit, Arabic or Persian or any other language.

(b) Failing, terms usually employed in scientific terminology in the West should be adopted to our requirements.

(c) The two above methods failing, words from Sanskrit, Arabic or Persian may be used with equivalents (as now used in Urdu or Hindi) printed in brackets so that the learner may become familiar with both sets of terms.

---

१. (अ) जहाँ तक सम्भव हो सके, वैज्ञानिक शब्द प्रचलित भारतीय स्रोतों से ग्रहण किये जायँ। वे संस्कृत, अरबी; फ़ारसी या अन्य किसी भाषा से सीधे न लिये जायँ।

(आ) यदि ऐसे शब्द न मिलें तो; पाश्चात्य देशों में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को आवश्यतानुसार काम में लाया जाय।

(इ) यदि उपर्युक्त दोनों विधियाँ असफल रहें तो फिर संस्कृत, अरबी या फारसी के शब्दों को कोष्ठों में उनके समानार्थी देते हुए, जैसा कि उर्दू या हिन्दी के साथ आजकल किया जा रहा है, प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे सीखने वाला दोनों प्रकार के शब्दों से परिचित हो सके। —सम्पादक

अभिप्राय यह है कि, पहले तो बोलचाल के शब्दों से काम लिया जाय और फिर अंग्रेजी शब्दों से । (c) के अन्तर्गत जो परिस्थिति दी गयी है उसका तो अवसर ही नहीं आना चाहिए, क्योंकि वैज्ञानिक साहित्य के लिए पाश्चात्य शब्द तो सदा ही मिलते रहेंगे । अतः संस्कृत, फ़ारसी की बारी आने की सम्भावना ही नहीं । अपने ही देश में संस्कृत की यह अवहेलना और उपेक्षा मेरे लिए तो दुःख की बात है । पाश्चात्य शब्दों के लिए ग्रीक और लैटिन का भाण्डार खुला है, और हमने पाश्चात्य शब्दों के लिए अपना द्वार खोल दिया । इसका अभिप्राय स्पष्ट शब्दों में यह है कि हम ग्रीक और लैटिन भाषाओं को तो अपनाने के लिए उद्यत हैं, पर फारसी और संस्कृत भाषाएँ हमारे लिए अछूत हो गयी हैं ।

अस्तु ! उक्त नीति का पालन करते हुए उस हिन्दुस्तानी कमिटी ने जो सुन्दर पदावली बनाई है, उसका स्थालीपुलाक न्याय से मैं थोड़ा दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करूँगा ।

Planet	चलतारा	Irrational	गूंगी (राशि)
Equator	समबाँटी	Rational	बोलती (राशि)
Isthmus	जमीन-जोड़	Variable	बदलू
Strait	पनजोड़	Polygon	बहुतबाँही
Horizon	नजरफेर	Intercept	बिचटूक
Latitude	अर्जलकीर	Negative	घट
Atmosphere	हवागोल	Positive	जुट
Axiom	आप-सच	Harmonic-conjugate	मेली-जोड़क
Postulate	मान-सच	Function	हरफलड़ी
Tangent	घेरा-चूम	Hydrosphere	पन-गोला
Circumcircle	घेरा घेरा	Vernal Equinox	रब्बी-समरात
Asymptote	चूमचाही ल		

नजरफेर, घेराचूम और मान-सच आदि शब्द लड़कों को ड्रिल कराते समय की याद दिला रहे हैं । इन शब्दों को बोलचाल का शब्द बताया जा रहा है । बोलचाल के शब्दों को बोलचाल के रूढ़ि अर्थ में अपनाना तो सर्वथा श्रेयस्कर है । पर यदि उन शब्दों के अर्थ ही परिवर्तित हो जायँ तो वह शब्द बोलचाल का कहाँ रह जाता है ? पन-जोड़ से साधारण व्यक्ति

क्या अभिप्राय समझेगा ? पानी लगा कर कोई चीज जोड़ी गयी हो, ऐसी कुछ भावना होगी । 'चूमचाही' शब्द से रसिकों का ध्यान किस ओर जायेगा यह तो स्पष्ट है । और यदि बोलचाल के शब्दों में बोलचाल का अर्थ ही न रहा तो बोलचाल की भाषा अपनाने का सारा सिद्धान्त निस्सार हो जाता है । जो विषय सर्वसाधारण के लिए नहीं है, उसके लिए सर्वसाधारण के शब्द लावेंगे कहाँ से ! अतः मैं इस यत्न को निस्सार और उपहासास्पद समझता हूँ । राष्ट्र की शक्ति का ऐसे प्रयत्नों में ह्रास करना शोभा की बात नहीं है ।

अभी सर अकबर हैदरी की अध्यक्षता में पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में एक और समिति बनी है । हमें देखना है कि यह समिति दूरदर्शिता से काम लेती है अथवा उसके निर्णय भी बिहार की कमिटी के समान उपहासास्पद होते हैं । मैं समझता हूँ कि यह कमिटी अपने कार्य में तब अधिक सफल हो सकती है जब (१) यह उर्दू और हिन्दी को स्वतंत्र विकसित होने का परामर्श दे । दोनों के पारिभाषिक शब्दों में अनहोने समझौते का स्वप्न न देखे । (२) हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली और द्राविड़ भाषाओं के लिए संस्कृतगर्भित पदावली निर्धारित करने का परामर्श दे ।

हैदरी कमेटी के एक सदस्य श्री अमरनाथ झा ने इस सम्बन्ध में कुछ विचार प्रकाशित किये हैं जिनकी मीमांसा मैं अब आगे करूँगा ।

पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दों का ग्रहण

हमारी भाषा में प्रतिदिन पाश्चात्य शब्दों की संख्या बढ़ रही है । इसके कई कारण हैं जिनमें प्रमुख कारण पाश्चात्य शासकों द्वारा शासित होना है । पाश्चात्य देशों में बनी हुई अथवा पाश्चात्य संस्कृति पर भारत में बनाई गयी वस्तुओं का प्रचार देश में बढ़ रहा है । प्रत्येक वस्तु अपने साथ अनेक शब्दों को ला रही है, और ये शब्द प्रतिदिन हमारी भाषा में घुलमिल रहे हैं । आज से कुछ शताब्दियों पूर्व मुसलमान शासकों के समय में इसी प्रकार अनेक फारसी और अरबी शब्दों का प्रवेश इस देश में हुआ था, जिसने आज उर्दू की रूप-रेखा बनाई । **पाश्चात्य शब्दों के संसर्ग से हमारी भाषा की रूपरेखा परिवर्तित हो रही है, और जिस भाषा या बोली के बनने की संभावना है, उसका नाम मैंने 'इङ्गलिस्तानी' दिया है** । इस विषय का कुछ विशद विवेचन मैं अपने लेखों में कर चुका हूँ । आवागमन के साधन, जलयान एवं वायुयान के सुलभ होने से और रेडियो की व्यापकता के कारण संसार के दूरस्थ देशों में भी सामीप्य स्थापित होता जा रहा है । ऐसी परिस्थिति में शब्दों का

आदान-प्रदान होना स्वाभाविक है। खेद की बात है कि, हमें इस समय दूसरे देशों से लेना ही अधिक है, अपने शब्द देने को बहुत कम।

वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में भी यह स्पष्ट है कि, हमें अनेक पाश्चात्य शब्द ज्यों-के-त्यों अपनाने में अनेक सुविधाएँ हैं। देश-विदेशों में पदार्थ पाश्चात्य नामों पर बिकते हैं, जैसे मशीनें और उनके भाग, दवाएँ, रासायनिक वस्तुएँ। दूसरी सुविधा यह है कि, नये शब्द बनाने के परिश्रम से बचत होती है; विशेषतया इस दृष्टि से कि, नये शब्द के सर्वमान्य होने का भरोसा भी नहीं रहता है। तीसरी बात यह है कि भारत की सब प्रान्तीय भाषाओं में, और उर्दू में भी, इनका एकसमान व्यवहार हो सकता है। और चौथी बात यह है कि इनमें से अनेक शब्द सब पाश्चात्य देशों में एकसमान प्रचलित होते हैं। इन्हीं सब बातों को दृष्टि में रखते हुए हमारे विश्वविद्यालय के वाइसचैन्सलर श्री अमरनाथ झा ने 'सेण्ट्रल एडविजरी बोर्ड आफ एज्युकेशन' की सायण्टिफिक टर्मिनॉलॉजी कमिटी के समक्ष जो विचार प्रस्तुत किये, उनमें आप निम्न परिणाम पर पहुँचते हैं।[1]

"While scientific terms derived from Sanskrit will be intelligible to a very large proportion of Indians, it can not be overlooked that an important section of the population

---

१—जहाँ संस्कृत से लिये गये पारिभाषिक शब्द भारतीयों के एक बहुत बड़े अंश की समझ में आ सकेंगे, वहाँ इस बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि जनता का एक महत्त्वपूर्ण अंश अरबी तथा फारसी मूल वाले शब्दों से अपेक्षतया अधिक परिचित होगा। अतः इनमें से किसी भी समुदाय को संस्कृत अथवा अरबी-फारसी पर आधारित शब्दों को ग्रहण करने के लिए बाध्य करने से कटुता उत्पन्न होगी। ऐसा सम्भव नहीं है कि विज्ञान की समस्त शाखाओं में इन्हीं स्रोतों से शब्द ग्रहण किये जा सकें। केवल संस्कृत या केवल अरबी से नये-नये शब्द गढ़ने से साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न होगा। इस समय भारत में अंग्रेजी शब्दों का प्रचलन है और आगे भी उच्च वैज्ञानिक कार्यों में निरत सभी लोगों द्वारा समझे और प्रयुक्त होते रहेंगे। इन शब्दों के लिये भारतीय समानार्थी शब्द ढूंढ़ने में शक्ति एवं समय का अपव्यय होगा। ये अंग्रेजी शब्द व्यवहारिकतया प्रत्येक यूरोपीय भाषा में एक से हैं और इनके ज्ञान से बाहर छपी हुई वैज्ञानिक पुस्तकों तथा शोधपत्रों को समझा जा सकता है।—सम्पादक

will be more at home with words of Arabic or Persian origin. The attempt to compel either section to adopt one set of terms based either on Sanskrit on the one hand or an Arabic-Persian on the other will arouse bitter controversies. It is not possible that in all sciences, all the terms can be drived from these sources. The attempt to confine newly coined terms to Sanskrit or to Arabic will cause communal discord. English terms are now in use in India and will continue to be understood and used by all engaged on advanced scientific work. The adoption of these terms will prevent waste of energy and time in the attempt to invent their Indian equivalents. These English terms are practically the same in every European language and a knowledge of these, enables one to follow the Scientific books and journals published abroad."

हमारे वैज्ञानिक साहित्य के गत चालीस वर्ष का अनुभव प्रो० झा के विचार की बहुत कुछ पुष्टि कर रहा है और जबसे मैंने हिन्दी की 'इंगलिस्तानी' रूपरेखा पर विचार किया है, मेरा भी यह विश्वास हो रहा है कि, चाहे उचित हो या अनुचित, पर **वैज्ञानिक साहित्य में पाश्चात्य शब्दों की संख्या ही अधिकांशतः प्रविष्ट हो जायगी**। प्रो० झा के-से विचार दौड़ में थके हुए पराजित घोड़े के विचार हैं। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा, हिन्दुओं और मुसलमानों का वैमनस्य, हमारे साहित्य की धीमी चाल, जन और धन का अभाव, और अन्त में शासितों की-सी मनोवृत्ति सबका मिश्रित प्रभाव यही तो होता है। हमने आपस के झगड़ों से तंग आकर विदेशी आधिपत्य स्वीकार किया, और ये झगड़े ही विदेशी शब्द बलात् लादने पर तत्पर हो रहे हैं।

जिस प्रकार पाश्चात्य शब्दों का त्याग करना संभव नहीं हो रहा है, उसी प्रकार पाश्चात्य शब्दों का सर्वथा ग्रहण करना भी संभव नहीं है। **यूरोप में हं तीन प्रकार की शब्दावलियाँ प्रचलित हैं**—(१) अंग्रेजी की (२) जर्मन की और (३) रूस की। यह कहना ठीक नहीं कि समस्त यूरोप में वैज्ञानिक शब्दावली लगभग एक ही है। मैं यहाँ कुछ अंग्रेजी और जर्मन शब्दों की सूची देता हूँ। दोनों भाषाओं में सहस्रों शब्दो की भिन्नता है। यदि

ये दिन युद्ध के न होते तो मैं यह कहने की धृष्टता करता कि, यदि पाश्चात्य शब्द अपने ही हैं, तो वैज्ञानिक अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हमें अंग्रेजी की अपेक्षा जर्मन शब्द अपनाने चाहिए ।

अंग्रेजी	जर्मन
	(A)
Number	Zahl
Denominator	Nenner
Square	Quadrat
Series	Reihe
Interest	Zins
Equilateral	Gleichseitig
St. line	Gerade
Circle	Kreis
Angel	Winkel
Equation	Gleichung
	(B)
Pressure	Druck
Gravity	Schwere
Inertia	Tragheit
Vernier	Nonnius
Liquid	Flussigkeit
Solution	Losung
Viscosity	Zahigkeit
Tuning fork	Stimmgabel
Steam	Dampf
To boil	Seiden
Conduction	Leitung
Image	Bild
Refraction	Brechung

(C)

Foil	Blech
Flask	Kolben
Tube	Rohr
Wire	Draht
Sphere	Kugel
Tripod	Dreifuss
Crucible	Tiegel
Beaker	Becher
Test tube	Probiergles
Funnel	Trichter

(D)

Vertebrata	Wirbeltiere
Amoebae	Wechseltierchen
Anthropod	Gliederfuss
Thorax	Brusthohle
Cartilage	Knorpel
Pericardium	Herzbentel
Antenna	Fuhler

(E)

Yeast	Hefe
Leaf	Blatt
Tissue	Gewebe
Pollensack	Staubbeutel
Calyx	Kelch
Stigma	Narbe
Root	Wuzzel
Perisperm	Keimhulle

(F)

Glacier	Gletischer
Rock debris	Gesteins trummer

Boulder	Geschiebe
Stratum	Schicht
Deposit	Lager
Denudation	Entblossung
Crustacea	Krustentiere

समयाभाव से मैंने विस्तृत सूची यहाँ नहीं दी। मेरा अभिप्राय यह है कि हममें से बहुतों की यह भ्रान्ति है कि यूरोप की भाषाओं की वैज्ञानिक पारिभाषिक पदावली सर्वथा एक-सी है। जिस सीमा तक हम अंग्रेजी के शब्दों को अपनाने के लिए उद्यत हो जाते हैं, उतनी सीमा तक जर्मन, इटली और रूस वाले नहीं होते। हममें से बहुत-से अंकगणित और साधारण ज्योतिष के शब्दों को अपनाने में भी हिचकिचाते हैं। अक्षांश, विषुवत्, व्याज, भिन्न, सम, विषम, धन, ऋण, चक्रवृद्धि, व्यास, वृत्त, कर्ण आदि अनेक शब्द हमें परम्परा से प्राप्त हैं। इनको छोड़कर बोलचाल के शब्द गढ़ना अथवा पाश्चात्य शब्द लेना अपने परम्परागत साहित्य से सम्बन्ध तोड़ना है। इसी प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्र के अनेक शब्द हमारे प्राचीन साहित्य में पाये जाते हैं, जिनका अब फिर प्रचार किया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में मेरी नीति

इस विषय को अधिक विस्तार न देते हुए पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में मैं निम्न नीति का प्रस्ताव करूँगा :—

(१) **हिन्दी और उर्दू के समझौते की आशा व्यर्थ की है।** हम चाहते हैं कि जिन्हें उर्दू से निष्ठा हो, वे उसके साहित्य की अभिवृद्धि करें। जिस प्रकार संसार की अन्य भाषाओं से हमारा विरोध नहीं, उसी प्रकार इससे भी विरोध नहीं है। पर हाँ, हम अपनी शक्ति हिन्दी की सेवा में लगावेंगे, और इसकी हमें स्वतंत्रता होनी चाहिए।

(२) जितने शब्द संस्कृत और प्राकृत साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं उनका तदर्थ में व्यवाहर करना चाहिये।

(३) ऐसे पाश्चात्य शब्द जो यूरोप की सब भाषाओं में समान हों, उनको सुविधा के लिए ग्रहण किया जा सकता है, यदि उनके कोई पर्याय हमारे यहाँ नहीं हैं। पर ये सब विशेष परिभाषाओं के लिए ही हैं, न कि साधारण शब्दों के लिए।

(४) अपनी भाषा की मर्यादा एवं रूपरेखा पर दृष्टि रखते हुए फारसी-अरबी शब्द (यदि नितांत आवश्यक हो तो) भी अपनाये जायँ, पर अपनाते समय भावना किसी के साथ समझौते की न हो।

(५) कहाँ पर संस्कृत शब्द लेने चाहिए और कहाँ प्राकृत, अंग्रेजी, जर्मन या फारसी—इसके लिए कोई नियम नहीं बनाया जा सकता है। यह बात विशेषज्ञों और जनता दोनों के अधीन है। संभव है कि कुछ शब्दों के हिन्दी, उर्दू और पाश्चात्य पर्याय तीनों ही प्रचलित होते रहें। जैसे (१) दूर-दर्शक, दूरबीन, टेलस्कोप; (२) वायुयान, हवाई जहाज और एयरोप्लेन; (३) डाकखाना और पोस्ट आफिस; (४) कोर्ट, कचहरी और न्यायालय। ये पर्याय अमर हो गये हैं, और जनता ने सबको स्वीकार कर लिया है। एक के लिए कई पर्यायों के उपयोग होने में कोई हानि नहीं। जर्मन भाषा में कई पर्यायों का भी उपयोग होता है—(१) Zahigkeit, Viskositat (२) Brechung Refraktion। इन उदाहरणों में पहले शब्द तो अपने हैं, और दूसरे शब्द अंग्रेजी के Viscosity और Refraction के आधार पर ले लिये गये हैं।

(६) जब तक रासायनिक व्यापार पर हमारा अधिकार नहीं है, और जब तक हमारा राष्ट्र अपने शब्दों को यथोचित महत्त्व न देगा, तब तक व्यापारिक पदार्थों के लिए हमें विदेशी शब्द ही ग्रहण करने होंगे। जर्मनी में बने हुए रासायनिक पदार्थों की बोतलों पर जर्मन, अंग्रेजी, इटेलियन आदि पर्याय छपे होते हैं और यदि हमारा आग्रह हो तो वे हमारे देश में भेजे गये पदार्थों पर हिन्दी नाम भी छाप सकते हैं। व्यापारिक नामों की भिन्नता के कुछ उदाहरण मैं यहाँ देता हूँ।

अंग्रेजी	जर्मन
Alumina	Tonerde
Ironyrits	Schwefel Kies
White lead	Bleiweiss
Lunar caustic	Hollenstein
Acetic acid	Essigsaure
Succinic acid	Bernsteinsaure
Caustic soda	Natron lauge
Tin	Zim
Iron	Eisen

(७) मुझे सबसे अधिक खेद इस बात का रहता है कि हिन्दी में **विज्ञान सम्बन्धी लेखकों का अभाव तो है ही, इससे भी अधिक अभाव विज्ञान विषयों के पाठकों का है।** यही नहीं, विज्ञान विषय पर लिखने वाला नवागत युवक कभी पूर्ववर्ती लेखकों के लेखों को पढ़ने का न कष्ट उठाना चाहता है, और न ऐसा करना आवश्यक ही समझता है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक लेखन नयी शब्दावली बनाने लगता है। यदि इस प्रकार की प्रथा बन्द न की गयी तो अच्छे-से-अच्छा शब्द भी कभी प्रचलित न हो पावेगा। अन्य भाषाओं में तो निरर्थक एवं विपरीत अर्थ के शब्द भी प्रचलित हो गये हैं। इसका फल यह है कि चालीस वर्ष के प्रयत्न के उपरान्त भी हमारे पारिभाषिक शब्द उतने ही कच्चे हैं जितने कि प्रारम्भ में थे। पारिभाषिक शब्दों का ऐतिहासिक महत्त्व होता है और जब तक कोई विशेष कारण न हो इनमें परिवर्तन नहीं करना चाहिये।

(८) जैसा मैंने कहा है, उच्च वैज्ञानिक साहित्य की अभिवृद्धि केवल राष्ट्रीय भाषा के साहित्य में की जानी चाहिये। सब प्रान्तीयों को राष्ट्रभाषा की "विज्ञान-षरिषद्" का सदस्य होना चाहिये। **मैं सब प्रान्तों के विज्ञान-प्रेमियों को निमन्त्रण देता हूँ कि वे प्रयाग की 'विज्ञान परिषद्' के सदस्य बनें,** और फिर बंगाली, हिन्दी, मराठी, गुजराती और द्राविड़ सबके सहयोग से एक पारिभाषिक शब्दावली बने।

(९) जिस प्रकार आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेजी विद्वान् जर्मन या फ्रेञ्च के अध्ययन में गौरव की हानि नहीं समझते हैं उसी प्रकार जिस किसी व्यक्ति को आवश्यक हो वह अपनी निकटवर्ती उर्दू भाषा का भी अध्ययन करके उसके साहित्य से लाभ उठावे। इसमें न कोई द्वेष की बात है और न विवाद की।

खेद है कि कई आवश्यक कारणों से मुझे यह भाषण विस्तृत कर देना पड़ा है। मैंने जो कुछ यहाँ कहा है वह स्नेह की भावनाओं से ही। मैं जब कभी मुसलमान व्यक्तियों को भी हिन्दी-संस्कृत सीखने के लिए निमन्त्रित करता हूँ तो उसमें मेरी भावना कल्याण और स्नेह की होती है। मुझे तो खुसरो, रहीम, इन्शा और जायसी की याद आ जाती है। मैं तो समझता हूँ कि दूरदर्शिता इसी में है कि हम हिन्दी की साहित्यिक रूपरेखा को विकृत न करते हुए इसके भाण्डार को समस्त ज्ञान-विज्ञान से भरपूर कर दें। जिस भाषा के प्रवाह को चन्द, सूर, तुलसी, रहीम, जायसी, देव, केशव और

बिहारी ने पद्य में; इन्शा, लल्लूलाल आदि ने गद्य में हम तक पहुँचाया; नानक, कबीर, मीराँ, दादू, पलटू ने जिसके द्वारा आत्मज्ञान और भक्ति का प्रचार किया; दयानन्द ने भिन्न प्रान्तीय होते हुए भी जिस रूपरेखा की हिन्दी को राष्ट्रीय रूप दिया और जिसे इस युग में हरिश्चन्द्र, द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने पुष्ट किया है, जिस भाषा में शंकर, गुप्त, हरिऔध से लेकर वर्मालय, प्रसाद, निराला, पन्त आदि अनेक कवि तक अपना काम करते हैं, जिसके वैज्ञानिक साहित्य को सुधाकर द्विवेदी, लक्ष्मीशंकर मिश्र, रामदास गौड़, महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, ओंकारनाथ शर्मा, निहालकरण सेठी, फूलदेवसहाय वर्मा, अत्रिदेव गुप्त, मुकुन्दस्वरूप वर्मा, गोरखप्रसाद आदि लेखकों ने इस सीमा तक पहुँचाया है, उस भाषा को हम विकृत होने से बचावें और परमात्मा हमें शक्ति दे कि हम उत्तरोत्तर उसकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकें।

अभिभाषण*—८

श्री जगन्नाथप्रसाद शुक्ल

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
मन विनोद हित लहर में रची सृष्टि अभिराम ।
दरसायी रचना सुभग-अद्भुत ललित ललाम ।।
जेहि लखि गुनि ज्ञानिन कियो प्रगट ज्ञान-विज्ञान ।
वैज्ञानिक 'जगदीश' हों, मंगल मोद निधान ।।

विज्ञान परिषद् के श्रीमान् स्वागताध्यक्ष महोदय तथा उपस्थित हिन्दी साहित्य के धुरीण विज्ञान प्रेमी सज्जनवृन्द !

मैं आप सब सज्जनों को हार्दिक कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद देता हूँ। यह धन्यवाद और कृतज्ञता-प्रकाश केवल इसलिए नहीं कि ऐसे अवसर पर ऐसा करना शिष्ट सम्प्रदाय और प्रचलित प्रथा है; बल्कि इसलिए भी कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन में विज्ञान विषयों के अन्तर्गत **आयुर्वेद** को भी सम्मिलित किया गया है और इतने वर्षों के पश्चात् ही क्यों न हो, उसके एक प्रतिनिधि को आप लोगों ने अवसर दिया है कि वह आप लोगों की सेवा में उपस्थित होकर अपने विचार आप लोगों की सेवा में उपस्थित कर सके।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के इतिहास में **यह पहला ही अवसर है** कि विज्ञान परिषद् के मञ्च पर आयुर्वेदिक प्रतिष्ठा की गयी है। इसलिए मुझे आयुर्वेदिक विज्ञान के परिचय में कुछ शब्द कहने पड़ेंगे। ऐसा करने में अवश्य ही आपका कुछ अधिक समय लेना पड़ेगा। अतएव आपकी अधिक कृपा और सहानुभूति की मुझे अपेक्षा होगी।

आयुर्वेद की वैज्ञानिकता

वर्षों से अब तक आप लोगों ने इस मञ्च पर से जितने भाषण सुने हैं, वे प्रायः सब पश्चिमी विज्ञान के धुरन्धर पण्डित और प्रोफेसरों के सुने हैं;

*** ३०वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन,** संवत् १९९८ **अबोहर अधिवेशन में विज्ञान परिषद के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

किन्तु मैं उस विषय में एकदम कोरा हूँ। अतएव उस ढंग से आपकी तृष्णा-पूर्ति करने में मैं एकदम असमर्थ हूँ। इसलिए स्वभावत: मैं जो कुछ कहूँगा वह अधिकांश भारतीय प्राचीन विज्ञानाश्रित आयुर्वेद विज्ञान के सम्बन्ध में होगा। अनादि काल से आयुर्वेद की वैज्ञानिकता पर किसी को सन्देह नहीं रहा और आप लोगों को भी नहीं है; किन्तु भारत में इस समय पश्चिमी डॉक्टरों का एक वर्ग ऐसा है जो स्वार्थवश आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहने का दम्भ करता है, उन्हीं के कुछ अनुयायी भारतीय भी भ्रान्तचित्त-से हो रहे हैं। यही नहीं, स्वार्थपूर्ति के लिए इन लोगों ने विदेशी तथा पश्चिमी-भावापन्न और पश्चिमी लाभेच्छु सरकार को भी भ्रम में डाल रखा है। वे आयुर्वेद की वैज्ञानिकता सत्य की कसौटी में नहीं अपने एकाङ्गी ज्ञान की ठीकरी में घिस कर निर्णय करना चाहते हैं और उसके गम्भीर ज्ञान के समझने में सफल न होकर उसे अवैज्ञानिक कहने की धृष्टता करने लग जाते है। जिसकी एक परम्परा हो, जिसकी शास्त्रीय शृङ्खला अबाधित हो और जो सत्य हो उसे ही विज्ञान कहते हैं। ऐहिक-पारलौकिक भेद से हमारे यहाँ विज्ञान दो प्रकार का माना गया है। जीव और ईश्वर की सत्ता का विवेचन करने वाले ज्ञान को पारलौकिक ज्ञान और प्रकृति-विस्तार तथा उससे मानव जीवन के सम्बन्ध का निरीक्षण करने वाला विज्ञान ऐहिक विज्ञान कहलाता है। भारतीय विचार-पद्धति में इसे विज्ञान और दर्शन कहते हैं। भारतीय ज्ञानस्रोत का उद्‌गम वेदों से होता है, वेद अखिल ज्ञान के भण्डार माने जाते हैं। उन्हीं वेदों से हमारे विज्ञान और आयुर्वेद का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। यही नहीं, वेदों को प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए भी आयुर्वेद का सहारा लिया जाता है—

मन्त्रायुर्वेद प्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्य माप्त प्रामाण्यात्

रोगी के दोष, दूष्य, देश, बल, काल (ऋतुभेद), अग्निबल, प्रकृति, अवस्था, सत्त्व, सात्म्य और आहारादि की सूक्ष्म समीक्षा कर दोषानुसार जो औषधि का निरूपण किया जाता है, उसका तत्काल फल देखने में आता है। अतएव आयुर्वेद सत्य है और इसके साथ ही जिन वेदों का आयुर्वेद उपाङ्ग है वह भी सत्य है। अपने नाम के अनुसार आयुर्वेद आयु सम्बन्धी वेद है, ज्ञान-विज्ञान है। इसके द्वारा आयु का ज्ञान होता है, आयु संरक्षण के विधि-विधानों का पता लगता है, इसी से इसे आयुर्वेद कहते हैं। न्याय, वैशेषिक, सांख्यादि दर्शनों का अवलम्ब लेते हुए आयुर्वेद का स्वतन्त्र दर्शन है, उसके अन्तर्गत कितने ही वादों का विवाद है, उसकी नींव त्रिदोष के गम्भीर ज्ञान

से दृढ़ है और यही जब स्थूल ज्ञानियों की समझ में नहीं आता तब वे घबड़ा कर आयुर्वेद को अवैज्ञानिक कहने लगते हैं। उसकी निदान-पद्धति इतनी सशास्त्र, गम्भीर और पूर्ण है कि संसार की सारी शैलियों का उसमें अन्तर्भाव होता है। औषधि और आहार-विहार का निरूपण करने में हेतु विपरीत, व्याधि विपरीत, हेतुव्याधि विपरीत, हेतु विपर्यस्तार्थकारी, व्याधि विपर्यस्तार्थकारी और हेतुव्याधि विपर्यस्तार्थकारी पद्धतियों का गहन विचार होता है। उसके द्रव्य-विज्ञान में द्रव्यों का गुण निर्धारण करते समय रस-वीर्य-विपाक और प्रभाव का इतना सूक्ष्म विवेचन किया जाता है कि अभी तक आधुनिक विज्ञान की वहाँ तक पूरी पहुँच नहीं हो पायी है। इसका शरीर विज्ञान, शरीरक्रिया विज्ञान और शस्त्रचिकित्सा विभाग सदियों की पराधीनता, राज्याश्रय के अभाव, शिक्षा और प्रयोगशालाओं की कठिनाई एवं शासकवर्ग की अवहेलना के कारण प्रत्यक्षज्ञान और कार्याभ्यास की सुविधा न होने से उन्नत न हो - विकलाङ्ग हो—समयानुसार उन्नति और पूर्ति की अपेक्षा रखता हो—तो भी वह जितना है उससे उसकी वैज्ञानिकता में आघात नहीं पहुँच सकता। उसका विकृतिविज्ञान तो इतना आश्चर्यजनक है कि दाँतों अँगुली दबानी पड़ती है। कुछ लक्षणों की विद्यमानता में वह यह कहने में समर्थ होता है कि अमुक रोगी इतने समय में अच्छा हो जायगा और अमुक इतने समय में मृत्यु को प्राप्त हो। उसका नाड़ीविज्ञान अपना निज का है और आज भी आश्चर्यजनक है। उसका रसायनशास्त्र रसशास्त्र का आधार-स्तम्भ है। उसकी चिकित्सा-पद्धति आज भी इतनी पूर्ण, सफल और श्रेष्ठ है कि उसका मुकाबला करने में अन्य कोई चिकित्सा-पद्धति समर्थ नहीं हो सकी है। अनेक पश्चिमी विद्वानों ने भी इसकी प्रामाणिकता स्वीकार की है। कलकत्ता युनिवर्सिटी के सुधार-संस्कार सम्बन्ध में सेडलर कमीशन ने आयुर्वेद की उपयोगिता स्वीकार कर उसकी शिक्षा की आवश्यकता बतलायी है, लखनऊ विश्वविद्यालय उसकी शिक्षा को अपनाने का विचार कर रहा है, हिन्दू विश्वविद्यालय में उसकी शिक्षा हो रही है। मद्रास सरकार के द्वारा नियुक्त एक कमीशन ने उसकी वैज्ञानिकता मान कर उसकी शिक्षा और सहायता की उपयोगिता स्वीकार की है। संयुक्त प्रान्तीय सरकार की नियुक्त एक इनक्वायरी कमिटी ने भी कहा है कि हम भारतीय चिकित्सा-पद्धतियों को न तो अवैज्ञानिक समझते और न अतार्किक ही समझते हैं। ऐसी दशा में स्वार्थपूर्ण जल्पना को कोई महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

यों तो एलोपैथी के विरुद्ध कितने ही पश्चिमी विद्वानों की ही सम्मतियाँ हैं। न्यूयार्क कालेज के प्रोफेसर ~र जोसेफ एम० स्मिथ एम० डी० कहते हैं कि एलोपैथी की कोई औषधि बीमारी को दूर नहीं करती, किन्तु बीमारी मनुष्य की अपनी जीवन-शक्ति से ही दूर होती है। स्काटलैण्ड के प्रोफेसर ग्रेगरी कहते हैं कि डॉक्टरी की बातें सौ में निन्यानबे झूठी होती हैं। डॉक्टरी शिक्षा की ओर देखना एक बेहूदा चीज की ओर देखना है। फिलाडेलफिया कालेज के प्रोफेसर बैञ्जमिन रश एम० डी० कहते हैं कि डॉक्टरी की थ्योरियों की कमजोरी के कारण सर्वदा मुझे क्षमा माँगनी पड़ी है। जिन डॉक्टरों ने अपने को कालेज के जुल्म से स्वतन्त्र कर लिया है वे ही प्रसिद्ध डॉक्टर हो सकते हैं। मृतक देहों को चीरने से हमें बराबर पता चलता है कि हम रोग के वास्तविक कारणों को बिलकुल नहीं जानते। हमें अपने निश्चित नुसखों को देखकर लज्जित होना पड़ता है। बीमारियों के बढ़ने का कारण हम लोग ही हैं, मृत्यु की संख्या बढ़ाने में भी हमारा ही हाथ है। लन्दन के रायल कालेज के डॉक्टर राइज़्फ़ेलो कहते हैं कि वर्तमान डॉक्टरी लज्जाजनक है। हमारी औषधियों से शायद ही किसी को लाभ होता होगा। रोगियों की अवस्था प्राय: खराब ही हो जाती है। किसी रोग को डॉक्टर का इलाज कराने से अधिक हानि और कष्ट होता है। डॉ० फ्रैंक कहते हैं कि इस विज्ञान की सब थ्योरियाँ निकम्मी और सभी सिद्धान्त बिना युक्ति के हैं। एम० मेचण्डी फ्रेञ्च फिज़ियालोजिस्ट एण्ड पैथालोजिस्ट कहते हैं कि डॉक्टरों फिजियालोजी के आधार पर कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बना। इसलिए इस सिद्धान्त में कोई उन्नति नहीं हुई। डॉक्टर लोग रोगादि के वास्तविक कारणों को सर्वथा नहीं जानते। डॉ० वोस्टाक 'हिस्ट्री आ५ मेडिसिन' में कहते हैं कि हमारा निदान और अनुभव दोनों अधूरे हैं। रोगी को औषधि दी जाती है। वह उनके जीवनों पर अन्धे ज्ञान का अनुभव होता है। बोस्टन के डॉक्टर फ्रांसिस काँसबैल एम० डी० कहते हैं कि डॉक्टरी व्यवसाय ने लाभ के बदले हानि ही पहुँचायी है। यदि यह व्यवसाय हट जाय तो मनुष्य जाति का बहुत भला हो। जान मैसन गुड एम० डी०, एफ० आर० एस० कहते हैं कि मेडिकल साइन्स समझ में न आने वाली वहशियों की भाषा है। मनुष्य शरीर पर इसके प्रभाव का विश्वास कदापि नहीं किया जा सकता। यदि इसकी किसी बात पर विश्वास किया जा सकता है तो इस पर कि दुर्भिक्ष और अन्य दैवी प्रकोपों से भी अधिक मनुष्य इससे मारे जाते हैं। इन उद्धरणों से

स्पष्ट है कि वैज्ञानिक समझी जाने वाली एलोपैथी की वैज्ञानिकता पर भी कम लोगों को सन्देह नहीं है। किन्तु उसकी गति तो रोकी नहीं जाती और उसके उचित क्षेत्र में उसे रोकना भी नहीं चाहिये। कोई विज्ञान कितना ही उन्नत हो तो भी उसकी अन्तिम उन्नति का दम नहीं भरा जा सकता। उसमें उन्नति और परिवर्द्धन का अवकाश रहता ही है। विज्ञान का उद्देश्य सत्य का अन्वेषण है। उस अन्वेषण की पद्धति प्रत्येक विज्ञान की अलग हो सकती है, किन्तु उस भिन्नता के कारण उसकी वैज्ञानिकता में अन्तर नहीं आ सकता।

सम्भाषा परिषद्

वैज्ञानिक विषयों पर मिलकर विचार करने वाली इस प्रकार की वैज्ञानिक परिषदों का बड़ा महत्त्व है। अपनी प्राचीन पद्धति में ऐसी परिषदों को **"सम्भाषा परिषद्"** कहते हैं। सब प्रकार के विचार वाले विद्वान् मिलकर परस्पर किसी विषय में चर्चा और वाद-विवाद करें, परस्पर सहयोग से जटिल विषयों की मीमांसा और विचार-विनिमय कर निर्णय करें, इसके लिए सम्भाषा परिषद् का महत्त्व सर्वमान्य है। ऐसी सम्भाषा परिषदें भारत में हजारों वर्ष से होती आयी हैं और यदाकदा अब भी होती हैं। "चरकसंहिता" में ऐसी सम्भाषा-परिषद् की उपयोगिता के सम्बन्ध में लिखा है कि इनसे संघर्षजनित ज्ञान की अभिवृद्धि होती है। विषयों की जानकारी और बातचीत की कुशलता आती है; वक्तृत्वशक्ति बढ़ती है; पहले की जानी हुई बात में यदि कुछ सन्देह रह गया हो तो उसकी निवृत्ति होकर ज्ञान की दृढ़ता होती है; जो बात पहले नहीं सुनी उसे सुनकर जाना जा सकता है; जो बात गुरु शिष्य को पढ़ाते समय भी नहीं बताते, वह गुप्त रहस्य भी ऐसी सभा में खुल जाते हैं। इसलिए सम्भाषा परिषद् की चाल बहुत प्रशंसनीय है।

ऐसी सम्भाषा परिषद् दो प्रकार की होती हैं—एक "सन्ध्याय-सम्भाषा परिषद्" और दूसरी "विगृह्य सम्भाषा परिषद्।" **सन्ध्याय सम्भाषा परिषद्** में मित्रता की दृष्टि से ज्ञान-विज्ञान, वचन-प्रतिवचन, शक्तियुक्त पुरुष बिना क्रोध किये, विद्या का अभिमान प्रदर्शित किये बिना, किसी की किसी प्रकार बिना निन्दा किये विनयपूर्वक विद्वत्ता के साथ, क्लेश को सहन करते हुए प्रेमपूर्वक बोलते हैं। परस्पर बात करते हुए विश्वास के साथ पूछा जाता है और बिना संकोच किये विश्वास के साथ उत्तर दिया जाता है। अशुद्धि दिखाने और टोकने पर उद्विग्न नहीं होना पड़ता, क्रोध नहीं करना पड़ता। जो बात

न आती हो उसे न कहे और यदि कुछ पूछना हो तो विनयपूर्वक पूछे । **विगृह्य सम्भाषा परिषद्** में विपक्षी को हटाने की दृष्टि से वाद-विवाद किया जाता है । इसमें बोलने वालों की विद्या और योग्यता की परीक्षा हो जाती है । क्रोध, कुशलता की कमी, भीरुता, असाधारणत्व और अनवहितत्व के भेद से वक्ताओं के पाँच दोष हैं । शास्त्रार्थ के विषय में बहुत लम्बे वर्णन और नियम हैं, किन्तु उनसे यहाँ प्रयोजन नहीं । ऐसे अवसर में सन्ध्याय सम्भाषा परिषद् का ही प्रयोजन है । पहिले समय में बड़े गम्भीर, जटिल और वादग्रस्त विषयों का निर्णय ऐसी ही परिषदों द्वारा हुआ करता था ।

पञ्चमहाभूत और त्रिदोषवाद के विचार के लिए अभी कई बार ऐसी कई परिषदें नासिक, पनवेल आदि में हो चुकी हैं । सन् १९३५ में काशी विश्व-विद्यालय में वैद्य सम्मेलन के कर्णधारों के द्वारा वैद्यों, पण्डितों, दार्शनिकों, आधुनिक वैज्ञानिकों, डॉक्टरों इत्यादि की परिषद् हो चुकी है । यह हमारी विज्ञान-परिषद् भी वैसी ही है; किन्तु अभी यह अविधिपूर्वक होती है, अतएव अधूरी है । यदि अधिक संगठित रूप से की जाया करे तो इसका बहुत उपयोग हो, हिन्दी साहित्य में वैज्ञानिक विषयों की प्रगति में बहुत सहायता पहुँचे । परस्पर ज्ञान का आदान-प्रदान होकर बहुत-सी ग्रन्थियाँ सुलझती रहें । नये-पुराने ज्ञान-विज्ञान-शैली में जो अभी सिद्धान्ततः बहुत अन्तर दिखता है वह कुछ कम होने लगे और सिद्धान्तों की एकता और स्थिरता में सहायता मिले । किन्तु आश्चर्य की बात है कि भारत में चिकित्साशास्त्र के सम्बन्ध में डॉक्टरों को, वैद्यों के साथ मिलकर परामर्श करने, विचार-विमर्श करने, सहयोग द्वारा कार्य करने, मिलने-जुलने और शिक्षा के सम्बन्ध में कार्य करने से जहाँ-तहाँ आदेश द्वारा रोका जाता है । विज्ञान क्षेत्र में इस तरह रुकावट और पर्दा डालना कभी न तो अभीष्ट है और न किसी पक्ष के लिए कल्याण-कर है ।

भौतिक विज्ञान

विज्ञान ज्ञानोपाय—"भौतिक" शब्द कहने से पहले ही यह ध्यान में आता है कि भूमि सम्बन्धी विज्ञान अर्थात् इस जगत् के सम्बन्ध का विज्ञान । दूसरी बात "भूत" शब्द का स्मरण कराती है । अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति भूतों के द्वारा हुई है । जगत् का अर्थ है गतिमान चलते-चलते नाश को प्राप्त होने वाला अर्थात् अपने कारणों में लीन होने वाला । अर्थात् पञ्चमहाभूतों के असंख्य विकार ही यह जगत् है । जगत् की सृष्टि के कारण

पञ्चमहाभूत हैं । इन कारणों का भी आदि कारण ब्रह्म या परमात्मा है जो सत्य है, विज्ञानमय है और आनन्दमय है । सत्य सदा विज्ञानात्मक होता है, अर्थात् विज्ञान सत्य का स्वरूप है । जो सत्य और विज्ञानात्मक होगा वह आनन्दमय होगा ही । इसीलिए **तैत्तरीय** उपनिषद् में विज्ञान को भी ब्रह्म का रूप कहा है । "विज्ञानं ब्रह्म" । जब अनेक बार हेतु-हेतुमद्भाव, प्रयोज्य-प्रयोजकभाव और कार्य-कारण भाव के रूप में किसी ज्ञान की सत्यता सिद्ध हो जाती है, तब उसे **विज्ञान** का नाम मिलता है । इस सिद्धि से आनन्द की प्राप्ति होती है । यह आनन्दमय सत्य विज्ञान ब्रह्मरूप, अनादि, अनन्त और असीम है । विज्ञान अपनी अनन्त शाखाओं से अपनी सत्यता द्वारा जगत् का कल्याण किया करता है । किन्तु उसके जानने के उपाय सीमाबद्ध हैं । वह अनादि तो उससे ज्ञानोपाय 'सादि' वह अनन्त तो उसके जानने के साधन 'सान्त' हैं । कोई थोड़े ज्ञान की जानकारी से अपने प्राप्त ज्ञान को ही अखिल विज्ञान समझ ले तो वह अपनी अज्ञानता से दूसरे विज्ञान को अवैज्ञानिक कहने का दुस्साहस कर सकता है । विज्ञान और ऐहिक पारलौकिक वस्तुओं को जानने के लिए **प्रमाण की** आवश्यकता होती है । हमारे यहाँ यह प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीन प्रकार के हैं । आधुनिक वैज्ञानिक प्रत्यक्ष और अनुमान का ही सहारा लेते हैं । जिन विषयों का साक्षात्कार चक्षु-श्रोत्र-नासिका आदि इन्द्रियों के द्वारा होता है उसे **प्रत्यक्ष ज्ञान** कहते हैं । इन्द्रियों की शक्ति सान्त-सीमाबद्ध है, अतएव इनसे बाह्य विषयों का ही ज्ञान होता है । सुख-दुख, काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि अनुराग-विराग का अनुभव मन को होता है । इस आन्तरिक प्रत्यक्षीकरण को "मानस प्रत्यक्ष" कहते हैं । किन्तु सभी विषय प्रत्यक्ष इन्द्रियों अथवा मन के द्वारा नहीं जाने जा सकते । दूर से धुआँ देखकर अग्नि का अनुमान, काली घटा घिरकर घन गर्जन होने से वृष्टि का अनुमान, नदी में फेन और गँदलापन देखकर ऊपर कहीं पानी बरसने का अनुमान होता है । गर्भ देखकर गर्भाधान का अनुमान, किसी बीज को देखकर उसके फल का अनुमान होता है । इसे **अनुमानप्रमाण** कहते हैं । जिस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय विषयों के अधीन होता है उसी प्रकार अनुमान ज्ञान हेतु ज्ञान के अधीन होता है । अग्नि के बिना धुआँ नहीं होता, वृष्टि के बिना जल में फेन और गँदलापन नहीं होता । जिसके बिना जो कार्य नहीं हो सकता वह उसका अनुमापक होता है । अप्रयोजक और असम्बद्ध वस्तु से अनुमान नहीं होता । जिस हेतु में कोई अनुकूल तर्क नहीं

होता उसे अप्रयोजक हेतु या हेत्वाभास कहते हैं। इससे उत्पत्ति ज्ञान मिथ्या ज्ञान कहलाता है। अनुमान प्रमाण के लिए सत् हेतु से उत्पन्न अनुकूल तर्क के बल पर सिद्ध ज्ञान होना चाहिये। परन्तु कुछ ज्ञान ऐसे भी हैं जो दोनों कोटियों से बाहर हैं। अतएव इसे "प्रत्यक्षपूर्वक' ज्ञान भी कह सकते हैं। प्रामाणिक पुरुषों के कथन अथवा किसी शास्त्र के वर्णन से बहुत-सा ज्ञान प्राप्त होता है, उसे **आगम प्रमाण** या शब्द प्रमाण कहते हैं। सभी प्रकार के मनुष्यों की कही हुई बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। प्रामाणिक पुरुष **आप्तपुरुष** कहलाते हैं। जिन्होंने वस्तु का स्वयं साक्षात्कार किया है या प्रामाणिक रूप से सुना है और निष्कपट ह.कर यथार्थ वस्तु का ज्ञान कराने की इच्छा रखते हैं, जो रज और तम के भाव से निर्मुक्त, तप और ज्ञान के बल से अव्याहत अमल ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं वे ही आप्त पुरुष कहलाते हैं। चरक में लिखा है—

रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपो ज्ञान बलेन ये
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा।
आप्ताः शिष्टा विबुद्धास्ते तेषां वाक्यमशंसयम्
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं नीरजस्तमाः ।।

कुछ आप्त प्रमाण की बातें उपाय द्वारा समझी जा सकती हैं। किन्तु कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनका जानना युक्ति या तर्क से भी सम्भव नहीं होता। बुद्धि के द्वारा विचार कर कार्य-कारण के भावों की विवेचना कर जो आप्तज्ञान समझा जाता है वह तर्कसाध्य होता है। किन्तु किसी ज्योतिषी ने कहा कि १० वर्ष बाद अमुक मास की पूर्णिमा को चन्द्रग्रहण होगा, या किसी ने बतलाया कि दान-तप-यज्ञ-अहिंसा-ब्रह्मचर्यादि का पालन अभ्युदय निःश्रेयस-कारक होता है, तो उसे विश्वास के साथ ही मानना पड़ेगा। मणि-मन्त्र और औषधियों के अनन्त प्रभाव की बात भी इसी तरह शास्त्राज्ञा के द्वारा ही माननी पड़ेगी, क्योंकि यह अचिन्त्य है, अतर्क्य है। यम-नियमादि के अनुष्ठान से जिनके हृदय से रजोगुण-तमोगुण का आवरण दूर हो जाता है और जिनका अन्तःकरण मणिप्रदीप के समान निर्मल हो जाता है, ऐसे ऋषि-महर्षि और योगियों के वाक्य निःसंशय और आप्तप्रमाण होते हैं। इससे भी ऊपर "क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः" अत्यन्त निर्मल और व्यापक ईश्वरीय ज्ञान है, जिसका पता हमें वेदों से लगता है। जिन विषयों के जानने का उपाय प्रत्यक्ष और अनुमान के द्वारा नहीं होता वह वेदों

से जाने जाते हैं, अतएव वेदों का वेदत्व-शब्द प्रमाणत्व **आगमप्रमाण** है। आयुर्वेद, ज्योतिष और मन्त्रादि की सहायता से वेदों की सत्यता और आगमत्व परम्परा से सिद्ध हो चुका है। चार्वाकमत में केवल प्रत्यक्ष-प्रमाण माना जाता है। बौद्ध और वैशेषिक मत में प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने जाते हैं। सांख्य और योग तथा आयुर्वेद भी प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम तीनों प्रमाण मानते हैं। न्यायशास्त्रवाले प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द ऐसे चार प्रमाण मानते हैं। मीमांसक लोग अनुलब्ध को भी पाँचवाँ प्रमाण मानते हैं। ईश्वर और वेदों के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें उठ सकती हैं किन्तु इस विवाद में न पड़कर हम इतना ही बतलाना चाहते हैं कि भारतीय विज्ञान जानने के लिए प्रत्यक्ष-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण और आप्त—आगम-प्रमाण की आवश्यकता है; और इन्हीं प्रमाणों की कसौटी में वैज्ञानिक विषयों को कस कर निर्णय किया जाता है। भारतीय विज्ञान इस कसौटी में खरा उतरने पर ही सिद्धान्त का रूप पा सका है।

सृष्टि की उत्पत्ति—सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न दर्शनों, शास्त्रों और धर्मों में कुछ भिन्न-भिन्न प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। कारण के बिना कार्य नहीं होता। जब यह स्थूल सृष्टि दृश्यमान है तब इसका कोई कर्ता या कार्य का कारण भी होना चाहिये। अतएव कहा गया है कि आरम्भ में केवल परम ज्योतिर्मय स्वयंप्रकाश आत्मा या परमात्मा था। उसी ने लोकों की सृष्टि की। बीज रूप से पहले 'अप' की सृष्टि हुई। इस अप की चार अवस्थाएँ हैं—अम्भ, मरीचि, मर और आप। सूर्यमण्डल से भी ऊपर आकाश के ऊपरी भाग में अवस्थित अप को अम्भ, सूर्य की किरणों से प्रभावित सूर्य-मण्डल और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में अवस्थित अप को मरीचि, पृथ्वीस्थित अप की मर संज्ञा और भूमि के नीचे अवस्थित अप की आप संज्ञा हुई। सूर्य के ऊपर परमेष्टिमण्डल में जो सोमरूप अम्भ है, उसे अमृत कहते हैं। वहीं ज्योतिर्मय सृष्टिकर्ता परमात्मा का निवास है। यह अम्भ जल की प्राथमिक सूक्ष्मतम अवस्था है। अत्यन्त लघुभूत होने से इसी के अंश-विशेष से किसी-किसी के मत में आधुनिक वैज्ञानिकों का हाइड्रोजन सिद्ध होता है। हाइड्रोजन अग्निसंयोग से जलता है और सोम भी सूर्यरश्मि सम्पर्क से ज्वलनशील होता है। प्रकाशजनक भी है। मरीचिमाली की मरीचिमाला से प्रभावित तत्किरणजात 'अप' का नाम मरीचि है। यह आग्नेय सोम होने से पवमान कहा जाता है। यही मरीचि, अग्नि को धारण करनेवाला आग्नेय सोम है।

सूर्यमण्डल, ग्रहतारादि की सृष्टि यहीं से हुई, दिन का प्रकाश यहीं से आता है। सम्भवतः इसी का अंश-विशेष ऑक्सिजन हो। यही सोम और पवन, दोनों वनस्पति, औषधि और उष्णता के पोषक हैं। यह जगत् अग्नि-सोमात्मक इसी से कहा जाता है। हाइड्रोजन और ऑक्सिजन (२+१) के योग से स्थूल जल मर की प्राप्ति होती है (?) अग्नि सम्बन्ध से ही द्रवत्व होता है। इस मर की घनीभूतावस्था पृथ्वी है। इस प्रकार परमात्मा की इच्छा से पहले बीज रूप अप-तत्व हुआ। अति सूक्ष्म होने से शून्य रूप आकाश पहला महाभूत हुआ। यह आकाश आधुनिक वैज्ञानिकों का "ईथर" है या नहीं, यह विचारणीय है, क्योंकि ईथर को अनन्त शक्ति का भण्डार और जगत् के कारणरूप इलेक्ट्रॉनों का उत्पादक कहा गया है। आकाश से वायु का प्रकाश हुआ। वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी हुई। दार्शनिक लोग पदार्थ की पाँच अवस्था बतलाते हैं—१ गुण, २ अणु, ३ रेणु, ४ स्कन्ध, और ५ सत्व। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये क्रम से पंचमहाभूतों के गुण हैं—अर्थात् आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, अग्नि का रूप, जल का रस और पृथ्वी का गन्ध गुण है। इन पाँचों को **तन्मात्रा** भी कहते हैं। इन तन्मात्राओं को हम किसी पात्र में रखकर बता नहीं सकते, अतएव कोई यन्त्र द्वारा उनकी परीक्षा करना चाहे तो यह सम्भव नहीं है। हाँ, योग द्वारा बनावट हो सकती है। इस प्रकार आकाश के एक भाग अर्थात् शब्द तन्मात्र के एक भाग और स्पर्श तन्मात्र के दो भाग से स्पर्श प्रधान तथा शब्दगुण युक्त अणुसमुदायजन्य वायु बनता है, जिसमें पञ्चतन्मात्र तारतम्य से पञ्चमहाभूतजनक अनेक प्रकार के अणुरूप वायुसत्व पाये जाते हैं और उनके मेल से अनेक वस्तु बना सकते हैं। भौतिकवायु के ४६ रूप और शारीरिक वायु के गुणकर्म भेद से ५ रूप इसी प्रकार माने गये हैं। इसके बाद एक भाग स्पर्शतन्मात्र, दो भाग रूपतन्मात्र वायु से रूपप्रधान और शब्द तथा स्पर्श गुण वाला अग्नि हुआ। फिर एक भाग वायुरूप अग्नि और दो भाग रस तन्मात्राधिक वायु से रस गुण प्रधान तथा शब्द, स्पर्श और रूप गुण युक्त जल हुआ है। इसके बाद एक भाग रस तन्मात्राधिक वायु और दो भाग गन्ध तन्मात्राधिक गन्ध गुण प्रधान और शब्द-स्पर्श-रूप-रस युक्त पृथ्वी उत्पन्न हुई। इस प्रकार सूक्ष्म महाभूत अर्थात् तन्मात्र महाभूतों से पहले तत्व के एक भाग अपने दो भागों से आकाशादि स्थूल महाभूत उत्पन्न होते हैं। यह त्रिवृत कारण दार्शनिकों का अणुरूप है। इन अणुओं का रासायनिक

प्रक्रिया के बिना जो अवयव विभाग क्रम अविभाज्य होता है, वही **रेणु** है। उन अणुरेणुओं के आरम्भ अवयवों को **स्कन्ध** कहा जाता है। अवयवी की क्रम से आरभ्यमान अवस्था शरीर और इन्द्रियों के अनुभव में आती है, वह **सत्व** है। गुण से लेकर स्कन्ध तक की अवस्था भूत अथवा महाभूत शब्द से परिबोधित होती है; और सत्व अवस्था प्राप्त द्रव्य भौतिक नाम से पुकारे जाते हैं। यह सारा विश्व पञ्चमहाभूतों का खेल है। इन महाभूतों का जो इन्द्रियग्राह्य विषय नहीं है, वही तन्मात्रा महाभूत है और जो इन्द्रियग्राह्य है, वही भूत है। आत्मा और आकाश अव्यक्त हैं। यह हमारी सृष्टि भूतों का समुदाय है। पृथ्वी में गति वायु से अवयवों का मेल और संघटन जल से और उष्णता अग्नि से आयी। पृथ्वी अन्तिम तत्व और अपरिवर्तनीय है, सृष्टि के पदार्थ सजीव और निर्जीव भेद से दो प्रकार के हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक सृष्टि को परमाणुजनित मानते हैं। हमारे यहाँ भी कणाद इसी मत वाले हैं; किन्तु यह स्थूलमान है। सूक्ष्ममान पञ्चमहाभूतों से ही सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकार करता है। ये पञ्चभूत **परमाणु** जनित हैं। द्रव्यों का विभाजित न होसकनेवाला अंश, **परमाणु** कहलाता है। वह नित्य और अविनाशी है, क्योंकि विच्छेद होकर कारण में लीन नहीं होता। सत्वादि तीनों गुण जिसमें समान हों, ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म द्रववत् एकीभूत परमाणुओं के सर्वत्र व्यापक समष्टिरूप समूह को **प्रकृति** (सुप्रीम नेचर) कहते हैं। जब इस प्रकृति में सत्वगुण अधिक बढ़ जाता है तब उसे **महत्तत्व** (इण्टेलेक्शन) कहते हैं और जब रजोगुण अधिक हो जाता है तब उसे अहंकार तत्व (एगोइज़्म) कहते हैं, गुण और गुणी का अभेद मानकर अहंकार शब्द से अहंकार गुणवाले परमाणु लिये गये हैं। इस प्रकार प्रकृति और महत्तत्व, बुद्धि तथा अहंकार और पंचतन्मात्र गुण भेद से आठ नाम परमाणुओं—अर्थात् प्रकृति के ही हैं। इसको अव्यक्त भी कहते हैं। यह जगत् का कारण कहाता है। **इन पाँच महाभूतों को तत्व भी कहते हैं।** "तनोतीति तत्वम्, तनु विस्तारे" के अनुसार जो अपने विस्तार से तान लेवे, वही **तत्व** है। ये **पंचमहाभूत** अपना रूप विस्तार कर विश्व का ताना-बाना बनाये हुए हैं, अतएव तत्व हैं। पश्चिमी विज्ञान उसे तत्व कहता है जिसकी बनावट में उसी के परमाणु हों अन्य का मेल न हो। पूर्वी विज्ञान उनकी क्रियाशीलता को मानने वाला है। आजकल तत्व नाम से ९२ पदार्थ समझे जाते हैं और इन्हीं के संयोग से सजीव और निर्जीव सृष्टि का निर्माण स्वीकार करते हैं। इसमें एक जाति के ही परमाणु

मिलने से ऐसा कहा जाता है। इस दृष्टि से पूर्वी और पश्चिमी विज्ञान के मूल सिद्धान्तों में विभेद दिख रहा है और इसमें मेल खाना कठिन समझा जा रहा है। किन्तु सम्भव है, आगे चलकर यह स्थूल मान गम्भीर ज्ञान में परिणत होकर एकता के सूत्र हाथ लग जायँ। रसायन और कीमियाँ पद्धति से ताम्र द्वारा सोना बनाया जा सकता है। सम्भव है, इससे इस मौलिकता-ज्ञान में अधिक विचार की आवश्यकता पड़े और पंचमहाभूतों का सिद्धान्त ही अधिक सयुक्तिक जान पड़े। जो हो, हमारी दृष्टि से सृष्टि के मूल पदार्थ सूक्ष्मतन्मात्रा और स्थूल अवयवप्राप्त स्थूलपंचतत्व ही पंचभूत नाम से प्रसिद्ध हैं। देह क्षुद्र ब्रह्माण्ड और बाह्य जगत् वृहत ब्रह्माण्ड है। क्या क्षुद्र ब्रह्माण्ड, क्या वृहद् ब्रह्माण्ड सभी पंचभूतात्मक हैं। ये पदार्थ पञ्चक ही वहिर्जगत् के मूल हैं। पश्चिमी विज्ञान भी मानता है कि आरम्भ में नीहारिकाओं (नेब्युला) के भीतर जो सूक्ष्म ज्योतिर्मय तरल पदार्थ दिखता है, उसी से नीहारिकाओं का आरम्भ होता है। यह ज्योतिर्मय पदार्थ अनन्त देश में बहुत दूर तक फैला रहता है, फिर किसी अज्ञात कारण से इस अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ के भीतर आन्दोलन पैदा होता है, फिर बड़े वेग से यह पदार्थ चक्कर खाने लगता है और घना होने लगता है, अनन्त देश में फैले हुए इस भयानक चक्कर से अन्त में कुण्डली का आकार बनता है। यह विश्व की बनावट की आदि अवस्था है। इसके पश्चात् सूर्यमण्डल, ग्रह, नक्षत्र आदि बनते हैं। विश्व बना रहता है और सूर्यमण्डल आदि बनते-बिगड़ते रहते हैं। ईसाई मानते हैं कि आरम्भ में ईश्वर की आत्मा नारा पर बह रही थी। भारतीय पुराण भी नार या जलराशि में नारायण का शयन और फिर उनकी "एकोऽहं बहुस्याम" की इच्छा के अनुसार जल घनीभूत होकर सृष्टि की उत्पत्ति मानते हैं। इस प्रकार उस तेजोमय शक्ति को चाहे परमात्मा मानिये, चाहे नीहारिका स्थित ज्योतिर्मय पदार्थ मानिये। घुमा-फिराकर सृष्टिक्रम में बहुत अन्तर नहीं और "अप" तत्व ही पंचमहाभूतों और भौतिक पदार्थों का आदि कारण ठहरता है। गीता में भगवान् कहते हैं कि सत्व, रज और तमोगुण वाली मेरी प्रकृति मेरी समीपता से विषमता को प्राप्त होती है तभी सृष्टि के तरङ्ग के "अहं" पर्यन्त पहुँचने पर जो चैतन्य अहं अभिमान करके परिच्छिन्न-सा हो जाता है, वही जीव है। परमात्मा सृष्टि रचना में अधिष्ठान रूप प्रेरक है।

सृष्टि और त्रिगुण—त्रिगुण और पञ्चमहाभूत की कल्पना केवल काल्पनिक

नहीं हैं। सृष्टि और हमारे शरीर में उनकी उपस्थिति का अनुभूतिजन्य प्रमाण भी मिलता है। मनुष्यों में जो आनृशंस्य-निर्दयताहीन, संविभाग-रुचिता (आप चाहे कुछ न पावे किन्तु औरों को देवे), तितिक्षा-सहनशीलता, क्षमा, सत्यता, धर्माचरण, आस्तिकता, ज्ञान-विचारशक्ति, बुद्धि-सारासार, विचारशक्ति, मेधा-धारणशक्ति, स्मृति-स्मरणशक्ति, धृति-धैर्य, अनभिषंग (निरपेक्ष शुभकर्म में प्रवृत्ति) आदि जो गुण हैं, वे सात्विक गुण के कारण होते हैं। रजोगुण प्रधान पुरुषों में दुःखी रहना, स्थिरता न रहना, धैर्य की कमी, अभिमान, झूठ बोलना, दया न रखना, पाखण्ड, मान की अधिकता, हर्षातिरेक तथा काम और क्रोध के गुण अधिक पाये जाते हैं। तामस गुण वालों में विषाद, नास्तिकता, अधर्म-शीलता, बुद्धि की रुकावट, अज्ञान, धारणाशक्ति की कमी, अकर्मशीलता—काम करने की इच्छा न होना, आलस्य और निद्रा गुण की अधिकता होती है। सत्वगुण की विशेषता आकाशतत्व के, रजोगुण की विशेषता वायुतत्व के, सत्व और रज मिश्र गुण की विशेषता अग्नितत्व के, सत्व और तम मिश्र गुण की विशेषता जलतत्व के और तमोगुण की विशेषता पृथ्वीतत्व के प्रभाव से होती है। इसी तरह आकाश तत्व का परिचय शब्द और शब्देन्द्रिय अर्थात् श्रोत, मुख, नासिका, कर्ण आदि सछिद्र स्थानों में तथा विविक्तता—अलग-अलग करने की क्रिया में मिलता है। वायुतत्व का परिचय स्पर्श और स्पर्शेन्द्रिय अर्थात् त्वचा एवं चलने-हिलने-डोलने आदि चेष्टा समूह तथा फैलाने-सिकोड़ने और हल्केपन में मिलता है। अग्नितत्व का परिचय रूप और रूपेन्द्रिय अर्थात् चक्षु, वर्ण-सौन्दर्य, सन्ताप, भ्राजिष्णुतादीप्ति, पक्ति-पाचनशक्ति, अमर्ष-क्रोध, तीक्ष्णता और शूर-वीरता से होता है। जलतत्व का परिचय रस और रसनेन्द्रिय, सम्पूर्ण द्रव समूह, भारीपन, शीतलता, चिकनाई और वीर्य के द्वारा होता है। इसी तरह पृथ्वीतत्व का परिचय गन्ध और गन्धेन्द्रिय-घ्राण, सम्पूर्ण मूर्ति समूह-कठिन पदार्थ अस्थि आदि तथा गुरुता से होता है। ये आकाशादि पाँचों तत्त्व परस्पर अन्योन्याश्रय से प्रविष्ट हैं। जैसे आकाश में परमाणु रूप से सब व्याप्त हैं, उसी तरह अन्य तत्वों में भी परमाणुरूप से व्याप्त हैं।

विज्ञान पुरुष—सृष्टि का उपक्रम करने में सृष्टिकर्ता का कुछ उद्देश्य होना चाहिए। इस चमत्कारपूर्ण सृष्टि का कोई द्रष्टा या उपभोक्ता भी होना चाहिए। इसलिए इसके दो भेद हुए—जड़ और चैतन्य। इसी तरह सूक्ष्म ब्रह्माण्ड और बृहत् ब्रह्माण्ड अथवा पिण्ड और ब्रह्माण्ड। यों तो परम

ज्योर्मिय आत्मा की ज्योति का विकास जड़ और चैतन्य सभी में विद्यमान है, किन्तु चैतन्य पदार्थों में उसकी अनुभूति विशेषता के साथ है। उनमें से शरीरधारी जीवों में और उनमें भी मानव शरीर में उसका विकास विशेषता से है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' के अनुसार ब्रह्माण्ड का सारस्वरूप यह मनुष्य नामधारी पुरुष उत्तम नमूना है। वहिर्जगत् में जितने स्थूल पदार्थ हैं, पुरुष में भी वे हैं और जो पुरुष में हैं वह वाह्यजगत् में भी हैं। जिस प्रकार वहिर्जगत् के अवयव असंख्य हैं, उसी प्रकार पुरुष के भिन्न-भिन्न अवयव भी असंख्य हैं। किन्तु प्रधानता से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और अव्यक्त ब्रह्म में उन सबका समावेश हो जाता है। इन छः धातुओं की समष्टि से ही पुरुष का निर्माण हुआ है। यह पुरुष-मूर्ति स्थूल घनरूप पृथ्वी, क्लेद रूपी जल, ऊष्मा रूपी अग्नि, प्राणरूपी वायु, अवकाश और छिद्र रूपी आकाश और अन्तरात्मा ब्रह्म से पूर्ण हैं। जगत् में ब्रह्म-विभूति प्रजापति, पुरुष में अन्तरात्मा की विभूति सत्व रूप से है। जगत् में जो इन्द्र विभूति है, पुरुष में वैसा ही अहंकार है। जगत् में जैसे सूर्य पुरुष में वैसा ही आदान, जगत् का रुद्र पुरुष में रोष रूप से, चन्द्र प्रसाद रूप से, वसु सुखरूप से, अश्विनीकुमार कान्तिरूप से, वायु उत्साह रूप से, देवता इन्द्रिय और इन्द्रिार्थरूप से, तम मोहरूप से, ज्योति ज्ञान रूप से, स्वर्ग गर्भाधान रूप से, सतयुग बाल्यकाल रूप से, त्रेता यौवन, द्वापर प्रौढ़त्व और कलियुग रुग्णता रूप से है। जगत् का प्रलय पुरुष में मृत्युरूप से विद्यमान है।

ऊर्ध्व दक्षिणांश दक्षिण मेरु, ऊर्ध्व उत्तरांश उत्तर मेरु, शरीर के दो भाग करने वाला मेरुदण्ड विषुवत रेखा, सुमेरु और कुमेरु के जैसे बर्फ से आच्छादित आकुञ्चन और प्रसारण से जीव, जगत् का प्राण धारण होता है, उसी तरह दोनों फुफ्फुस हैं। इनके आकुञ्चन-प्रसारण और श्वास क्रिया से शरीर परिचालित होता है। सप्तद्वीप समन्वित मेरु अर्थात् मूलाधार शरीर में स्वाधिष्ठान-मणिपूर-अनाहत-विशुद्ध-आज्ञा और सहस्त्रार सप्तचक्र-वेष्ठित मेरुदण्ड है। सरिता रसधातु, सागर रुधिर, शैल अस्थिपंजर, क्षेत्र देह, चन्द्र का गुण विसर्ग और सूर्य का आदान, चन्द्र का शीतल वायु प्रदान जीवधारी श्वासरूप से लेते हैं ओर सूर्य जो ऊष्ण वायु ग्रहण करता है, वही जीवधारी प्रश्वास रूप से परित्याग करते हैं। ग्रहण से स्थिति और त्याग से लय, इस प्रकार इस शरीर में सदा जन्म, मृत्यु या सृष्टि और संहार क्रिया

चलती रहती है—यही खण्ड प्रलय है । जब शरीर त्याग का ग्रहण नहीं कर सकता, तब मृत्यु या महाप्रलय होता है ।

लोक शब्द में जगत् और पुरुष दोनों का अन्तर्भाव होता है । सभी लोक ऊपर लिखे षड्धातु सम्पन्न हैं । समस्त लोक हेतु (उत्पत्ति कारण), उत्पत्ति (जन्म), वृद्धि (आप्यायन-पुष्टि), उपप्लव (दुःखागम रोगादि) और वियोग (षड्धातु विभागनाश) के अधीन हैं । इस प्रकार वियोग ही जीव का अपगम, वियोग ही प्राण निरोध, वियोग ही भङ्ग अतएव वियोग ही लोक स्वभाव है । हमें विस्तृत विवेचन में नहीं जाना है । किन्तु साहित्यिक दृष्टि से देखें तो यह पुरुष दर्शनदृष्टि से आत्मा से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से ओषधादि, ओषधादि से अन्न और अन्न से पुरुष के क्रम से हुआ । यह अन्नरसमय दार्शनिक पुरुष है । आयुर्वेद में चिकित्साकार्य के लिए कर्मपुरुष की आवश्यकता है । इसलिए धातुभेद से २४ तत्त्वों से पुरुष की उत्पत्ति कही गयी है । अर्थात् एक मन, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पंच तन्मात्र, पंच महाभूत, बुद्धि, अव्यक्त और अहंकार । भूतों का कारण सत्व-रज-तम है । अष्ठधा प्रकृति का मूल अव्यक्त है । वह अकारण है, उसकी उत्पत्ति का कोई कारण नहीं । वह असंख्य जीवों का आश्रय है । उसी के सत्व-रज-तम लक्षणों वाला महत्तत्त्व-निश्चयात्मक बुद्धितत्त्व हुआ । उससे अव्यक्त लिंग सत्व-रज-तम स्वभाव वाला अहंकार—मैं हूँ, इस ज्ञानवाला—उत्पन्न हुआ । तैजस् की सहायता युक्त वैकारिक-सात्विक अहंकार से सात्विक लक्षण वाली मन+कर्मेन्द्रिय+ज्ञानेन्द्रिय—ये ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं । तैजस रजोगुणयुक्त भूतादि तामस अहंकार से तामस लक्षणवाली-मोहलक्षणवाली सूक्ष्म पंच तन्मात्रा हुईं । उसके विशेष अनुभव योग्य स्थूल विषय शब्द-स्पर्श-रूप रस-गन्ध हुए । इन्हीं तन्मात्राओं से आकाश-वायु-अग्नि-जल और पृथ्वी, यह सब मिलकर २४ तत्त्व हैं । पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के क्रमशः शब्दादि पाँच विषय हैं । कर्मेन्द्रियों में वाणी का विषय बोलना, हाथों का ग्रहण-पकड़ना, जननेन्द्रिय का आनन्द, और गुदा का मल त्याग तथा पैरों का विषय गति है । अव्यक्त महत्तत्व, अहंकार और पंच-तन्मात्रा मिलकर अष्टप्रकृति बनी हैं । वही पुरुष की कारणीभूत है । २४ तत्त्वों में से शेष १६ अर्थात् ग्यारह इन्द्रिय और पृथ्वी आदि पंच महाभूत विकार हैं । किन्तु ये चौबीसों तत्त्व चेतन रहित हैं । चेतना युक्त पचीसवाँ तत्व पुरुष जीवात्मा है । वह पुरुष कार्यरूपी पंच महाभूत और एकादश-

इन्द्रिय तथा कारणरूप अव्यक्तादि अष्टप्रकृति से संयुक्त होकर चेतन करने वाला होता है। यद्यपि प्रकृति प्रत्यक्ष चेतन नहीं, अचेतन है तो भी यह पुरुष ऐहिक और पारलौकिक प्रवृतियों का प्रेरक होता है। जैसे दूध अचेतन होकर भी चेतना प्रेरित वत्सप्रेम से प्रवृत्त होता है और शुक्र अचेतन होकर भी अनुराग-संभोगादि से प्रवृत्त होता है, जैसे जल अचेतन होकर भी अग्नि संयोग से शब्दवान और वेगवान होता है, उसी तरह प्रकृति भी पुरुष प्रेरणा से कार्यरूप में प्रवृत्त होती है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि, अनन्त, अलिंग, नित्य-अविनाशी, सर्वव्यापी और अपर हैं—अर्थात् इनसे परे और कोई नहीं है। यह इनका साधर्म्य है। किन्तु अव्यक्तात्मक मूल प्रकृति चेतनारहित है सत्व-रज-तम-गुणवाली है, प्रलय में समस्त पदार्थ बीजरूप से इसी में स्थित होते हैं, यह बीजरूप होने से इसी से सब उत्पन्न होते हैं। अतएव यह प्रसवधर्मिणी है, सुख-दुःख भोगनेवाली है। मध्यस्थ धर्मवाली उदासीन नहीं है। इसके विपरीत पुरुष-आत्मा जीव-रूप होकर अनेक—असंख्य है, चेतनापूर्ण और सत्व-रज-तम गुणों से रहित है, जीवात्मा में कोई पदार्थ बीजरूप होकर नहीं रहते, यह स्वयं प्रसवधर्मी नहीं मध्यस्थ है। सुखदुःख का भोग प्रकृति ही करती है, चेतन नहीं, यह दोनों में वैधर्म्य है। आयुर्वेद का क्षेत्रज्ञ-जीव सर्वव्यापी नहीं है, किन्तु असर्वगत एकदेशी होते हुए भी नित्य है, धर्माधर्म-कर्माकर्म के अनुसार अनेकयोनि में विचरता है। जीवात्मा परम सूक्ष्म अनुमान से ग्रहण योग्य चैतन्य है, शाश्वत अर्थात् नित्य है। माता-पिता के रज-वीर्य-संयोग से प्रकट होते हैं। इसी अवस्था में पंचमहाभूत शरीरी आत्मा संयोग से कर्म पुरुष कहा जाता है। आयुर्वेद का अभिमत यही कर्म पुरुष है। इसमें १६ गुण माने गये हैं। १. सुख, २. दुःख, ३. इच्छा, ४. द्वेष, ५, प्रयत्न, ६. प्राण (श्वास लेना), ७. अपान (मल-त्याग), ८. उन्मेषनिमेष (नेत्रों को खोलना मूँदना), ९. बुद्धि, १०. मन (इन्द्रिय प्रेरणात्मक शक्ति), ११. संकल्प, १२. विचारणा, १३. स्मृति, १४. विज्ञान, १५. अध्यवसाय और १६. विषयोपलब्धि। इसी प्रकार दार्शनिक और आयुर्वेदिक पुरुष के अतिरिक्त एक **साहित्यिक पुरुष** की भी कल्पना की जा सकती है। पहला दार्शनिक पुरुष सूक्ष्म है और आयुर्वेदिक पुरुष का प्रवाह स्थूलता की ओर है। यह प्राकृतिक है, तर्कपूर्ण, बुद्धिवाद और कल्याणकारी भावनाओं से पूर्ण है। यदि पहला सत् तो यह चित् है। इसमें छः रस ही हैं। उससे विशेष आनन्द की अनुभूति के लिए जिस साहित्यिक पुरुष की कल्पना की जा सकती है, वह नौ रसवाला आनन्दवर्धक है। उन

छः रसों का आस्वादन जिह्वा कर सकती है, किन्तु इन नौ रसों की अनुभूति हृदय करता है। वह पुरुष प्रकृति और चेतन सहयोग से हुआ। यह सृष्टिकर्ता विरञ्चि प्रसाद से सरस्वती के पुत्र रूप से प्रकट हुआ और काव्यपुरुष कहलाया। कोमल भावनाएँ सरस्वती रूप और रमणीय शब्दार्थ उससे उत्पन्न पुत्र के रूप में है। उसकी आत्मा रस है जो नौ प्रकारों में विभक्त है। शब्द और अर्थ उसके शरीर तथा माधुर्य-ओज और प्रसाद उसके गुण हैं। वैदर्भी-गौडी-पांचाली और लाटी नामक रीतियाँ उसके अवयव-संस्थान, छन्द उसके रोम और उपमादिक आभरण हैं। इस प्रकार सूक्ष्म, स्थूल और अनुभूतिमय तीन प्रकार के पुरुषों का स्वरूप है। आयुर्वेद वर्णित पुरुष स्वतन्त्र और सांख्यशास्त्र वर्णित पुरुष परतन्त्र तथा साहित्यिक पुरुष व्याप्त है।

द्रव्य और उनके गुण—सारी प्रकृति द्रव्यों से पूर्ण है। सृष्टि के द्रव्य पञ्चमहाभूतों के परमाणुओं से बनते हैं। स्थावर सृष्टि से जीवसृष्टि और उसके पश्चात् मनुष्य सृष्टि हुई। सांख्य का मत है कि सृष्टि पञ्चतन्मात्राओं से होती है, वेदान्त कहता है, पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों से सृष्टि उत्पन्न होती है। आयुर्वेद, इन्द्रियों और इन्द्रियों के अर्थों को भौतिक मानता है। सारे द्रव्य पञ्चभूतात्मक हैं और पृथ्वी उनका मूल आधार है। जल योनि है अर्थात् जल के योग से उनमें संघट्टन होकर विशिष्ट स्वरूप प्राप्त होता है। अग्नि-वायु और आकाश द्रव्यों के बनने में समवायिकारण हैं—अर्थात् इनके संयोग से द्रव्य की पूर्णता होती है। इस प्रकार सब पदार्थ यद्यपि पञ्चमहाभूतों के मेल से ही बनते हैं; तथापि जिस द्रव्य से जिस तत्त्व या महाभूत की अधिकता होती है, वह उसी के नाम से सम्बोधित होता है। वायु की अधिकता से वायवीय, जल की अधिकता से जलीय आदि। मनुष्य शरीर भी इसी प्रकार पञ्चभूतात्मक है और पञ्चभूतात्मक द्रव्यों के आहार पाने से ही उसका पोषण होता है। आहारीय द्रव्य जिस गुण वाले होंगे, शरीर पर उनका असर भी तदनुकूल होगा। इसलिए शरीरधारियों का इन जंगम, औद्भिद, पार्थिवादि द्रव्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। पार्थिव पदार्थ गुरु-स्थूल-स्थिर और गन्ध-गुणोल्वण होते हैं। उनसे शरीर में भारीपन, स्थिरता, घनत्व, स्थूलता और कठिनता आती है। जलतत्वाधिक-द्रव पदार्थ पतले, ठण्डे, भारी, स्निग्ध, मन्द, सान्द्र (बाँधनेवाले) और रसगुण युक्त होते हैं। इनसे स्नेहन, स्राव, क्लेद, आह्लाद और सन्धान धर्म की प्राप्ति होती है। **आग्नेय पदार्थ** रुक्ष, तीक्ष्ण, ऊष्ण, विशदस्वच्छता, सूक्ष्म और रूप गुणोल्वण होते हैं। इनसे दाह, कान्ति

वर्ण, प्रकाश और पचन धर्म की सिद्धि होती है। वायवीय द्रव्य रुक्ष, विशद-स्वच्छता, हल्कापन और स्पर्श गुणप्रधान होते हैं, उनसे रूक्षता, हल्कापन, स्वच्छता, विचार और ग्लानि क्रिया सम्पादित होती है। **आकाशात्मक द्रव्य** सूक्ष्म, विशद, लघु और शब्द गुणोल्वण होते हैं, और ये पोलापन तथा हल्कापन की क्रिया सम्पादित करते हैं। इस प्रकार संसार में कोई ऐसा पदार्थ नहीं जो हमारे शरीर के लिए किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति न कर सकता हो, अतएव वह औषधि रूप है। नानार्थ योग से उनमें औषधिगुण आते हैं। जिन पदार्थों में अग्नि और वायु की अधिकता होती है, वे ऊर्ध्वगामी क्रिया (वान्ति, डकार आदि) सम्पादित करते हैं, जिनमें पृथ्वी और जल तत्व की अधिकता होती है वे अधोगामी क्रिया-जुलाव, वायु-मूत्रादि का निर्गमन कराने वाले होते हैं। पदार्थों में उनके **कार्यदर्शक बीस गुण** होते हैं—१. गुण, २. लघु, ३. मन्द, ४. तीक्ष्ण, ५. हिम, ६. उष्ण, ७. स्निग्ध, ८. रुक्ष. ९. श्लक्ष्ण (लिलबिला), १०. खर-खरखरा, ११. सान्द्र, १२. द्रव, १३. मृदु, १४. कठिन, १५. स्थिर, १६. सर, १७. सूक्ष्म, १८. स्थूल, १९. विशद और २०. पिच्छिल। शरीर में दोष-धातु-मल आदि की ह्रासवृद्धि होने पर पदार्थों के उक्त गुण जानकर धातुसाम्य करने में आरोग्यता बनाये रखने में सहायता मिलती है। वाह्यजगत् का प्रभाव हमारे शरीर में बराबर पड़ता है। वर्षा से शरीर में अवसाद, शीत से कँपकपी, ग्रीष्म से उत्ताप की वृद्धि होती है। शरीर में जिन धातु और तत्त्वों की अधिकता हो, उनका अपकर्षण, जिनकी कमी है उनका आप्यापन या वर्धन कर धातुसाम्य करना पड़ता है। लिखा है—"वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः" अर्थात् वातादि दोष, रसादि धातु, मल-मूत्र-स्वेदादि मल इन सबों की समान गुण पदार्थों से वृद्धि और विरुद्ध गुण के पदार्थों से क्षय होता है। इस प्रकार समानत्व और विरुद्धत्व द्रव्य-गुण-क्रिया भेद से तीन प्रकार का हो सकता है। गुरु धातुगण गुरु-गुण के आहार-विहार के अभ्यास से बढ़ते हैं और लघु धातुसमूह ह्रास को प्राप्त होते हैं। लघु धातुसमूह लघु गुण आहार-विहार से वृद्धि को प्राप्त होते हैं और गुरु धातु समूह ह्रास को प्राप्त होते हैं। मांस से मांस, रक्त से रक्त, मेद से मेद, मज्जा से मज्जा, शुक्र से शुक्र, आमगर्भ अण्डे से गर्भ की, दूध से जलतत्व प्रधान कफ की, दूध के साररूप घी से रसादि के सार रूप शुक्र की, जीवन्ती, काकोली आदि सोमात्मक वनस्पतियों से सोमात्मक कफ प्रधान स्नेहशक्ति-पुरुषत्व ओज आदि की, तथा मिर्च, चव्य, चित्रक आदि से बुद्धि-

मेधा और अग्नि की वृद्धि होती है। ये द्रव्य द्वारा वृद्धि के उदाहरण हुए। खजूर-छुहारा आदि पृथ्वीतत्वप्रधान होते हुए भी अपने गुणों—स्निग्ध, जड़, शीतादि गुण विशिष्ट होने से इसी गुण के जलतत्व प्रधान कफ को बढ़ाते हैं। यह गुण सम्बन्धी उदाहरण हुआ। क्रिया शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की होती है—दौड़ना-कूदना, चलना आदि शारीरिक क्रिया और काम-क्रोध-शोक-चिन्ता आदि मानसिक क्रिया है। दौड़ना धूपना गतिमान-क्रिया हैं। इनसे गतिमान वायु की वृद्धि होती है। काम-शोक-चिन्ता मानसिक क्षोभजनक होने से भी वायु बढ़ता है। क्रोध-ईर्षा सन्तापजनक हैं, अतएव इनसे पित्त की वृद्धि होती है। निद्रा, आलस्य, मन्द क्रिया वाले काम हैं इसलिये इनसे मन्दक्रिया वाले कफ की वृद्धि होती है। वातात्मक फसही के चावल से पार्थिव मांसादि का क्षय होता है, अग्नितत्त्व प्रधान क्षारों से जल-तत्त्व प्रधान कफ का क्षय होता है। कांजी या सिरका स्वयं जलतत्त्व प्रधान होने पर भी कफ के विरुद्ध लघु-रुक्ष-उष्ण होने से कफ का क्षय करते हैं। निद्रा, आलस आदि स्थिर क्रिया होने से गतिक्रिया वाले वायु का क्षय करते हैं। शुक्र-क्षय होने पर दूध, घी तथा मधुर और स्निग्ध पदार्थ लेवे। मूत्र क्षय पर ऊख का रस, वारुणी, मण्ड, मधुर-अम्ल-लवण रस और क्लेदजनक द्रव्य लेवे। पुरीषक्षय होने पर कुलथी, चौंग, उड़द, जव, शाक तथा धान्याम्ल लेवे। द्रव्यसमूह २० गुणवाले होने पर भी तीन श्रेणी के होते हैं। कोई द्रव्य अपने गुणों से दोष धातु आदि का शमन करते हैं। कोई प्रकोप करते हैं और कोई स्वास्थ्य-साधन करते हैं। संक्षेप से यह गुणों का विवरण हुआ।

गुणों की कार्यविधि—द्रव्यों में गुण का होना अनिवार्य है। द्रव्य और गुण अलग-अलग नहीं किये जा सकते। द्रव्य का द्रव्यत्व गुणों के समवायु-पृथक् न होने वाले नित्य सम्बन्ध के साथ रहता है। पदार्थों में गुण और कर्म का मिले रहना समवायि-कारण कहलाता है। द्रव्य आधार है और गुण उसके आश्रित हैं। आधार और आधेय में जो अपृथक् भाव होता है, वह समवाय-सम्बन्ध कहलाता है। इस हिसाब से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध अर्थ भी पदार्थ के गुण और समवायि हैं; किन्तु ये अविनाशी हैं, पदार्थ के होने पर भी इनका नाश नहीं होगा। ऊपर द्रव्य के जो २० गुण बतलाये गये हैं, वे द्रव्य के सामान्य गुण हैं। पदार्थ का स्थूल रूप नष्ट होने पर भी इनकी विद्यमानता रह सकती है। क्वाथ और अर्क करने पर पदार्थ का पदार्थत्व नष्ट हो जाता है; किन्तु उसके गुण क्वाथ और अर्क में आ जाते हैं। इसी तरह पदार्थ जलाकर क्षार

बनाने पर भी उसके मुख्य गुण बने रहते हैं। उक्त बीस गुणों के अतिरिक्त सेन्द्रिय सजीव पदार्थों में बुद्धि, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न गुण भी पाये जाते हैं। ये द्रव्य के **विशेष गुण** हैं। बुद्धि के अन्तर्गत स्मृति, चेतना, धृति, और अहंकार का भी समावेश होता है। इनके अतिरिक्त पर, अपर, युक्ति, संख्या, संयोग विभाग, पृथकत्व, परिमाण, संस्कार और अभ्यास भी गुण रूप से रहते हैं, ये **परादि गुण** कहलाते हैं। इनकी उपयोगिता और उपयुक्तता-विशेष न होने से ये गौण गुण समझे जाने चाहिए। प्रयत्न और चेष्टा यह पदार्थ के कर्म हैं। इनका भी अन्तर्भाव गुणों के समान ही द्रव्य में रहता है। पदार्थ के कार्य संयोग और वियोग में कारणीभूत हैं और द्रव्य के आश्रय हैं।

जीवधारियों का जीवनक्रम द्रव्यों के द्वारा ही चलता है, अतएव द्रव्यों का उनसे घनिष्ट सम्बन्ध है। ये द्रव्य आहारादि के द्वारा मनुष्य शरीर में जाकर अपना प्रभाव उत्पन्न करते हैं। ऊपर लिखे गुरु-लघु-शीत-ऊष्णादि गुणों का असर जीवधारियों में द्रव्य के द्रव्यत्व प्रभाव से, कुछ गुण-प्रभाव से और कुछ द्रव्य तथा गुण दोनों के प्रभाव से कार्यकारी होते हैं। जैसे दन्ती से विरेचन होता है और मणियों के धारण से विष-प्रभाव क्षीण पड़ता है, यह द्रव्य का प्रभाव हुआ। इसी तरह कटुरस से ज्वर की शान्ति होती है और अग्नि की ऊष्णता से शीत का नाश होता है, यह पदार्थों का गुण प्रभाव है। इसी तरह काले मृग का चर्म शरीर में ऊष्णता बढ़ाने और विद्युत् शक्ति दौड़ने में सहायक होता है, यहाँ कालापन गुण और चर्म द्रव्य है। यहाँ जो प्रभाव हुआ वह द्रव्य और गुण दोनों के संयुक्त प्रभाव से हुआ। पदार्थों का प्रभाव प्रकट करने की कार्यविधि काल, कर्म, वीर्य अधिकरण और उपाय के अधीन विशेष रूप से रहती है। कुछ द्रव्यों में समय और ऋतु के अनुसार गुणों की विशेषता देखी जाती है। शरद् ऋतु में सम्पूर्ण जड़ी-बूटी अपने रस-वीर्य-प्रभाव से पूर्ण हो जाती हैं। वमन-विरेचन के द्रव्य ग्रीष्म-ऋतु में लाने से उनमें क्रिया-शक्ति अधिक रहती है। ग्रीष्म-ऋतु में वनस्पतियों की मंजरी में रसादि का वास रहता है, वर्षा में उनके पत्तों में, वसन्त में जड़ों में, शरद् और ग्रीष्म में गोंद में, हेमन्त में सार में प्रभावशक्ति अधिक रहती है। इसी तरह वर्षा में वस्ति देना, वसन्त में वमन कराना, शरद में विरेचन देना, शीत में वृष्ययोग, ग्रीष्म में स्नेहन कर्म कराना, यह काल सम्बन्धी कार्यविधि है। किसी पदार्थ को किस विधि से दिया जाय तो वह अधिक गुणकारी होती है, इस विचार

को **कर्म** कहते हैं। जैसे नस्य देकर बलगम निकालने से शिरोविरेचन का कर्म सिद्ध होता है। कोई पदार्थ अपने शीत उष्णादि के गुण के द्वारा जो कार्य करते हैं, वह उनका **वीर्य** कहलाता है। द्रव्य जिस देश-भूमि-पात्र अथवा देह के भाग-विशेष में प्रयुक्त होने से कार्य-सामर्थ्य दिखलाते हैं, उस विधि को **अधिकरण** कहते हैं। जैसे विन्ध्याचल की औषधियाँ ऊष्ण वीर्य और हिमालय की शीतवीर्य होती हैं। अथवा शिरोविरेचन का अधिकरण मस्तक और वमन का अधिकरण फुफ्फुस, विरेचन का अधिकरण आन्त्र हैं। औषधि-द्रव्य जिस रीति या विधान से स्वरस-काढ़ा-क्षार आदि उपाय से दिये जाते अथवा औषधि प्रयोग लिटाकर या बैठे हुए आदि विधि से कराये जाते हैं, उसे **उपाय** कहते हैं। इन सब विधियों से उस द्रव्य का शरीर पर जो परिणाम होता है, उसे **फल** कहते हैं।

इसके पश्चात् षड्रस-विज्ञान, त्रिदोष-विज्ञान, धातु और मलपरिज्ञान और रसशास्त्र के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी दी गयी है और उपसंहार कर विषय प्रतिपादन और वर्तमान समय की आवश्यकता का वर्णन है।

उपसंहार—पश्चिमी विज्ञान में अभी अस्थिरता बहुत है, पहले मौलिक पदार्थों की संख्या थोड़ी थी, किन्तु अब बढ़कर ६२ तक पहुँची है। स्थिर सिद्धान्त न होने से वह बढ़ती ही जा सकती है, या नीचे भी उतर सकती है। जिन्हें १० वर्ष पहले अमिश्र पदार्थ कहते थे, उन्हें अब मिश्र कहा जा रहा है, एक जिन्हें मूल पदार्थ कहता है, दूसरा उसका विश्लेषण कर मिश्र पदार्थ बनाता है। पहले आक्सिजन को अम्लोत्पादन का मूल समझा जाता था; किन्तु अब सिद्ध हुआ है कि बिना आक्सिजन की भी कई एसिड हैं। खैर, और अनुभवों का तो अन्त नहीं है, किन्तु यदि पञ्चतन्मात्रा को आजकल का विज्ञान स्वीकार कर ले तो सिद्धान्तों में स्थिरता सम्भवतः आ जाय। **तन्मात्र** शब्द में परमाणु सदृश सूक्ष्म अमिश्र पदार्थ का बोध होता ही है। अत्यन्त सूक्ष्म अवयवहीन अथ च परम्परा में सबका अवयव और सभी सूक्ष्म पदार्थ की अन्तिम सीमा स्वरूप ये तन्मात्र हैं, परमाणु हैं। पदार्थों का भाग करते-करते जब ऐसी स्थिति उपस्थित हो कि और भाग न हो सकें तब उसे परमाणु कहते हैं, तन्मात्र भी ऐसे ही परमाणु हैं। दो परमाणुओं के संयोग को अणु और तीन के संयोग को त्रसरेणु कहते हैं। इसी प्रकार पञ्च-तन्मान्त्र के पञ्च परमाणु द्वारा पञ्चभूत उत्पन्न होते हैं। इस सिद्धान्त को प्राचीन रसशास्त्रियों ने भी स्वीकार किया है। आक्सिजन का आविष्कार

हमारे पारद संस्कार से ही हुआ है। रसाचार्यों ने यह तो देखा कि पारद को बन्द पात्र में रख, उत्ताप देने से उसका कुछ अंश लाल कण रूप में नली या शीशी में (रेड आक्साइड आफ मर्करी) लग जाता है। इसी से उन्होंने बालुकायन्त्र, चन्द्रोदय-मकरध्वज-रससिन्दूर आदि की खोज की। वे यह भी जानते थे कि इसी क्रिया में बन्द शीशी का वायु घट जाता है और अधिक ताप से उत्पन्न उस वाष्प में दहन क्रिया आती है, यह सब मकरध्वज की तैयारी में परीक्षा द्वारा जाना भी जाता है। मकरध्वज की शीशी में जब लोहे की शलाका डालने से वह जल उठती और नील शिखा देती है, तब जाना जाता है कि मकरध्वज तैयार हो गया। यही तो आक्सिजन है। किन्तु उनका ध्यान औषधि की ओर था, वायु या गैस की ओर नहीं था, किन्तु मकरध्वज के गुण में इस वाष्प की भी क्रिया काम करती है यह शायद वे समझ गये थे। जो हो, इसी ढंग की पारद की प्रक्रिया में लाबोजियेई ने आक्सिजन का आविष्कार किया। किन्तु यह नाम अब भ्रमजनक हो रहा है। क्योंकि Oxus का अर्थ अम्ल और gen का अर्थ उत्पन्न करना है। परन्तु अब तो यह भ्रान्तिमूलक सिद्ध हो रहा है। प्राचीन रासायनिक जानते थे कि पञ्चमहाभूत मूल पदार्थ हैं और वायु से ही अन्य भूतों की जब उत्पत्ति होती है, तब वायु के सिवाय पदार्थ रह ही नहीं सकते। आकाश और वायु के संघर्ष से ताप का उद्भव होता है, अतएव संसार के सभी पदार्थों में कम अधिक विद्यमान हैं। यही नहीं वायु और अग्नि के योग से जल की उत्पत्ति है और जल से ही ताप और वाष्प की उत्पत्ति प्रत्यक्ष होती है, तब जल के बिना भी कोई पदार्थ रह नहीं सकता। इसी ज्ञान पर रसाचार्यों के संस्कार-शोधन-स्वेदन-भावना-मारण आदि क्रियाओं का आधार था।

अणुसंघात के सिद्धान्त को जैनदर्शन भी स्वीकार करता है—"अण्वादीनां संघाताद् द्व्यणुकादय उत्पद्यन्ते। तत्र स्वावस्थिताकृष्टशक्तिरेवाद्य संयोगे कारणभावमापद्यते।।" अर्थात् अणु समूह के परस्पर संघात से द्वि अणु और त्रसरेणु आदि उत्पन्न हुए, फिर उन्होंने आकाश-मार्ग में विस्तार लाभ किया, जिससे उन्हें क्रमशः घनत्व और जगद्व्यापकत्व प्राप्त हुआ। अन्त में उनके बीच मध्यस्थ आकर्षण शक्ति ने ही आद्य संयोग से कारणता प्राप्त की। इसके द्वारा एक जगद्व्यापी आणविक आकर्षण शक्ति का परिचय मिलता है। इस घनीभूत अणु समूह की गति तथा वायु के द्रुतगमन और संघर्षणजन्य तेज से जल और जल से पृथ्वी की सृष्टि सूचित होती है।

इसके पश्चात् मध्याकर्षण सूत्र का अवलम्बन कर रासायनिक जगत् का भी रहस्योद्घाटन हो सकता है। मध्यार्षकण से महाकाश और पृथ्वी के बीच का आकर्षण साधारणतः समझा जाता है; किन्तु हमारे शरीर में भी जैसे प्राण और अपान का आकर्षण शरीर को खड़ा रखता है, उसी प्रकार संसार के समस्त पदार्थों को भी यह आकर्षण बाँधे रहता है। असंख्य परमाणु आकर्षण की खींचातान से संयुक्त रहते हैं और जब उनमें आकर्षणसंघात विच्छिन्न होता है, तब उनका लय भी हो जाता है। इस परमाणु समष्टि तक नये पुराने विज्ञान का मेल खाने योग्य अवस्था पहुँच सकती है। सबसे अधिक उत्तरदायित्व भारतीयों का है, उन्हें अपने ढंग पर अपने विज्ञान और रसायनशास्त्र को सामने लाकर उसे उन्नति की ओर ले चलने का प्रयत्न करना चाहिए। हमारा जो था, उसका अभिमान तो आवश्यक है; किन्तु यह बना रहे और आगे अधिक विज्ञान-सम्पत्ति भारतीय कोष में भरती रहे, इसका ध्यान भी आवश्यक है। जिस वैज्ञानिक सत्य की सुदृढ़ नींव पर यह स्थित है, उससे इसकी चरम उन्नति सर्वथा सम्भवनीय और करणीय है। विज्ञान का अर्थ ही है विशेष ज्ञान। विशेष ज्ञान या विशेष रूप से किसी विद्या को जानना, सदा स्थूल बुद्धि के परे होना चाहिए। स्थूलज्ञान से स्थूल पदार्थों की क्रियाकलाप का बोध हो सकता है, सूक्ष्म ज्ञान के बिना सूक्ष्म तत्त्व का जानना शक्य नहीं। तथापि सूक्ष्म ज्ञान के लिए स्थूल ज्ञान प्रारम्भिक ककहरा तो हो ही सकता है।

विज्ञान का दारमदार पदार्थों पर निर्भर है और पदार्थ प्रकृति के परिणत अंश हैं। इससे बहुत ऊँचे सूक्ष्म ज्ञान में जाकर इसका मूल मिलता है। सृष्टिरचना का क्रम ध्यान में रख विचार करें तो मालूम पड़ेगा कि आत्मा ज्योतिर्मय, चैतन्यस्वरूप, नित्य, निस्पृह और निर्गुण है, किन्तु प्रकृति के सहयोग से सगुण और सक्रिय होकर जगत् की सृष्टि करता है। सत्व-रज-तम—त्रिगुण प्रकृति में समभाव से रहते हैं। प्रकृति स्वयं जड़ भावापन्न या जड़ है, किन्तु परमात्मा-अव्यय-चैतन्य के सहयोग से सृष्टिकर्त्री होती है। इसी से प्रकृति को शक्ति, नित्या और अविकृति भी कहते हैं। यह प्रकृति प्रधान पुरुष का आश्रय लेकर ही रह सकती है। परमात्मा और प्रकृति दोनों निर्गुण और निष्क्रिय हैं, किन्तु दोनों का मिलन होने से दोनों सगुण और सक्रिय हो जाते हैं। जीव देह में आत्मा का संयोग होने पर ही वह सचल और सक्रिय होती है, अन्यथा मृतदेह-अचल निष्क्रिय है। देह-जगत् के

समान वाह्य-जगत् भी आत्मा के संयोग और सहयोग से सक्रिय होता है। वह अव्यक्त, स्वयं कारणहीन होने पर भी सम्पूर्ण जीवों का कारण है और सत्व-रज-तम गुणत्रय के लक्षण विशिष्ट हैं। अष्ट रूप विशिष्ट और अखिल जगत् की उत्पत्ति का हेतु है। जैसे समुद्र सम्पूर्ण जल का आश्रय है, उसी तरह यह अव्यक्त असंख्य क्षेत्रज्ञों का आश्रय है। इसी अव्यक्त से अव्यक्त लक्षण विशिष्ट महत्तत्व की उत्पत्ति होती है और उसी महत्तत्व से महत्तत्व का लक्षणविशिष्ट अहंकार उत्पन्न होता है। यह अहंकार वैकारिक, तैजस् और भूतादि तीन प्रकार का है। तैजस् सहयोग वैकारिक अहंकार के द्वारा अहंकार के लक्षण विशिष्ट पञ्चज्ञानेन्द्रिय। पञ्च कर्मेन्द्रिय + मन संयुक्त एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। मन उभय इन्द्रियात्मक है। तैजस् अहंकार के सहयोग से भूतादि अहंकार द्वारा भूतादि अहंकार विशिष्ट पञ्चतन्मात्र उत्पन्न होते हैं। उन पञ्चतन्मात्रों के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुण हैं, उन्हीं पञ्चतन्मात्राओं में यथाक्रम आकाश-वायु-अग्नि-जल और पृथ्वी पञ्चभूत की सृष्टि हुई। इस प्रकार पञ्च विषय के अर्थ पञ्चज्ञानेन्द्रिय + पञ्चकर्मेन्द्रिय + पञ्च तन्मात्र, और ३ अव्यक्त-महान् अहंकार मिलकर ८ प्रकृति, और एक मन मिलकर २४ तत्त्व हुए। इन २४ तत्त्वों की सृष्टि अचेतन है। उसमें कार्य-कारण प्रयुक्त परमात्मारूपी पचीसवें सचेतन तत्त्व के मिलने से चेतनता आती है। प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि लक्षणहीन, नित्य, सब में श्रेष्ठ और सर्वगत हैं। प्रकृति अकेली, अचेतन, निर्गुण बीजधर्मिणी, प्रसवधर्मिणी और अमध्यस्थ-धर्मिणी है। पुरुष बहुत हैं, चेतना विशिष्ट, निर्गुण, अबीजधर्मी, अप्रसवधर्मी और अमध्यस्थधर्मी हैं। कारण के अनुरूप कार्य होता है, अतएव जगत् के सम्पूर्ण पदार्थ सत्व-रज-तममय हैं। तन्मय, तद्गुण और तद्लक्षण विशिष्ट असंख्य भूतग्राम प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। ये भूतग्राम ही चिकित्सा के विषय हैं। यहीं से भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, कृषिविज्ञान आदि का अलग स्रोत बहता है। यहाँ से सूक्ष्म तक पहुँचने पर ही नये-पुराने विज्ञान का मेल होगा और यह संगमजन्य वृहत् धारा मानवजगत् का और भी अधिक कल्याण साधन कर सकेगी।

विज्ञान की देन

गत शताब्दी के भीतर विज्ञान ने जो चामत्कारिक उन्नति की है और उस उन्नति से जो भौतिक उपकार हुआ है, उससे विज्ञान के साथ हमारे

जीवन का निकट सम्बन्ध बढ़ गया है और बढ़ता जा रहा है। उसने जड़ और शक्तिसम्पन्न चैतन्य को एकदम अलग कर दिया है। आधुनिक विज्ञान के नवयुग के प्रारम्भ में (गैलिलियों के समय) शक्ति के सम्बन्ध में अस्पष्ट धारणा थी। ऊष्णता, प्रकाश, विद्युत् आदि की शक्ति के भिन्न रूप समझने में कुछ समय लगा। गति और उत्ताप को शक्ति, शब्द और ताप का द्रव्य-परमाणु के स्पन्दन से सम्बन्ध, शब्द का परमाणु स्पन्दन से सम्बन्ध, विद्युत् और चुम्बक शक्ति का सामीप्य, प्रकाश का ईथर के विद्युत् चुम्बकत्व शक्ति से उत्पत्ति का सम्बन्ध—इन सबका परस्पर सम्बन्ध समझकर विज्ञान ने जो क्रान्ति की है, उससे भौतिक उन्नति में बहुत सहायता मिली है। वस्तुविकीर्ण-शक्ति और प्रकाश की सहायता से वाह्यजगत् की जानकारी अधिक हुई है। रश्मि सप्तक के आलोक-ज्ञान से चिकित्सा-जगत् भी लाभवान हुआ है। महाभारत में जब हम पढ़ते थे कि सञ्जय को बादरायण व्यास की बतायी युक्ति या उनकी दी हुई शक्ति से हस्तिनापुर में बैठे हुए महाभारत का दृश्य दिखता था और वहाँ के कथोपकथन सुनायी पड़ते थे, तब हमें आश्चर्य होता था; किन्तु आज आलोक-शक्ति और रेडियो ने उसे बहुत कुछ विश्वास योग्य बना दिया है। बौद्धग्रन्थों से मालूम पड़ता है कि जीवक वैद्य के पास ऐसा यन्त्र था जिसको शरीर पर लगाने से शरीर के भीतर के भाग दिखते थे। हो सकता है, उन्हें एक्सरे के समान किसी किरण का पता रहा हो। पुराणों में लिखा है कि दूर बैठे ऋषि लोग परस्पर बात कर लेते थे, भूत-भविष्य की घटनाएँ देख लेते थे, यह चाहे योग-शक्ति से ही होता रहा हो; किन्तु तार और टेलीफोन ने उसके निकट पहुँचने का उपक्रम किया है। इसने इस धारणा को जन्म दिया है कि रासायनिक द्रव्य दृश्यालोक की अपेक्षा सूक्ष्मतर तरङ्ग-रश्मि को नीचे ठेलकर दृष्टिपथ में लाते है। कौन जाने, ऋषियों की दिव्यदृष्टि या चक्षुज्ञान में माइक्रोस्कोप की तरह कोई यन्त्र था या नहीं। ऋषियों का त्रिकालदर्शन टेलिस्कोप के सहारे होता रहा हो तो कौन आश्चर्य ! बाराहमिहिर ने यन्त्र-सहायता से तीनों काल में खगोल देखने की बात लिखी भी। एक्सकिरणों की भेदकारी शक्ति भी हमें चमत्कृत कर रही है। रेडियम की गामारश्मि की सूक्ष्मता और व्योमरश्मि (कास्मिक रे) की एक्सकिरणों से भी शक्ति-सम्पन्न था आश्चर्यजनक है। ग्रहों की गति, उनकी शक्ति, उनके प्रभाव का हमारे जगत् में पड़ने वाले प्रभाव आदि को जानकर तिथि निश्चय तथा ग्रहण आदि की घटना पहले

ही बता देने के कारण ज्योतिष का हमारा निकट सम्बन्ध बहुत पुराने समय से हो रहा है। किन्तु अब अरिस्टाइल प्रभृति के सिद्धान्त-ज्ञान ने पृथ्वी पर ग्रहों के आलोक पहुँचने का रहस्य भी खोल दिया है। जैसे शब्द, वायु में परिचालित होकर कानों तक पहुँचता है, उसी तरह आलोक भी निकल कर विशेष द्रव्य की सहायता से बहता हुआ नेत्रों को स्पर्श करता और हमें दिखता है। अब तो यह भी जाना गया है कि आलोक की गति प्रति सेकण्ड १ लाख ६६ हजार मील के अन्दाज है। रामायण-महाभारत के युद्धों में अग्निबाण, वरुणबाण, वायुबाण आदि के चमत्कार पढ़ने को मिलते हैं। आज के युद्ध के बम, विषाक्त और रुलानेवाली गैस, धुएँ के बादल आदि का प्रत्यक्ष उपयोग देख उसकी सत्यता सिद्ध हो रही है। पुष्पक विमान और देवताओं के व्योमयानों की कथा एक पहेली ही थी। किन्तु आज के हवाई जहाजों ने उसे सर्वसम्मत विषय बना दिया है और राष्ट्रों की भलाई-बुराई बहुत कुछ उन पर ही निर्भर दिखती है। रावण ने अग्नि और प्रकाश को वश में कर रखा था, उसे भाप और विद्युत् की शक्ति से होने वाले चामत्कारिक कार्यों ने समझने योग्य बना दिया है। वजन या भार के सम्बन्ध में भी आधुनिक विज्ञान ने जो प्रकाश डाला है, उससे हमारा निकट सम्बन्ध है। एक मनुष्य समस्त जीवन में जिस शक्ति का व्यय करता है, उसका वजन ढाई तोले के ६० भाग का एक भाग होता है। जड़ वस्तु का भार स्थायी और नित्य है; किन्तु किसी वस्तु से शक्ति निकलने पर उसका भार घटता है। किसी वस्तु के जलने से उससे जो ताप या आलोक बाहर होता है, उससे उसका कुछ वजन घटता है। भारतीय प्राचीन सिद्धान्त की इससे पुष्टि होती है।

आधुनिक विज्ञान ने जो कीटाणुशास्त्र का ज्ञानवर्धन किया है, उससे चिकित्सा-क्षेत्र में हलचल मच गयी है; किन्तु भारतीयों के लिए इसमें कोई आश्चर्य या नवीनता की बात नहीं है। हाँ, उससे विस्तृत प्रकरण से आत्म-पुष्टि की प्रसन्नता अवश्य है। आयुर्वेद यह मानता है कि वायुमण्डल में और जल में अनेक प्रकार के कीटाणु रहते हैं। इसी तरह उसे यह भी विदित है कि हमारे शरीर में भी अनेक प्रकार के कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं या पहुँच जाते हैं। मल, मूत्र, रक्त तथा कफ में कीटाणु आश्रय कर रह सकते हैं। उसमें बीस प्रकार के कृमि का श्रमसंस्कार भी किया गया है। कहा है—"कृमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः। बहिर्मल कफाऽसृग् विट् जन्मभेदाच्चतुर्विधः। नामतो विंशति विधा......

इस प्रकार वाह्यमल अर्थात् भूमिविकृति, जल विकृति, वायु विकृति, और शरीर मल के कारण होने वाले वाह्य कृमि होते हैं। आभ्यन्तर कृमि कफ (शरीर के सम्पूर्ण द्रवांश और क्लेदांश), रक्त और विट् (शरीरस्थ मल-मूत्र आदि मलिनीभूत अंश) में उत्पन्न होते हैं या बाहर से पहुँच कर शरीर में आश्रय पाते हैं। इस तरह तीन प्रकार के मिलकर जन्म भेद के कारण चार प्रकार के कृमि-कीटाणु माने गये हैं। यही नहीं, यह भी कहा गया है कि इनमें कुछ दृश्य होते हैं अर्थात् नेत्रों से दिखाई पड़ते हैं और कुछ अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण अदृश्य होते हैं—"केचिद् दृश्या केचिद् अदृश्याः"। प्राचीन आयुर्वेदज्ञ किसी साधन से (जिसका वर्णन इस समय नहीं मिलता) अदृश्य कृमि-कीटाणुओं को देखते भी थे। क्योंकि उन्होंने लिखा है कि वे—"अपादावृत्तताम्राश्च सौक्ष्यात्-चिद् अदर्शनाः" यह वर्णन आजकल के वर्णन से मिलता-जुलता है। सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र से देखकर आजकल के वैज्ञानिक कहते हैं, इन कीटाणुओं में हाथ-पैर आदि कोई शरीरांग नहीं होते। वे विन्दु के समान सूक्ष्माकार के होते हैं, उसी विन्दु रूप में कोई पाई (।) के समान, कोई कामा (,) के समान, कोई फुलस्टाप (.) के समान होते हैं। अथर्ववेद में लिखा है कि अदृश्य कृमि नाक के द्वारा और मुख के द्वारा शरीर के भीतर पहुँचते हैं। कोई समानरूप, भिन्न रूप, कोई काले, कोई लाल, काले दागवाले, लाल दागवाले, काली भुजावाले, तीन शिरवाले, कोई चित्रवर्ण भूरे सफेद आदि होते हैं। आयुर्वेदज्ञों ने यहाँ तक जाना था कि कुष्ठ, कई प्रकार के ज्वर (मलेरिया, न्यूमोनिया, टाईफाइड आदि), क्षय, नेत्र-रोग, प्रतिश्याय, गर्मी, सुजाक, कालरा, प्लेग आदि संक्रामक या औपसर्गिक रोग आदि में ये कीटाणु पाये जाते हैं और इन कीटाणुओं का संक्रमण एक मनुष्य से दूसरे में भी हो जाता है—"प्रसंगात् गात्रसंस्पर्शात् निःश्वासात् सहभोजनात्। सहशैयासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्। औपसर्गिक रोगांश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्"। इस प्रकार उनके संक्रमण की विधि और कारण भी बताये गये हैं—"कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च, नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिक-रोगांश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्।" प्राचीन वैदिक-साहित्य में भी इस सम्बन्ध की बहुत-सी बातें हैं। सूर्य की दो प्रकार की किरणें हैं—एक जल का शोषण करती हैं, दूसरी प्रकाश देती हैं (श्वेताश्वतर)। उदय होते हुए सूर्य की किरणें लाखों कीटाणुओं का संहार करती हैं। दृश्य और अदृश्य द्योतक राक्षस कीटाणुओं को पूर्व से उदय होता हुआ सूर्य नष्ट करता है। राजयक्ष्मा के

रोगी के लिए समुद्रतट का वायु बलवर्द्धक और पर्वतीय वायु रोग-नाशक कहा गया है; क्योंकि इनके प्रभाव से क्षय के कीटाणु नष्ट होते हैं। वायु को भेषज रूपी जीवनीशक्ति प्रदान करने वाला कहा गया है—(अथर्ववेद)। इतना होने पर भी आजकल के वैज्ञानिक इन कीटाणुओं को रोगोत्पत्ति का आदि कारण मानते हैं। **इसे आयुर्वेद स्वीकार नहीं करता। रोगोत्पत्ति का कारण तो वात-पित्त-कफ के प्रकोप से शारीरिक विकृति ही है।** शारीरिक विकृति हुए बिना शरीर में कीटाणुओं की उत्पत्ति नहीं हो सकती और यदि हो भी तो अविकृत शुद्ध शरीर में वे अपना प्रभाव प्रकट नहीं कर सकते। इसलिए कीटाणु रोगोत्पत्ति के मूल कारण नहीं, विकृति होने पर वे रोग के सहायक कारण हो सकते हैं। किस प्रकार के शरीर में कीटाणुओं को सहारा मिलता है, इसे भी आयुर्वेद बतलाता है—"अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो, द्रवप्रियः मिष्ट गुणोपभोक्ता। व्यायामवर्जी च दिवाशयानो, विरुद्धभुक् संलभते क्रमीश्च।" सारांश यह कि आहार-विहार के दोष और गर्मी-सर्दी आदि के आगन्तुक कारणों से वात-पित्त-कफ की विकृति से कीटाणुओं को शरीर में आश्रय मिलता है। उन्हें नष्ट करने के लिए इन्जेक्शन द्वारा शरीर में विष पहुँचाने के बदले दोष-विकृति दूर कर शरीर में रोग प्रतिरोधक शक्ति की वृद्धि करना अधिक श्रेयस्कर है। इन्जेकशन से कीटाणु समूल नष्ट नहीं होते। वे कुछ दिनों के लिये क्रियाहीन हो जाते हैं और दोषविकृति बनी रहने से उनका फिर आक्रमण हो सकता है। इसलिए दोष और प्रकृतिसाम्य ही कीटाणुओं का ठीक उपाय है। इस प्रकार यहाँ केवल दिग्दर्शन-मात्र कराया है। भिन्न-भिन्न रोगों के प्रकरण में आयुर्वेद में इनका और भी वर्णन है; किन्तु आधुनिक विज्ञान के द्वारा इस विषय में बहुत अधिक प्रकाश पड़ा है – उनके आकार-प्रकार, कार्य-विधि, वंशविस्तार आदि का विस्तृत वर्णन प्राप्त हो सका है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के द्वारा उन्हें देखना सम्भव हुआ है। इस ज्ञान-विस्तार में विज्ञान की सहायता सराहनीय है। आशा है, आगे चलकर वैज्ञानिक लोग यह आग्रह भी छोड़ देंगे कि ये रोगोत्पत्ति के मूल कारण हैं। यह तो वैज्ञानिक मानने भी लगे हैं कि सभी प्रकार के कीटाणु रोगोत्पादन नहीं करते। ये यह भी स्वीकार करने लगे हैं कि सभी मनुष्यों में उनका असर एक-सा नहीं होता। विज्ञान में आग्रह को स्थान नहीं।

शस्त्रक्रिया के क्षेत्र में भी वर्तमान विज्ञान ने चामत्कारिक स्थिति उत्पन्न की है। अवश्य ही विज्ञान की यह देन महत्त्वपूर्ण है। किन्तु साथ ही हममें

यह विचार उठता है कि पुराने समय में आयुर्वेद ने इसमें जितनी उन्नति की थी, यदि वह परम्परा अनेक कारणों से दो-ढाई हजार वर्षों से रुक न गयी होती और राजकीय सहायता, जैसी आजकल पाश्चिमी विज्ञान को सुलभ है, वैसी ही उसे मिलती जाती तो इस क्षेत्र में और भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई होती। हार्वे से सैकड़ों वर्ष पहले आर्य वैद्य जानते थे कि रक्त किस प्रकार बनता है, यकृत और प्लीहा में किस प्रकार क्रिया होकर उसमें लालिमा आती है, किस प्रकार हृदय और फुप्फुस तथा सारे शरीर में उसका परिभ्रमण होता है। वे कटे पाँवों की जगह लोहे के नकली पाँव लगा सकते थे, नासासंधान कर सकते थे, कटे सिर जोड़ सकते थे, आश्चर्यजनक नेत्र चिकित्सा कर शस्त्रक्रिया में सफलता लाभ करते थे। मूढ़ गर्भ जैसी आजकल भी कठिन समझी जानेवाली शस्त्रक्रिया करते थे, पथरी निकालते और उसे भीतर ही गला सकते और चूर्ण कर सकते थे, दाँत उखाड़ने और दूसरे दाँत लगा सकते थे। शस्त्रकर्म में लगनेवाले साधारणतः १०१ यन्त्रों का उपयोग करते थे। पश्चिमी विद्वान् यह जानकर दङ्ग रह जाते हैं कि उनके शस्त्रों की धार इतनी तेज और बारीक होती थी कि बाल लम्बा चीरा जा सकता था। बीस प्रकार के नाड़ी यन्त्र, अट्ठाईस प्रकार के शलाका यन्त्र, २५ प्रकार के स्वस्तिकयन्त्र, सन्देशयन्त्र और तालयन्त्र, चिमटी, सँडसी आदि का उपयोग करते थे। हमारे लिए यह अभिमान का कारण है कि पश्चिमी चिकित्सकों ने उनमें से अधिकांश को ज्यों का त्यों ग्रहण किया है और बहुतों के तो नामों का भी उसी तरह अनुवाद कर लिया है। प्राचीन वस्तियन्त्र को चमड़े के बदले धातु का बनाकर ज्यों का त्यों ले लिया गया है। दाँत बैठ जाने पर मुँह खोलने का यन्त्र, योनिव्रणेक्षणयन्त्र, गर्भाशय द्वार बढ़ाकर देखने का (Dilator) यन्त्र, गले के शल्य निकालने के यन्त्रों का उपयोग ग्रहण किया गया है। घाव बाँधने की १४ प्रकार की पट्टियों का सहारा भी लिया गया है। यूरोप के यूनान देश में पहलेपहल सन् ईस्वी के ३०० वर्ष पहले हीरोफाइलस ने मुर्दे की चीर-फाड़ कर शरीर निरीक्षण किया। इसके सैकड़ों वर्ष पहले धन्वन्तरि और सुश्रुत के जमाने में शवच्छेद कर शरीरावयवों का परिचय प्राप्त किया जाता था और शस्त्रक्रिया में अभ्यास कराया जाता था; किन्तु आज भारतीय वैद्यों के सामने यह एक समस्या रूप से वर्तमान है, जिसे उन्हें वर्तमान ज्ञानलोक में हल करना है। इस समय भी परस्पर ज्ञान के आदान-प्रदान से बहुत लाभ हो सकता है। भारतीय वैद्यों को इस भूले

हुए शस्त्रकर्म को पुनः आरम्भ करना है और परस्पर ज्ञान के आदान-प्रदान से वैज्ञानिक उन्नति में प्रयत्नशील होना है। जितना ज्ञान सुश्रुतादि ग्रन्थों में है, उसे अपनाकर अभ्यास में लाना है और इस समय की प्रगति का अभ्यास और उपयोग कर अपनी शस्त्रचिकित्सा को पूर्ण करना है। पश्चिमी विद्वानों को भी अभी सुश्रुतादि से बहुत कुछ ज्ञानवर्धन की सामग्री मिल सकती है।

नाड़ी-परीक्षा भारतीय वैद्यों की निज की वस्तु है और नाड़ी-परीक्षा, जिह्वा-मल-मूत्र-त्वचा-दन्त-नख-स्वर आदि की सहायता से रोग निर्णय कर चिकित्सा करने की भारतीय विधि सर्वदा और सर्वथा सफल होती आयी है।

भारत से सन्-ईस्वी के चार-पाँच सौ वर्ष पहले यह विद्या पैथागोरस, टीसियस या हिपोक्रेटिस के द्वारा यूनान और सातवीं-आठवीं सदी में अरब पहुँची। किन्तु त्रिदोष-सिद्धान्त को ठीक न समझ पाकर यूनानियों को इसमें पूरी सफलता न मिली। त्रिदोष के स्थूल ज्ञान के आधार पर उन्होंने ह्यूमरल थियोरी चलायी, परन्तु भूल की भित्ति कहाँ तक स्थायी होती वह वैज्ञानिक प्रगति में ठहर न सकी, ढह गयी। वही अड़चन आजकल के पश्चिमी विद्वानों के सामने है। त्रिदोष-सिद्धान्त न समझ पाने के कारण वे अपनी पैथी में न तो सिद्धान्त की वैसी स्थिरता ला सके और न नाड़ीज्ञान में ही प्रगति कर सके। तथापि अन्य प्रकार से उन्होंने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ काम किया है। नाड़ी-परीक्षा के लिए स्फिग्मोग्राफ और रक्ताशय की परीक्षा के लिए इलेक्ट्रो-कारडियो-ग्राफ का आविष्कार किया है। ये उपाय झंझट वाले और खर्चीले अवश्य हैं, तथापि शोधक बुद्धि के परिचायक होने के कारण ये स्तुत्य तथा आवश्यकतानुसार ग्राह्य हैं। आयुर्वेदिक वैद्यों का भी कर्त्तव्य है कि इस विषय को इस प्रकार समझावें कि ये अधिक ग्राह्य हो सकें। दोष-विकृति होने से किस दोष की विकृति से शरीर में कौन-कौन से लक्षण उत्पन्न होते हैं और उन लक्षणों के अनुरूप नाड़ी की गति में किस प्रकार अन्तर हो सकता है, इसे समझने का डाक्टर लोग प्रयत्न कर रहे हैं और वायु की सर्पगति नाड़ी को वे Wavy अथवा Wiry तथा पित्त की मेंढक गतिवाली नाड़ी को Galloping Pulse कहते हैं। सूत की-सी पतली नाड़ी को Thready नाम से सम्बोधित करते हैं। किन्तु त्रिदोष-पद्धति न समझने के कारण हृदय की विकृति के फेरफार के अनुसार इसका अनुमान निकालते हैं। शुद्धरक्तवाहिनी धमनी में हृदय के आकुञ्चन से रक्त आता है। यह

रोहिणी धमनी रबर की नली के समान लचदार है, इसलिए उस पर हाथ रखने से दबाव पड़कर वह धमकने लगती है। वात-पित्त-कफ के विकृति-स्वरूप और शक्ति के अनुसार रक्त की लहर में अन्तर पड़ता है। वायुप्रकोप में नाड़ी लहराती और काँपती हुई, पित्तप्रकोप में ऊष्णता के कारण उचकती हुई, कफ में धीमी गतिवाली रहती है। तीनों दोषों की विकृति में कूदती हुई तेजी से चलती है। कभी क्षीण, कभी तेज, रहती है। अति सूक्ष्म (Thready और अधिक शिथिल (Weak) नाड़ी मृत्यु सूचक होती है। यह सब अलग विवेचन का स्वतन्त्र विषय है। तथापि विज्ञान की देन जहाँ जितनी प्राप्त हो, उसे बुद्धि पुरस्सर ग्रहण करने का आग्रह रहना चाहिए।

आजकल पश्चिमी वैज्ञानिकों ने आहार-शास्त्र में विटामिन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान बना रखा है। जीवनीशक्ति में सहायता करने वाले कुछ पदार्थों के वर्ग इनके अन्तर्गत आते हैं। ऐसे वर्ग हमारे यहाँ औषधिगणों के रूप में विद्यमान हैं और उनकी संख्या अधिक है। प्रथम श्रेणी का विटा-मिन ए० ओज का वर्धन करता है। ऐसे पदार्थों की क्रिया यकृति में होती है। दूसरे बी० विटामिन वर्ग के द्रव्य दीपनपाचनीय हैं। इनकी क्रिया आँतों में होती है और ऐसे द्रव्य अग्नि को प्रदीप्त करते और पचाते हैं। तीसरा सी० विटामिन रक्त को शुद्ध करता है और उसमें लालिमा उत्पन्न करने का काम करना है। इसकी भी क्रिया यकृतपिण्ड और पित्ताशय में होती है। यह प्रायः फलों के रसों में अधिकता से मिलता है। चौथा विटामिन डी० शरीर को मोटा-ताजा करता है और शुक्रवर्द्धक होता है। पाँचवाँ विटामिन ई० रसायन गुणसम्पन्न और प्रजोत्पादिनी शक्ति बढ़ाने वाला होता है। इस खोज से आहार निर्णय में सहायता मिलती है। किन्तु इन वर्गों में जिन पदार्थों का निर्देश हुआ है, वे सभी समानरूप से गुण प्रकाश नहीं करते हैं। मटर को विटामिनसम्पन्न बताया गया है, किन्तु उसका अधिक सेवन करने से पेट में आध्मान और वायु की वृद्धि होती है। करमकल्ले की बड़ी प्रशंसा कही जाती है परन्तु उसमें उष्णता-उत्पादन की जितनी शक्ति है उतनी शक्ति बढ़ाने की नहीं। इसी तरह मकाई अपनी रुक्षता के कारण ओजवर्धक नहीं है। पश्चिमी वैज्ञानिकों में यदि रस-वीर्य-विपाक-प्रभाव और गुण विवेचन के साथ वर्गीकरण करने की पद्धति होती तो उनका चुनाव कहीं अधिक निर्दोष होता।

संसार के वैज्ञानिकों के मस्तिष्क तरह-तरह के प्रयोगों और अन्वेषणों

में लगे हुए हैं। उनका परिश्रम अपने लिए नहीं, जन-समाज के उपकार के लिए हो रहा है। रूस के वैज्ञानिकों ने एक मनुष्य का रक्त दूसरे में पहुँचाने की क्रिया में अधिक सफलता पायी है। अब तो ताजा खून न हो तो भी उनके कार्य में बाधा नहीं पड़ती; विशेष पात्रों में संचित किये हुए रक्त से भी वे काम चला लेते हैं। वियना के एक डाक्टर ने कृत्रिम रक्त बनाकर उससे असली रक्त के लाभ उठाने में सफलता पानी आरम्भ की है। डाक्टर एलेकसिसकेरल ने हृदय को मानव-शरीर से अलग कर और उसे रोगरहित बना फिर मनुष्य शरीर में बैठा देने में सफलता पायी है। यही नहीं, हृदय को अलग रख कुछ विधियों के साथ उसमें रक्त पहुँचाते रखकर उन्होंने हृदय को पाँच वर्ष तक गतिमान बना रखा है। अशोक के जमाने में राजपुत्र कुणाल की आँख निकाल ली गयी थी, किन्तु बहुत दिनों के बाद वैद्य जीवक ने उन्हें फिर कुणाल को लगाकर नेत्रवान बना दिया था। एक रूसी नेत्र-चिकित्सक ने भी छः दिनों तक बर्फ़ की संदूक में निकाले हुए नेत्र रखकर उन्हें कार्यान्वित बनाये रखने में सफलता पायी है। हमारे देश के विद्वान् भी जब ऐसे ही आविष्कार और प्रयोग में सफलता पाने लगेंगे तब हमें सन्तोष होगा। सर जगदीशचन्द्र वसु और विज्ञानाचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के समान और भी अधिक सफलता के साथ हमारे देश के विद्वान् देश और संसार को वैज्ञानिक देन देने में सफल हों, तभी भारत का पूर्व गौरव जागृत होगा।

साहित्य-निर्माण

किसी भी भाषा और समाज की उच्चता एवं संस्कृति का परिचय उसके साहित्य से होता है। भाषा और समाज की योग्यता की कसौटी उसका साहित्य है। हिन्दी इस देश के बहुजन समाज के लिखने, बोलने और समझने की भाषा है। संयुक्त-प्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपूताना और दिल्ली तथा अधिकांश पंजाब की वह मातृभाषा है और बंगाल, आसाम, उत्कल, आन्ध्र, महाराष्ट्र, गुर्जर, कर्नाटक, तामिल आदि में भी अब उसका क्रमशः प्रचार बढ़ रहा है, यह देश की राष्ट्रभाषा हो रही है। अतएव हिन्दी का ग्रन्थ-साहित्य और भी भरा-पूरा होना चाहिए। वैज्ञानिक साहित्य के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि हिन्दी एकदम निर्धन नहीं है। **प्रयाग की विज्ञान परिषद्** के द्वारा भौतिक-विज्ञान, रसायन आदि पर कई पुस्तकें

निकली हैं । उसके द्वारा प्रकाशित होने वाले "विज्ञान" में विविध वैज्ञानिक विषयों की चर्चा बराबर हुआ करती है । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भौतिक-शास्त्र, रसायनशास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान, शरीर-रचनाविज्ञान आदि पर पुस्तकें प्रकाशित कर चुका है । माननीय बाबू सम्पूर्णानन्द, आयुर्वेदाचार्य डाक्टर घाणेकर आयुर्वेदाचार्य पं० दत्तात्रय अनन्त कुलकर्णी, डाक्टर फूलदेव सहाय वर्मा, डाक्टर गोरखप्रसाद, डाक्टर निहालकरण सेठी, स्वर्गीय बाबू रामदास गौड़ आदि लेखकों द्वारा विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर कई पुस्तकें निकल चुकी हैं । ज्योतिष और कृषिविज्ञान पर भी कुछ साहित्य-निर्माण हो चुका है । पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी और पं० सूर्यनारायण व्यास तथा पं० सुधाकर द्विवेदी जी ने भी ज्योतिष पर अच्छा प्रकाश डाला है । कृषि सम्बन्धी रसायन की पहली पुस्तक स्वर्गीय टी० के० जकाती ने लिखी थी । स्व० बा० महेशचरण सिन्हा ने भी कई पुस्तकें लिखी थीं । भौतिकविज्ञान पर एक पुस्तक पहले पं० रमाशंकर मिश्र और पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र तथा नारायण आप्टे ने लिखी थी । वैद्यक विषय पर भी डाक्टर त्रिलोकी-नाथ वर्मा, डाक्टर मुकुन्दस्वरूप वर्मा तथा डाक्टर आशानन्द ने नवीन प्रकाश डाला है । प्राचीन ढंग के आयुर्वैदिक साहित्य का प्रकाशन तो हिन्दी के बराबर किसी भी भारतीय भाषा में नहीं हुआ है । **अवश्य ही आयुर्वैदिक विषयों को नूतन ज्ञान के प्रकाश में देखकर समीक्षा और समन्वयपूर्वक आत्मसात् करने का साहित्य अभी हिन्दी में पर्याप्त नहीं है और उसके लिए अभी बहुत प्रयत्न और उद्योग की आवश्यकता है ।** तथापि इस दिशा में भी स्वर्गीय पण्डित दुर्गादत्त पन्त, स्वर्गीय आयुर्वेद महोपाध्याय पण्डित शंकरदा जी शास्त्री पदे, स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथ शर्मा राजवैद्य, स्वर्गीय पं० शालग्राम जी शास्त्री, वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिंह, कालेडा बोगला के स्वामी कृष्णानन्द जी महाराज, स्वामी हरिशरणानन्द जी, पण्डित किशोरीदत्त जी शास्त्री, पण्डित भागीरथ जी स्वामी, पं० विश्वनाथ द्विवेदी, पं० महादेव चन्द्रशेखर पाठक, पं० भिकाजी विनायक डेग्वेकर, कविरत्न पण्डित ठाकुरदत्त शर्मा प्रभृति ने स्तुत्य उद्योग किया है और स्वयं मैं भी इसके लिए सचेष्ट रहता हूँ । सुधानिधि, आयुर्वेदकेशरी, धन्वतरि, वैद्य सम्मेलन पत्रिका, बिहार सम्मेलन पत्रिका, अनुभूतयोगमाला, राकेश, वैद्य, अश्विनीकुमार, स्वास्थ्य सन्देश आदि हिन्दी के आयुर्वैदिक पत्र भी आयुर्वेदविज्ञान की चर्चा का विस्तार किया करते हैं । संस्कृत भाषा और नागराक्षर द्वारा नूतन ग्रन्थ प्रकाशित

कर महामहोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन जी ने शरीर और निदान विषय में नयी शक्ति प्रदान की है। आयुर्वैदिक प्राचीन साहित्य खोजकर प्रकाशित करने का जो महान् प्रयास पण्डित यादव जी त्रीकमजी आचार्य ने किया है, यह एक व्यक्ति क्या, एक संस्था के लिये भी कठिन है। इस दृष्टि से हिन्दी का वैज्ञानिक क्षेत्र एक प्रकार से अभिनन्दनीय है।

किन्तु इतना होने पर भी हमें सन्तोष नहीं है। एक बहुव्यापक और राष्ट्रभाषा की दृष्टि से भी अभी हमारा वैज्ञानिक साहित्य बहुत नगण्य है। अनेक आवश्यक विषयों पर अभी विचारपूर्ण, विज्ञानसम्मत और देश की समृद्धि बढ़ाने की दृष्टि से ग्रन्थ-निर्माण की बहुत आवश्यकता है। **कृषि-विज्ञान पर ऐसे सम्पर्क ग्रन्थों की आवश्यकता है जिनमें देश-दशा और किसानों की परिस्थिति के विचार से कृषि की उत्पादनशक्ति बढ़ाने के उपाय बताये जावें।** फसल बोने, तैयार करने, खेत बनाने, सींचने आदि की सरल विधियाँ समझायी जावें। शाक-सब्जी, फल-फलहरी, पशुपालन, गोरस पदार्थों के उद्योग आदि पर ग्रन्थ-रचना होनी चाहिए। व्यावसायिक दृष्टि से औषधि-निर्माणशास्त्र की रचना होनी चाहिए। अनेक प्रकार के गृह-उद्योग, शिल्पकला और वाणिज्यव्यवसाय सम्बन्धी साहित्य-निर्माण की बहुत आवश्यकता है। भारतीय भौतिकविज्ञान, न्याय, आयुर्वेद, सांख्य, वैशेषिक, योग आदि दर्शन ग्रन्थों, वेदों, उपनिषदों और पुराणों में बिखरा हुआ पड़ा है। बुद्धिमानी और सतर्कता से इनका संकलन कर व्यवस्थित रूप देने की नितान्त आवश्यकता है। मुलम्मा, तारकशी, फोटोग्राफी, रंगसाजी, प्रभृति उद्योगों का उत्कर्ष, विज्ञान की सहायता से किस प्रकार हो सकता है, इस पर प्रकाश डालना देश की आवश्यकता का तकाजा है। अभी एक्सरे, रेडियम, ऊष्णता, प्रकाश, चुम्बकत्व, विद्युत्, रसायन विद्युत्*, यन्त्रस्थितिशास्त्र और सेन्द्रिय तथा निरीन्द्रिय रसायनशास्त्र आदि पर काफी प्रकाश डालना शेष है। भारतीय रसायन शास्त्रों में नये ढंग से ग्रन्थ-निर्माण होना नितान्त अभीष्ट है। इस प्रकार साहित्य निर्माण के सिलसिले में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि **हमारा बहुत कुछ वैज्ञानिक साहित्य संस्कृत में है और उसे अपनी मातृभाषा या राष्ट्रीय भाषा में ले आना अभीष्ट है।** अतएव उसका संकलन कर अनुवाद अथवा स्वतन्त्र रूप से हिन्दी में कर लेना चाहिए।

विज्ञान के अन्य विभागों में कितनी ही उन्नति हुई हो, किन्तु मानव-जीवन को आरोग्य और सुखी बनाने की कला में कोई कहने योग्य उन्नति

***अब कार्बनिक तथा अकार्बनिक रसायन शास्त्र—सम्पादक**

नहीं हुई है । संक्रामक रोगों, महामारी, दुर्भिक्ष आदि के सर्वनाशी स्वरूप बढ़ते जा रहे हैं । मनुष्योचित जीवन-धारण की कला में हमारी उन्नति नहीं हुई । जब तक देश में दशा के अनुकूल कृषि-कला का आविष्कार और प्रचार न हो, जब तक देश में आरोग्यविधायक अपने निज के आयुर्वेद का प्राचीन आधार पर नवीन संस्कार और पुरस्कार न हो, तब तक जीवनरक्षक और संवर्धक कला में उन्नति हो भी नहीं सकती । इस ओर भी आविष्कार और साहित्य-निर्माण की बहुत आवश्यकता है ।

इस प्रकार आवश्यकता का प्रतिपादन कर देना ही पर्याप्त नहीं होगा । इसके लिए कोई कारगर योजना तैयार कर कार्य में परिणत करना-आवश्यक है । अभी तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ध्यान इधर पर्याप्त रूप से आकर्षित नहीं हुआ है । काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने कुछ प्रयत्न किया है; किन्तु एक व्यवस्थित रूप देकर कार्यविस्तार करना आवश्यक है । हमारे अबोहर का साहित्य-सदन भी ज्ञान "दीपक" का प्रकाश करने और कुछ ग्रन्थरत्न प्रकाशित करने में प्रयत्नशील है । यदि इनमें से भी कुछ आवश्यक विषयों को अपना लें तो वह सर्वथा उचित होगा । व्यवसायी प्रकाशकों से इस सम्बन्ध में आशा रखना व्यर्थ है; क्योंकि इस सम्बन्ध की पुस्तकों की बिक्री इतनी नहीं हो सकती कि उन्हें उस प्रकार लाभ हो, जिस प्रकार कहानी, उपन्यास और काव्यग्रन्थों से होता है । ऐसे ग्रन्थों की बिक्री भी शीघ्रता से नहीं हो सकती । अतएव साधारण प्रकाशकों से ऐसी उदारता और धीरज की आशा करना व्यर्थ है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन को ही इस भार को उठा लेना चाहिए । शिमला अधिवेशन के विज्ञानपरिषद्-सभापति डाक्टर फूलदेव सहाय वर्मा ने एक दसवर्षीय योजना का प्रस्ताव किया था । उसके अनुसार एक लाख की पूँजी इकट्ठी कर प्रति वर्ष १० के हिसाब से १० वर्ष में १०० पुस्तकें तैयार करने का सुझाव सुझाया गया था । इस प्रकार जन्तुविज्ञान, वनस्पतिशास्त्र, कृषि-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान, रसायन, ज्योतिष, आरोग्यशास्त्र, रसतन्त्र, आयुर्वेदशास्त्र, शरीर और शरीरक्रिया-विज्ञान, सार्वजनिक आरोग्य और नगर तथा ग्रामों की सफाई और स्वास्थ्यरक्षा, बाल-संगोपन, व्यायाम आदि विषयों पर उपयुक्त पुस्तकें निकल जावेंगी । यदि दान द्वारा इस प्रकार पूँजी इकट्ठी न हो सकती हो तो शेयरों के द्वारा एकत्र करने का उद्योग करना चाहिए । किसी तरह हो; किन्तु सम्मेलन को इसे व्यावहारिक रूप देने और कार्य में परिणत करने का उद्योग करना चाहिए ।

वैज्ञानिक भाषा

विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें लिखने में इनकी भाषा के सम्बन्ध में भी विचार कर लेना आवश्यक होगा। इनकी भाषा हिन्दी तो होगी ही; किन्तु ऐसी पुस्तकें समस्त देश में प्रचलित होने की दृष्टि से लिखी जायँगी, अतएव उनकी हिन्दी ऐसी होनी चाहिए जो समस्त देश में सरलता से समझी जा सके। ज्योतिष और वैद्यक की पुस्तकों में अपनी पूर्व परम्परा बनाये रखने के विचार से भाषा ऐसी रखनी पड़ेगी जिसमें संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों की प्रधानता हो। अभी तक इस विषय के मूलाधार और प्रामाणिक ग्रन्थ संस्कृत में हैं। समस्त देश के वैद्य और ज्योतिषी संस्कृत के द्वारा ही इन विषयों को ग्रहण करते हैं। अतएव उनमें यथासम्भव शुद्ध हिन्दी के ग्रन्थ ही आदर पा सकेंगे। चालीस-पैंतालीस वर्ष पहले ही महराष्ट्र के आयुर्वेद महोपाध्याय पण्डित शंकरदाजी शास्त्री पदे महोदय ने इस बात की आवश्यकता समझ ली थी कि देश के विद्वानों की प्रचलित भाषा संस्कृत होने पर भी एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है और ऐसी राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है। आयुर्वैदिक और धार्मिक आन्दोलन के लिए उन्होंने हिन्दी का माध्यम स्वीकार ही नहीं किया, बल्कि महाराष्ट्र और गुजरात में उसका प्रचार बढ़ाने के लिए हजारों रुपये खर्च भी किये। उन्होंने हिन्दी-मराठी-गुजराती का त्रैमाषिक सम्मिलित पत्र निकाला और उसका प्रचार किया। इस कार्य में स्वर्गीय बड़ौदा-नरेश सर सयाजी राव गायकवाड़ ने भी उन्हें अच्छी सहायता दी। नि० भा० वैद्य सम्मेलन में संस्कृत के साथ-ही-साथ हिन्दी भी प्रधानता से प्रचलित की गयी और यह परम्परा वैद्य-सम्मेलन में अब भी सुरक्षित चली आ रही है। विज्ञान सम्बन्धी अन्य पुस्तकों में भी भारतीय संस्कृति और परम्परा का आधार छोड़ना आवश्यक नहीं है। इसलिए उन पुस्तकों में भी हिन्दी का रूप सरल और सुबोध ही रखना चाहिए। सम्पूर्ण भारत की प्रान्तीय भाषाएँ (बलोचिस्तान और सीमाप्रान्त को छोड़कर) या तो संस्कृत से निकली हैं या उन पर संस्कृत का बहुत प्रभाव पड़ा हुआ है। अतएव उनकी प्रान्तीय भाषाओं से निकट सम्बन्ध रखने वाली शब्दावली वाली भाषा ही उन्हें ग्राह्य हो सकेगी। इसलिए प्रकाशक और लेखकों को पुस्तकों के सार्वदेशिक प्रचार के उद्देश्य को समझ, राष्ट्रभाषा के स्वरूप को भी समझ रखना आवश्यक है। भाषा के साथ लिपि का प्रश्न भी आ सकता है। नागरी अक्षर बहुत परिवर्तन के बाद इस रूप में आये हैं और उन्हें अब वैज्ञानिक रूप मिल गया है। इस समय

लिपि-परिवर्तन का प्रश्न भी सामने आया करता है। इस सम्बन्ध में भी विचारणीय यही है कि यदि परिवर्तन की नितान्त आवश्यकता ही प्रतीत हो, तो वह बहुत समझ-बूझकर इस प्रकार करना चाहिए कि उनकी आकृति, विकृति न हो और उनकी वैज्ञानिकता नष्ट न होने पावे ।

लेखकों को उत्साह प्रदान

बढ़िया और प्रमाणभूत पुस्तकें लिखाने के लिए उच्चकोटि के विद्वान्-लेखकों की आवश्यकता होगी । विद्वानों की तो देश में कमी नहीं है, किन्तु इधर उनकी रुचि बढ़ाने के लिए कुछ आकर्षक उपायों की आवश्यकता है । **ऐसे विद्वानों को हिन्दी में लिखने के लिए प्रोत्साहित करना, उन्हें आग्रहपूर्वक इस क्षेत्र में लाना, हिन्दी प्रेमियों का कर्तव्य है** । इस समय का जीवन-संघर्ष इतना विकट हो रहा है कि लेखन-कार्य में प्रवृत्त होने और उसे पूर्ण करने में जो समय लगेगा, उसे सरलता से निकालना सभी के लिए सुगम नहीं हो सकेगा । इसलिए जो लेखक स्वान्तःसुखाय बिना पारिश्रमिक के लिख सकते हैं, उनका तो स्वागत करना ही है; किन्तु लेखकों को पारिश्रमिक, रायल्टी, पुरस्कार, पदक तथा उपाधि आदि देकर भी इस कार्य में प्रवृत्त करने के उपाय काम में लाने होंगे । यह आवश्यक नहीं कि ऐसे लेखक हिन्दी क्षेत्र से ही चुने जायँ । अखिल भारत के चुनिन्दा विद्वानों का उपयोग करना आवश्यक है । अतएव सार्वजनिक रूप से उनका सम्मानवर्धन करने से उनमें उत्साह की वृद्धि होगी और ऐसा आग्रह और आकर्षण ही उन्हें इस कार्य में प्रवृत्त करने में समर्थ हो सकेगा । हिन्दी में लेखकों की संख्या बढ़ रही है और बढ़ती ही जायगी । पात्र-निर्वाचन कर उनका उपयोग करने की सावधानी अपेक्षित है । पिछले समय में उचित पात्र निर्वाचन न कर सकने के कारण आयुर्वेदिक ग्रन्थ-प्रकाशकों द्वारा अर्थ और अनुवाद में बड़े अनर्थ हो चुके हैं ।

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक पुस्तकों के निर्माण में सबसे बड़ी कठिनाई और सबसे बड़ी बाधा पारिभाषिक शब्दों के निर्धारण में है । इस समय विज्ञान इतनी शीघ्रता से उन्नत हो रहा है कि वह मानव-जीवन और सांसारिक व्यवहार में अपना अनिवार्य प्रभाव डालता जा रहा है । जहाँ एक ओर वैज्ञानिक प्रगति हमारे जीवन में सहायक, हमारे ऐहिक उत्थान में प्रभाव डालनेवाली हो

रही है, वहाँ वह सर्वनाश और मानव-जीवन के संहार का विकट ताण्डव भी कर रही है। जहाँ अपनी उन्नति और ऐश्वर्य वृद्धि के लिए हमें उसे अपनाना आवश्यक है, वहाँ उससे आत्म-रक्षा करने के लिए उसके स्वरूप और कार्यकलाप को समझ कर उसके रहस्यों को समझना तथा रक्षा के उपायों को काम में लाना भी अनिवार्य हो रहा है। इस दृष्टि से वैज्ञानिक साहित्य का अध्ययन और आकलन करना सभी के लिए आवश्यक हो उठा है। **आवश्यकता है कि सबकी समझ में आने योग्य भाषा और शब्दों में उसका साहित्य निर्माण किया जाय।** नित्य नये प्रयोग और आविष्कारों के कारण नये-नये शब्दों का निर्माण होता जा रहा है। **इसलिए अपने प्राचीन पारिभाषिक शब्द अब पर्याप्त नहीं हैं। हिन्दी में नये पारिभाषिक शब्दों का आना अनिवार्य है।** प्राचीन और आधुनिक विज्ञान के बहुत-से शब्दों के पारिभाषिक शब्द आयुर्वेद, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, योग, सांख्य, न्याय, वैशेषिक तथा वैदिक साहित्य में मिल सकते हैं। उन्हें ढूँढ़कर अपनाना आवश्यक है। इसके लिए आधुनिक विद्वानों का संस्कृत-साहित्य से सम्पर्क होना अनिवार्य है। बाल्मीकि रामायण पढ़ने से हेड आफ दि डिपार्टमेंट का पर्याय 'महाकपालः', असिस्टेंट हेड आफ दी डिपार्टमेंट के लिए 'दीर्घकपालः', सुपरवाइजर के लिए 'सुचक्षु' सुपरिंटेंडेंट के लिए 'सुपरितनदन्तकः' वाटर वर्क्स के इन्जीनियर के लिए 'नील' और जल पहुँचाने का प्रबन्ध करने वाले इन्जीनियर के लिए 'नल' शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी तरह परिशीलन से बहुत से शब्द मिलेंगे। नाइट्रोजन को नत्रजन, कार्बन को काब आदि लिख देना पर्याप्त नहीं है और न ऐसा करने से उनका भारतीय स्वरूप ही बन सकता है। वैज्ञानिक शब्द-निर्माण में शब्दशास्त्र की वैज्ञानिकता की रक्षा होनी चाहिए। भारतीय भाषा की शब्दराशि से उसका सम्बन्ध होना चाहिए; और शब्दव्युत्पत्ति के अनुसार उसका अर्थबोध भी होना चाहिए। बहुत से आधुनिक वैज्ञानिक शब्दों के पर्याय संस्कृत में मिल सकते हैं और बहुतों के अर्थबोधात्मक शब्द निर्मित हो सकते हैं। **पारिभाषिक शब्द-निर्धारण हँसी-खेल नहीं है और न एक व्यक्ति या एक प्रान्त के बूते का यह कार्य है।** इसमें सभी प्रकार के वैज्ञानिकों, सभी भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधियों, सभी साहित्यिक तथा वैज्ञानिक संस्थाओं के सहयोग की अपेक्षा है। हम जो परिभाषा निर्धारित करेंगे, उसका प्रचार सभी प्रान्तों और सभी भाषाओं में होना आवश्यक है। इसमें बहुत गम्भीरता, धैर्य, अर्थ, अन्वेषण और परिश्रम

का विनियोग करना पड़ेगा और देशहित तथा साहित्य की अभिवृद्धि और पूर्ति के लिए हमें इसे करना ही चाहिए, करना ही पड़ेगा। इस सम्बन्ध में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने पहले उद्योग किया है और उस उद्योग के फलस्वरूप एक ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ था। किन्तु पहले तो सभी विभागों के पारिभाषिक शब्द बन न सके और फिर परिभाषा-निर्धारण में उस समय बहुत त्रुटि रह गयी थी, सम्भवतः इसीलिए उसका बहुल प्रचार नहीं हो सका। अब समय आ गया है कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन, वैद्य सम्मेलन, और नागरी प्रचारिणी सभा तथा विज्ञान-परिषद् परस्पर सहयोग से इस कार्य को फिर उठावें और अखिल भारतीय विद्वानों और संस्थाओं की सहायता एवं सहयोग से इसे पूर्ण करें। इसकी पूर्ति हमीं से हो सकेगी और हमें इसे करना ही चाहिए। अभी इस सम्बन्ध में सरकार का मुँह देखना उचित हो तो भी सामयिक है, या नहीं, इसमें सन्देह है। अभी तक सरकार ने जहाँ तक इस कार्य में हाथ डाला है वहाँ तक "विनायकम् प्रकुर्वाणो रचयामास वानरः" का ही उसने दृश्य दिखलाया है। बिहार की "हिन्दुस्तानी कमेटी" ने जैसे पारिभाषिक शब्द बनाने चाहे थे, उनका उपहासास्पद और नग्नस्वरूप गत वर्ष डाक्टर सत्यप्रकाश जी ने पूना अधिवेशन में दिखलाया था। भारतीय सरकार ने भी एक केन्द्रीय शिक्षा समिति "हैदरी कमेटी, नाम से बनायी है, जिसमें १२ मेम्बरों में हमारे इस वर्ष के सम्मेलनाध्यक्ष पण्डित अमरनाथ झा जी भी एक सभासद् हैं; परन्तु आप वहाँ अकेले पड़ते हैं, इसलिए अपना पूर्ण प्रभाव उस कमेटी पर स्थापित करने में आपको बहुत परिश्रम पड़ता है। सुना है कि उस कमेटी ने निश्चय किया था कि अंग्रेजी के परिभाषिक शब्द भारत की भाषाओं में ज्यों के त्यों लिए जावें। अभी पिछली बैठक में यह तय हुआ है कि अंग्रेजी के जो शब्द प्रचलित हो चुके हैं, वे वैसे ही रहें। शेष नये शब्दों के लिए हिन्दी में संस्कृत के आधार पर और उर्दू के लिए फारसी के आधार पर शब्द तैयार किये जावें। अभी इस सम्बन्ध में विचार हो रहा है। अन्तिम निर्णय के पहले ही हमें इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट कर देनी चाहिए। ऊपर का संशोधित निर्णय अनुचित नहीं है किन्तु शब्द निर्माण में सावधानी रखने का ध्यान रहे। इस कमेटी में १२ में ६ सदस्य उर्दू जानने वाले मुसलमान, दो अंग्रेज, एक मद्रासी, एक उत्कल और दो हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दू हैं। उसमें "अञ्जुमन तरक्कीए-उर्दू" के मंत्री तो हैं परतु हिन्दी साहित्य सम्मेलन,

काशी नागरी प्रचारिणी सभा और विज्ञान परिषद् का कोई प्रतिनिधि नहीं है । इस चुनाव की विधि का भी हमें विरोध करना चाहिए । जो हो, इसका निर्णय ऐसा होना चाहिए जिसे हम आत्मसात् करने में समर्थ हों । वह हमारी वस्तु होनी चाहिए । हम यह मानते हैं कि जिन शब्दों की अर्थबोधक परिभाषा हम तैयार न कर सकें या जो पहले से देश में प्रचलित हो चुके हैं, उन्हें हम ज्यों के त्यों रहने दें । किन्तु संस्कृत में वह शक्ति है कि सौ में नब्बे पारिभाषिक शब्दों का निर्धारण हम तदर्थबोधक शब्दों द्वारा कर सकेंगे । जो शब्द जनता में बोलचाल के प्रवाह में आकर प्रचलित हो चुके हैं और जिनका व्यवहार स्वच्छदन्ता से हो रहा है, वे चाहे तद्भव या अपभ्रंश ही क्यों न हों, उनका प्रचार हमारी भाषा में बना ही रहेगा । मेरा तो आग्रह है कि सरकार इसे करे या न करे तो, भी हिन्दी साहित्य सम्मेलन इस कार्य को अपने ऊपर ले और एक आदर्श सामने तैयार कर रख दे । उस दशा में अन्य उपहासास्पद प्रयत्न बेकाम हो जावेंगे और ग्राह्य स्वरूप भारत में प्रचलित हो जावेगा । उर्दू पारिभाषिक शब्दों के लिए निजाम सरकार और उसमानिया यूनिवर्सिटी ने उद्योग किया है, हिन्दी के लिए साहित्य सम्मेलन, सरकार और हिन्दी विश्वविद्यालय को साहस कर सामने आना ही चाहिए । इसके साथ ही शब्दों के स्वरूप, शैली और लिंगादि का भी निर्णय हो जावेगा । इस समय इस बात की शिकायत है कि हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों के पाठकों की खेद-जनक कमी है । पश्चिमी विज्ञान का साहित्य हिन्दी में लाने में अनुवादकों के सामने यह कठिनाई उपस्थित होती है कि वह अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का अनुवाद क्या करें । इसके लिए एक ऐसे कोष की आवश्यकता है, जिसमें अंग्रेजी पारिभाषिक और शास्त्रीय शब्दों के लिए हिन्दी के तदर्थबोधक कई शब्द दिये हों, जिससे लेखक अपने अभिप्राय के अनुकूल अर्थ ग्रहण कर सकें । एक वैज्ञानिक विश्वकोष भी बनाया जा सकता है । मुझे भय है कि अभी तक हमारा वैज्ञानिक साहित्य जनता की रुचि और अन्त:करण का स्पर्श करने में उतना सफल नहीं हुआ है । ऐसे प्रयत्नों से जब वह अधिक ग्राह्य रूप में आ जायगा और वैज्ञानिक वर्णन की नीरसता के बदले उसमें सुरुचि और कौतूहल की उत्सुकता भी समावेशित होगी, तब इस विषय के पाठकों की कमी नहीं रहेगी । हमारी परम्परा, हमारी परि-स्थिति, हमारी आदत और हमारी सुविधा का ध्यान रख जब साहित्य-निर्माण होगा, तब वह समाज में अवश्य आदर का पात्र होगा ।

पाठ्यक्रम में हिन्दी

इस युग को यदि वैज्ञानिक युग कहें तो अत्युक्ति न होगी। जिन देशों ने संसार में गौरव और प्रतिष्ठा प्राप्त की है, उन्होंने अपने सुख और ऐश्वर्य में भी अभिवृद्धि की है। इस समय सभी सांसारिक व्यवहारों में वैज्ञानिक प्रगति से सहायता मिलती है। इसलिए सभी श्रेणी के लोगों में वैज्ञानिक ज्ञानविस्तार की आवश्यकता है। यह ठीक है कि पराधीन जाति अपनी इच्छा के अनुसार अपनी उन्नति नहीं कर पाती, पद-पद पर पराधीनता उसके आड़े आती है। स्वाधीन जातियाँ जितनी जल्दी अपना अभ्युदय साधन कर लेती हैं, उतना समय पराधीन जातियों को अपने विघ्नों के दूरी-करण के प्रयत्न में ही लग जाता है। तथापि देश की गतिविधि निरीक्षण कर उपाय-योजना करने वाले नेताओं को फिर भी चुप नहीं बैठना चाहिए। प्राइमरी शिक्षा के बाद ही विद्यार्थियों को प्रारम्भिक वैज्ञानिक शिक्षा आरम्भ करा देना चाहिए। मिडिल और हाईस्कूल की पढ़ाई तक में साधारण वैज्ञानिक बातों का ज्ञान विद्यार्थियों को मातृ-भाषा के द्वारा करा देना आवश्यक है। इसके बाद राष्ट्रभाषा द्वारा उच्च वैज्ञानिक शिक्षा का ज्ञान-वर्धन होना चाहिए। भारत में अंग्रेजी भाषा द्वारा वैज्ञानिक शिक्षा देने का परिणाम यह होता है कि उन स्नातकों में मौलिकता की कमी रहती है। वे अपने अभ्युदय का मार्ग ढूँढ़ने में घबराते रहते हैं। इसके सिवाय यह शिक्षा यन्त्र-प्रधान होने के कारण व्यावहारिक नहीं हो पाती। यन्त्रसाधनों से पूर्ण पूरी लेबोरेटरी हुए बिना वे कुछ करने में समर्थ नहीं होते। उच्च शिक्षा में तो यन्त्र साहाय्य आवश्यक हो सकता है; किन्तु आरम्भिक और माध्यमिक शिक्षा में यथासम्भव शिक्षा व्यावहारिक रहे तभी वैज्ञानिक शिक्षा के कल्याणकारक स्वरूप का हम उपयोग कर सकते हैं। गृहशिल्प और साधारण कलाकौशल की शिक्षा से विद्यार्थी कुछ आजीविका चलाने योग्य बन सकें, तब वह शिक्षा सीखने वालों का अधिकाधिक आकर्षण करेगी। हाई स्कूल की परीक्षा तक विद्यार्थी विज्ञान विषय में उत्तर हिन्दी में दे सकता है, अतएव पाठ्यक्रम की पुस्तकें भी हिन्दी में रहनी चाहिये। **यही नहीं, कालेज में भी वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी के माध्यम द्वारा दी जानी चाहिए।** ऐसा होने से अगली पुस्तकें हिन्दी में निकलेंगी।

सतत उद्योग की आवश्यकता

विज्ञान की उन्नति और प्रचार के लिए यथार्थ में सतत उद्योग करते

रहने की आवश्यकता है। इसमें राजकीय शक्ति और प्रजा की शक्ति का समान विनियोग होते रहना आवश्यक है। किन्तु इस समय राजकीय शक्ति से पूर्ण अनुकूलता की हमें आशा नहीं है। अभी कुछ दिन पहले वैज्ञानिक सिद्धान्तों की घोषणा का समर्थन करते हुए आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उससे हमारी दैन्यावस्था का अच्छा दिग्दर्शन होता है। आप कहते हैं कि—"मनुष्य जाति की उन्नति के लिए विज्ञान के उपयोग का उद्देश्य केवल फासिज़्म के द्वारा ही नहीं नष्ट हो रहा है, बल्कि साम्राज्यवाद के द्वारा भी नष्ट किया जा रहा है। भारत और अन्य ब्रिटिश उपनिवेशों में जिस प्रकार साम्राज्यवाद की कार्यवाइयाँ चल रही हैं, उनसे उक्त कथन सिद्ध हो जाता है। भारत में व्यावसायिक उन्नति के मार्ग में भी रोड़े अटकाये जाते हैं। भारत सरकार ने इस देश में मोटर के व्यवसाय स्थापित करने का भी विरोध किया है। अन्दर की आग से चलने वाले इंजन भारत में बनाने के विरुद्ध भारत मन्त्री ने अभी पार्ल्यमेण्ट में विरोध किया है। स्वतन्त्रता के लिए लाखों आदमियों के बलिदान होते हुए भी मानव-जाति का भविष्य अन्धकारमय है; क्योंकि अटलाण्टिक की घोषणा केवल हिटलर द्वारा अधिकृत यूरोपीय राष्ट्रों पर ही लागू होगी, ब्रिटेन द्वारा अधिकृत राष्ट्रों पर नहीं। अतएव भारतीय वैज्ञानिक संसार के वैज्ञानिकों से अपील करते हैं कि वे यह स्पष्ट कर दें कि समाज के वैज्ञानिक पुनर्निर्माण का आधार स्वतन्त्रता और न्याय होगा और भौगोलिक सीमाओं का ख्याल न किया जायगा। हमारा विश्वास है कि वर्तमान संसार में स्वतन्त्रता, उन्नति और मानव-जाति के कल्याण एक-दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते।" इस उद्धहरण से स्पष्ट है कि मानव जाति के कल्याण और वैज्ञानिक उन्नति के लिए स्वतन्त्रता कितनी आवश्यक है। सारे संसार के देश भारत का धन दुह रहे हैं; परन्तु भारत में कोई ऐसी शक्ति और युक्ति नहीं कि अपने उत्पादन द्वारा (अन्न और कच्ची वस्तुओं को छोड़) परदेशों से धन लाकर अपनी समृद्धि कर सके। कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य, ज्ञान-विज्ञान के ऐसे कोई सरकारी विद्यालय नहीं जहाँ विशेष रूप से अर्थकरी विद्या सिखायी जाती हो। यत्र-तत्र जो कुछ है भी वह नहीं के समान है। उनसे हमारे उद्देश्यों की पूर्ण सिद्धि नहीं होती। देश में दरिद्रता और बेकारी दिनोंदिन बढ़ रही है; परन्तु सरकार इसके लिए विशेष चिन्ताशील नहीं दीख पड़ती। विश्वविद्यालयों से विविध ज्ञान-

विज्ञान पढ़कर विद्यार्थी निकलते हैं; किन्तु शिक्षा के दोष से उनमें स्वावलम्बन का अभाव रहता है। उन्हें सिवाय नौकरी के अन्य अवलम्ब सूझता ही नहीं। विद्यार्थियों को स्वावलम्बन सिखाने वाली विद्या और विज्ञान की शिक्षा देने की व्यवस्था हो तो देश इस दुर्दशा से निष्कृति पा सकता है। बुद्धि और चरित्र के उन्नति साधन के साथ विश्वविद्यालय से निकलने वाले विद्यार्थियों में वृत्ति-निर्वाचन की योग्यता भी होनी चाहिए। हमारा भूतकाल कितना ही गौरवमय हो तो भी विज्ञान क्षेत्र में कभी सन्तोष को स्थान नहीं मिलना चाहिए। उसमें सदा उन्नति और प्रगतिशीलता लाने के लिए उद्योगशील रहने से ही वर्तमान में हम महान् और गौरवशाली हो सकते हैं और अपना भविष्य उज्ज्वल बना सकते हैं। हमारा विज्ञान हमारी आर्थिक और बौद्धिक परिस्थिति को जब उन्नत बनाता चले तभी हमें शान्ति मिलनी चाहिए। प्रत्येक प्रान्त में विदेशी एलोपैथी के स्कूल-कालेज लाखों के खर्च से चलाये जा रहे हैं, परन्तु पूर्ण साधनों से युक्त देशी चिकित्सा-पद्धति की शिक्षा के लिए कोई सरकारी प्रयत्न नहीं देखा जाता। हिन्दू विश्वविद्यालय को छोड़ देशी विश्वविद्यालय भी इस सम्बन्ध में उदासीन देखे जाते हैं। पश्चिमी देशों में एक-एक विज्ञान की अनेक प्रयोगशालाएँ और संस्थाएँ हैं और उन्हें भरपूर सहायता भी मिला करती है। किन्तु भारत में उत्साह दान न होने के कारण ऐसी संस्थाओं की संख्या एकदम परिमित है। यहाँ की जनता में भी इस ओर उदारता प्रदर्शित करने का उतना उत्साह और झुकाव नहीं है। इसीलिए यहाँ वैज्ञानिक उन्नति नहीं हो पाती। इस कार्य के लिए भरपूर सरकारी सहायता जैसे सब देशों में मिलती है, उसी तरह यहाँ भी मिलनी चाहिए; किन्तु जब तक अपनी सरकार न हो तब तक इसमें कहाँ तक सफलता हो सकती है, यह सहज अनुमानगम्य है।

किन्तु सरकार की ओर से उपेक्षा का भाव देखकर क्या हमें एकदम निराश, हतोत्साह और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाना चाहिए? हमें सर्वसाधारण और उदार देशी जनता का ध्यान इधर खींचने के लिए सतत उद्योगशील रहना आवश्यक है। **हिन्दी-साहित्य सम्मेलन को अपने अन्तर्गत एक विज्ञान विभाग खोल देने की आयोजना करनी चाहिए। साल में एक दिन विज्ञान-परिषद् कर देने से ही कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती।** यह परिषद् भी तो विशेष फलप्रद्र नहीं हो पाती। दो-तीन घण्टों में स्वागताध्यक्ष, सभापति और कुछ सज्जनों के भाषण हो जाने या एक दो प्रस्ताव पास कर लेने से ही

उद्देश्य की सिद्धि कैसे होगी ? प्रतिवर्ष कुछ वैज्ञानिक जमकर किसी एक या अनेक विषय में वाद-विवाद और चर्चा किया करें, उस विवाद से किसी निष्कर्ष पर पहुँचा करें तो परिषद् की सफलता आंशिक रूप से हो सकती है। यदि वैज्ञानिक विभाग स्थायीरूप से रहे और साहित्य समिति के समान उसकी एक समिति या उपसमिति बनायी जाय तो उसे साल भर कुछ न कुछ करते रहने की प्रेरणा हो सकती है। **इन परिषदों में कुछ होता नहीं, इसलिए इनकी उपयोगिता में साहित्यिक लोग सन्दिग्ध हो उठे हैं और शायद इसी-लिए इस वर्ष साहित्य-परिषद् को छोड़ अन्य परिषदें बन्द करने का प्रस्ताव आ रहा है।** अन्य परिषदों के सम्बन्ध में अपनी कोई सम्मति न प्रकाशित करते हुए विज्ञान परिषद् के सम्बन्ध में कह देना चाहता हूँ कि इसकी बहुत आवश्यकता है और इसे भव्य और उपयोगी स्वरूप देने की ओर हिन्दी संसार का प्रयत्नशील होना कर्तव्य है। यह अवश्य है कि सम्मेलन के अधि-वेशन के समय इसके लिए कुछ घण्टों को छोड़ अधिक समय मिलना सुविधा-जनक नहीं है और इतने समय में विज्ञान के सभी भागों की चर्चा होना सम्भव नहीं है। **इसलिए ऐसी व्यवस्था की जा सकती है कि आयुर्वेद, ज्योतिष, कृषि, भौतिकविज्ञान, रसायन में से बारी-बारी एक-एक विषय की परिषद् प्रतिवर्ष होती रहे।** जिस वर्ष जिस विज्ञान की परिषद् हो, उस वर्ष विशेषरूप से उसी विज्ञान की चर्चा हो और गौणरूप से अन्य विज्ञानों के आवश्यक साम-यिक विषयों की भी चर्चा हो। प्रतिवर्ष परिषद् के जिम्मे साल भर तक काम करने के लिए कुछ योजना और काम सौंप देना चाहिए। ऐसा होने से विज्ञान-परिषद् की उपयोगिता बढ़ जायगी, सम्मेलन के द्वारा कुछ स्थायी और महत्त्व के काम होते रहेंगे। जिससे उसके उद्देश्य की सिद्धि होगी, कार्य की वृद्धि होगी, और साहित्य की समृद्धि होगी। यही हमारा ध्येय और प्रेय है। इति शम्।

अभिभाषण*—६

ज्योतिषाचार्य पं० सूर्यनारायण व्यास

विद्वज्जन महानुभाव, देवियों और सज्जनों !

विज्ञान जैसे विशद-विशाल विषय के प्रधान का पद देकर आपने वस्तुतः मुझे मेरी स्थिति से अधिक सम्मान का अवसर दिया है। मैं इस सम्मान-भार से आ-नतमस्तक हूँ।

संभवतः इस अस्ताचल-गामिनी पाश्चात्य-संस्कृति के क्षणिक काल में पुराकालीन सभ्यता की संस्मृति ने सजग हो, आपके समक्ष उस महा-महिम मालव-मण्डलीय अतीत-गौरव के उज्ज्वल-भव्य-चित्र की एक झलक नयनोन्मुख कर दी हो, जिस पर से भूमध्य-रेखा ने पथ-प्रसार कर, सहस्राब्दियों पूर्व ज्योतिर्विज्ञान जैसे चाक्षुष-शास्त्र के सृजन की पुरातन पुरुषों को प्रेरणा दी थी। अथवा आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व गीता-ज्ञान के दिव्य-द्रष्टा भगवान् श्रीकृष्ण ने इस अकिंचन के पूर्व पुरुष महर्षि-प्रवर सांदीपनि के चारु-चरणों में उपस्थित हो, समस्त तत्व-ज्ञान-विज्ञान की सफल साधना की थी। उस पुराण-प्रतिष्ठा के ध्वंसावशेष के रूप में, इस लघुतम अणुकण को आपने इस गौरव-गिरिशृङ्ग पर प्रतिष्ठित कर अपनी ही हिम-धवल महनीयता का परिचय दिया है। प्रबल वायु-पुञ्ज द्वारा उच्चालित गगनोन्नत एक रजःकण भी, सौर-साम्राज्य की सीमा में यद्यपि प्रवेश पा जाता है, तथापि वह अनन्त रजोराशि का क्षुद्रतम कणमात्र ही है, जो सर्वदा चरण-तल के सौभाग्य का सेवी है।

आज का युग

आज का युग विज्ञान का वर्चस्व वहन कर, जागतिक शान्ति के महा-स्वाहाकार का आयोजन कर रहा है। विश्व का विपुल-वैभव, विज्ञान-वारिधि के अन्तस्थ विराट् बड़वानल की उदर-दरी में समाविष्ट होता जा रहा है और विज्ञान विस्तृत-वैभव से मानव-मन त्राहि-त्राहि कर उठा है।

*३१वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संवत् २००० हरिद्वार अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

वर्तमान विज्ञान की परिभाषा को लेकर यह युग अन्तिम श्वास लेने को विवश हो गया है। जड़-जगत् परिपोषित एवं उसी संस्कार से सर्जित यह पवित्र ज्ञान, विनाश का विज्ञान करा रहा है। ज्ञान-दीप का यह तेजोहीन अस्तित्व, नव-संस्कारिता का आभारी है। भौतिक भावनाओं के सहस्र-तिमिर-पटलों से आवृत, मानव-मनोलोक में ज्ञान की रश्मि-राशि, आलोक का अणु प्रसारित करने में भी अक्षम होगयी है। जब कि आध्यात्मिक पुनीत भाव-भूमि पर सर्जित भारतीय ज्योतिर्मय ज्ञान, अनन्त आलोक को अन्तर में लिए, जागतिक-धरातल को रजत-रश्मि-राशि से अमल-धवल-अंचल परिधान करा रहा है, परमोज्ज्वल दीप-शिखा की तरह युग-युग के प्रचण्ड झंझावातों में भी अचल अस्तित्व रख रहा है। इतना ही नहीं, अनन्तकाल तक विश्व के विपथ-गामियों को सत्पथ प्रदर्शन कराने में भी वह सहायक होता रहेगा। जड़-जगत् का विज्ञान-विधान, जहाँ 'नाश' को निमंत्रित करनेवाले मोहावरण में मानव को विजड़ीकृत करता रहा है, एवं स्वाधीन वातावरण में परतंत्रता के जन्तुओं को पोषित करता है, मानवता को हृदय-हीन यांत्रिक वस्तु में परिवर्तित कर रहा है, वहाँ इस देश के विमल विज्ञान-वारिधि में अवगाहन कर मानव ने त्राण ही प्राप्त किया है; विश्व कल्याण की पुनीत भावना से पथ प्रशस्त किया है।

यद्यपि विज्ञान की वर्तमान मोहक माया में, रश्मि-रज्जुओं के सहारे आधुनिक मानव ने गगन-गति साध्य कर ली हो, सौर-मण्डल की सीमा को 'नाप' लेने का साहस किया हो, वायविक विविध स्तरों को चीर कर नक्षत्रों के निकट पहुँचने एवं भौमलोक के अधिवासियों से स्नेह-संधान करने का साहस सेवित किया हो, या गगन-जटिल ज्योतिर्मयपिण्डों से उनके निर्माण का मर्मावलोकन कौतुक किया हो, हिमांशु के शरीर के छिद्रों की छान-बीन की हो, अथवा अक्षर के अस्तित्व, शब्दों का अमरत्व, अणु-अन्वीक्षण कर उनसे भी अपने जीवनानन्द के साधनों की वृद्धि की हो, तथापि यह सब भौतिकवाद के भाव-भुवन में लोल-लिप्सा की आधार-भित्ति पर ही हुआ है। अतएव लोक-कल्याण की पुनीत भावना से अभिभूत, त्याग-तप:साध्य 'श्रेयो लाभ' एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि का आदर्श अन्यत्र कैसे उपस्थित हो सकता है। वाताम्बुपर्णाशन वल्कल-वसन-विधान कर, निरन्तर ज्ञान-साधना-रत उदार अन्तर्भावना एवं निर्मल-मानस के अन्वेषण आविष्कार, स्वार्थ-विरहित वायु-मण्डल-विनिर्मित निर्मल-विज्ञान ही है और सहस्रों वर्षों से हम पर आशीर्वाद

समान छाये हुए हैं । यद्यपि आधुनिकता की टक्कर में भी, मानवता के विद्रोहियों के संहार के लिए, अनेक वायवास्त्र, अग्न्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, आदि विविध वाणशस्त्रास्त्र, रासायनिक प्रयोग, आर्य चाणक्य-चर्चित चामत्कारिक प्रकट-अप्रकट विधानों का वर्णन-विस्तार यहाँ अपेक्षित नहीं है, वर्तमान की अधिकांश वस्तुओं को अतीत के अन्तर्पट में अवलोकन किया जा सकता है । आधुनिक अन्वेषणों के मूलाधार को प्राचीनता के प्रच्छन्न वेष में, मर्यादा की मानभूमि पर ही परिदर्शित किया जा सकता है। विज्ञान के विविध क्षेत्र में जो प्रगति नवयुग-निर्माता कहे जानेवाले विध्वंसक युग ने की है, उस प्रगति का सूक्ष्मतम परिणाम, किसी स्वतन्त्र-रूप में सिद्धान्त की तरह पुराकाल के मानवोत्तर-पुरुषों ने किया है, जिन्हें साधन-हीन युग के किन्तु महान् सु-संस्कृत सुवर्ण-काल के स्रष्टा कहने को विवश होना पड़ता है । अणु-परिमाणुओं के अन्तर-तम प्रदेश का पृथक्करण कर भूस्तर के विभिन्न भागों की रचना-सौष्ठव का सिद्धान्त प्रतिपादित कर, गगन की अगम-गौरव-गरिमा के गम्भीर भेदों को प्रकट कर, 'करतलामलकवत्' जिन्होंने समस्त ब्रह्माण्ड का पर्यवेक्षण किया है, जिन्होंने जलचर, नभचर, स्थलचर, उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, कीट-पतंगादि सभी प्राणि-विशेष की उत्पत्ति-स्थिति-गति के कारणों को सकौतुक प्रस्तुत किया है, ज्ञान-लोक के विभिन्न-प्रदेश की सफल यात्रा कर, अनेक ज्योतिर्मय रत्न-राशि को प्रकाशित करने का श्रेय सम्पादित किया है, आज उनकी महती सेवाओं के समक्ष, आधुनिक चकाचौंध से चमत्कृत मस्तक भी सविस्मय नमित हुए बिना नहीं रह सकता ।

विज्ञान का मूल्य पुरातन साहित्य में

इस बात को स्वीकृत करना पड़ेगा कि विज्ञान के बहुत से अङ्ग का मूल हमारे पुरातन-साहित्य में सन्निहित है । उसके वास्तविक रूप को समझने की शक्ति में चाहे अल्पता आ गयी हो, गहराई में जाने का सामर्थ्य हममें न रहा हो, यह स्वाभाविक है कि साधन-सुलभ वस्तु के साधारण-श्रम से दर्शन हो जाने पर अनेक आवरणों में रक्षित वस्तु के श्रमसाध्य रूप का अवलोकन करने का कौन प्रयत्न करे ! मौलिक-रूप के परिज्ञान में तत्वान्वेषिका बुद्धि-शक्ति की जरूरत होती है, परन्तु जब साधन-सम्पन्न युग ने उन्हीं वस्तुओं को नवावरण के विकसित-रूप में प्रत्यक्ष प्रस्तुत कर दिया तो, श्रम-शील स्वभाव

ने आत्म-रूप को उस चकाचौंध में भुला देना आरम्भ कर दिया। वृक्षोद्‌भिज-विज्ञान को ही लीजिए, उसके अन्तर्तम-प्रदेश का जैसा विकसित-स्वरूप, आधुनिकों ने साधनों द्वारा प्रत्यक्ष प्रस्तुत किया और श्रेय सम्पादित किया, उसी के मूल को छान्दोग्य और बृहदारण्यक के वृक्षों में जीवविज्ञान एवं मानवीय शरीर से समता प्रदर्शित करने वाले अंश को जिन्होंने इस दृष्टि से अध्ययन का विषय बनाया होगा, वे जान सकते हैं कि जगदीशचन्द्र बोस के शत-सहस्त्रा पूर्ववर्तियों ने इस समता के सिद्धांत को स्थापित करने के तात्विक-सूक्ष्मान्वेषण का श्रेय प्राप्त किया है। फिर चाहे वे यंत्रों के द्वारा हलचल को प्रत्यक्ष करने वाले प्रयोग प्रस्तुत न भी कर सके हों, परन्तु उनकी अन्तर्भेदिनी-दृष्टि के इस अनुसन्धान की महत्ता को कौन अस्वीकार कर सकता है? नवयुग की परिभाषा में महर्षियों के इस प्रसाद को आज फिर कोई भी अपना अन्वेषण क्यों न कहे, क्योंकि लोक-कल्याणेच्छुजनों ने 'सर्वाधिकार रक्षित' कर कोई 'रजिस्ट्रेशन' गवर्नमेन्ट से नहीं करा रखा था। विकासवादक सिद्धान्त को ही देखिए, उसके प्रतिपादक 'डार्विन' को मौलिकता का महात्मा समझने वाले, प्रलयोपरान्त सृष्टि के आरम्भ की रहस्य भरी हुई, रूपकालंकार युक्त-अवतार-मीमांसा और उसका दार्शनिक गाम्भीर्ययुक्त सविस्तर-गाथाओं की गरिमा का गूढ़ समझने का प्रयत्न करें तो, मानव के मूल-रूप, एवं क्रम-विकास का जैसा उदात्त स्वरूप प्रत्यक्ष हो जाता है, वह आश्चर्य-चकित कर छोड़नेवाला है। किस कोटि की अन्वेषण-क्षमता एवं प्रगतिशीलता थी उन महान् आत्माओं की! सृष्टि-विज्ञान की गूढ़-कल्पना से लेकर प्रलयान्त की पौराणिक कल्पनाएँ, मन्वन्तरों का क्रम-विवेचन, हिम-तामस, वाष्प-युगादि से लेकर, जीवोत्पत्ति अणु-परमाणु-शून्यवाद, अक्षर की अविनश्वरता, उसकी क्रमोन्नति का चिरन्तन-तात्विक-दार्शनिक चिन्तन, इतना सूक्ष्मातिसूक्ष्म और कल्पनाओं का रूपकमय आश्चर्यजनक प्रयास भी अद्‌भुत विदित होगा। मरणोत्तर जीवन-विज्ञान के विषय में तो आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त की समता, स्थूल-सूक्ष्म जगत् की भव्य-भावना, अणु-परमाणु में व्याप्ति एवं मानसतत्वों का मार्मिक गहन-विवेचन, तत्व-चिन्तन की आध्यात्मिक-विचारणा इतनी उन्नत और महान् है कि हमारा यह देश आज इस ज्ञान-रश्मि-राशि से सुस्नात हो, जगद्‌गुरु बना हुआ है। शरीर की आध्यात्मिक रचना-भावना और उसका परिपोष एवं निदानोपचार-चिकित्सा की आयुर्वेदीय-पद्धति, वनस्पतियों के विज्ञान का तलस्पर्शी तत्त्वान्वेषण एवं

गणित-शास्त्र के अनेक मौलिक महत्त्वपूर्ण विधानों की देन ने, विश्व के समक्ष भारत की सर्वोपरिता प्रस्थापित कर दी है। गणना-शास्त्र के अनेक आविष्कारकों की गुरुता का लोहा तो जगत् ने सादर स्वीकृत किया है, और अनुकरण करके अपने शास्त्रों को भी गौरवान्वित बनाया है। राजनीति में आदर्श प्रणालिकाओं के निर्माता होने के कारण तथा शासन-तंत्रों के अनेक विधि-विकास की विस्तृत व्याख्याएँ, धर्म, अध्यात्म और सत्य का तदन्तर्गत सुन्दर समन्वय होने के कारण, साम्राज्य-लिप्सा द्वारा पर-शोषण नहीं; किन्तु उच्च ध्येय की सिद्धि-समृद्धि का सद्धेतु साध्य रहा है। इसी प्रकार जड़ से लेकर चैतन्यों तक; आत्मा से परमात्मा पर्यन्त और अणु-परमाणु से महत्तत्व तक, सृष्टि से प्रलयान्त एवं पुनर्विकास के चिरन्तन चक्रक्रम का वैज्ञानिकरूपेण ऐसा मौलिक, रहस्यमय तथा रूपकालंकृत विवेचन है कि विश्व-साहित्य के समक्ष अपना स्वतन्त्र विशिष्ट स्थान रखता है। आज हमने पुराणों को, उपनिषदों को, पर-प्रेरित ज्ञान-वशंगत हो अज्ञानभावेन 'गल्पा-विधान' से सूचित करने का साहस किया है, और पार्जीटर की प्रेरणा पाकर उसमें तथ्यान्वेषण की कुछ भावना भी की; परन्तु अब तक भी हमने उनके गहन-तत्वों का चिन्तन स्वेच्छया नहीं किया है। सृष्टि-लयान्त की कल्पना से लेकर मानव के विकास, व्यवहार और नैतिक धरातल पर आश्रित, राजनीति समाज के विविध-विधानों का धर्म-अध्यात्म-विज्ञान-मिश्रित सुन्दर समीकरण उनमें से खोजने की वस्तु बनी हुई है। प्रागैतिहासिक एवं सुमेर-इजिप्शियन संस्कृति की संगति के समीक्षण करने की भी आवश्यकता अवशेष है। इस अकिंचन ने इस दिशा में जो स्वल्प सेवा की है, वह पत्रों में यथासमय प्रकट है और उन पर से पुराणेतिहास-विज्ञान के समन्वय के तथ्य की महत्ता स-विस्मय मान्य करने को विवश होना पड़ा है। यद्यपि आज हमारे उपलब्ध-साहित्य का भी सर्वांश दृष्टि-सुलभ नहीं है, तथापि प्राप्त ज्ञान-राशि में से जिस किसी अंश का विवरण विलोकित करते हैं, तो आश्चर्य-विमुग्ध बने बिना नहीं रहा जाता। अनेक शताब्दियों-पूर्व भूगोल-खगोल के मूलभूत तत्वों एवं गतिविधि के विषय में जो सिद्धान्त पुराकाल में प्रस्थापित किये गये हैं, वे नवतम समस्त साधन-सम्पन्न सूक्ष्मदर्शी वर्तमान-युग में भी प्रगति-पथ के प्रदर्शक दीप-दण्ड बने हुए हैं।

भारतीय ज्योतिर्विज्ञान

अनेक सहस्राब्दियाँ व्यतीत हुईं, देश-काल, और वस्तु-विज्ञान के आदितम-

साधन-स्वरूप, भारतीय ज्योतिर्विज्ञान की महत्ता जगन्मान्य हो चुकी है। मान और परिगणना के अनुदिन आवश्यक 'माध्यम' होने के कारण, हमारे जीवन में लौकिक और आध्यात्मिक साधन-साध्य किये जाने के लिए इस विज्ञान के अवलम्बन के सिवा 'नान्य:पन्था विद्यते ।'

आज समस्त विश्व के प्राणि-मात्र को, प्रत्यक्ष चमत्कृत कर रखनेवाले खगोलीय ज्योतिर्मय पिण्डों, नीहारिकाओं और लक्ष-लक्ष तेजपुञ्ज, तरल तारागणों ने अनन्तकाल से आकर्षित कर रखा है। अनेक विचारकों के कल्पना-प्रचुर मस्तिष्क को उस लोक की सैर करने को अनायास आमंत्रित किया है। इस ज्योतिर्विज्ञान को जगत् के सर्वाधिक पुरातन साहित्य—वेद ने भी अपना एक विशिष्ट 'चक्षुषांग' स्वीकृत किया है, तथा इस विज्ञान से अपरिचित को 'चक्षुषांगेन हीनो न किंचित्कर:' बतलाया है।

पुरातनतम वेत्ताओं ने दीर्घ-कालीन श्रम, अन्वेषण और असीम साधना द्वारा इस विज्ञान के अंतःप्रदेश में प्रवेश प्राप्त कर, सुविधा के लिए न जाने कब से गगन-मण्डल को २७ तेजस्वी नक्षत्रों, १२ राशियों और ३६० अंशों में विभाजित कर उनके स्वरूप-स्थिति तत्त्व, गतिविधि, दूरी और जीवन के लिए प्रभावकारी परिणाम का जो निष्कर्ष, सिद्धांत-रूपेण प्रस्तुत किया है, साधारण मतभेदों के पश्चात् भी, वही सर्वजगत् में सर्वमान्य बना हुआ है। अनन्त-काल से लेकर आज भी उसी को आधार मानकर, विश्व के विशिष्ट वैज्ञानिकों की कल्पना, स्वर-संचार करने की सुविधा प्राप्त कर सकती है। उन गणनाओं की सिद्धांत-सीमा को छोड़, पृथक् कोई नवीन आधार-भूत तत्त्व स्थापित नहीं किये जा सके हैं। सभ्यता की परिसीमा को स्पर्श करने वाले उन महज्जनों के अटल सिद्धांत अद्यावधि अजेय 'एवरेष्ट' बने हुए हैं। नि:सन्देह, उन आधारों को पथ-प्रदर्शन का माध्यम मान कर खगोल-विज्ञान में जितनी प्रगति साध्य हुई है, उसका श्रेय अनुसंधान-प्रिय पाश्चात्यों के विपुल व्यय, अतुल श्रम और सजग-जिज्ञासा को है। तथापि आरम्भिक आधारों के मानदण्ड को अणु-मात्र भी वे विचलित नहीं कर सके हैं। नवानुसंधानों की सीमा भी पृथ्वी की गोलाई की तरह उसी स्थल पर ला कर छोड़ गयी है। यद्यपि खगोलीय अनेक समस्याओं को उन्होंने सरल बनाया है, विभिन्न भागों की भूमिका के निकट पहुँचने का सफल यत्न भी किया है, परन्तु मौलिक महत्त्व के मतों के मामलों में दिव्यद्रष्टा पुरातनाचार्यों के समक्ष उन्हें प्रणमित ही होना पड़ा है। युग-युगान्तर में कदाचित् हो जाने

वाली खगोलीय चमत्कृति-कर घटनाओं के विषय में जहाँ पश्चिम को कल्पना का आश्रय ग्रहण कर तिमिरावरण में प्रकाश प्रतीक्षा-वश प्रवेश करना पड़ता है, वहाँ पुराण-पंडितों के सिद्धान्त-सूत्रों में उनका स्रोत भी सहसा प्राप्त हो जाता है, और उस समय उनके महत्तम अन्वेषक-मस्तिष्क की सूक्ष्मदर्शिता के समक्ष, विनम्र-भावनाञ्जलि अर्पित किये बिना नहीं रहा जाता। यद्यपि असीम आकाश की अनेकतम-समस्याएँ अनेक सदियों से आज तक अस्पृश्य ही बनी हुई हैं, विश्व के निर्माण और 'लय' के गम्भीर प्रश्न का उत्तर भी समाधान का विषय नहीं बन पड़ा है; परन्तु जितनी भी कल्पनाएँ और अवलोकन, किसी अतीत के सुवर्ण-युग में किये जा चुके हैं, उनसे कोई भी क्रांति-कारक प्रगति नहीं हो पायी है. जिसे इस युग के विज्ञान की अप्रतिम देन कहा जा सके। इस विषय के प्रति असीम अनुरक्ति ने असंख्य धन-राशि का विपुल व्यय करवाया है, साधनों की सुलभता प्राप्त की है, अनेक वस्तुओं का विकसित स्वरूप प्रत्यक्ष भी किया गया है; तथापि दिव्य-द्रष्टाओं के विधानों का अमरत्व आश्चर्यजनक रूप में बना हुआ ही है। चार नवीन नक्षत्रों—उपग्रहों का अनुसंधान कर, चाहे आज अपनी प्रशस्ति-पताका फहराने का कोई प्रयत्न करे, किन्तु लक्षावधि ज्योतिष्पिण्डों के प्रसार में जिन सूक्ष्मावलोकन-क्षम साधकों ने, सर्वाधिक प्रभावोत्पादक प्रकाश-पुञ्जों को जागतिक परिणामकारी, एवं जीवन के निरन्तर निकट-सम्बन्धी-केन्द्र मानकर जिस राशि-नक्षत्र-ग्रहों की मर्यादा में आबद्ध कर दिया है, उनकी उस मर्यादा को लाँघ कर कोई विशेष प्रभावकारी नक्षत्र-ग्रह, अद्यावधि नवीन नहीं निश्चित किये जा सके हैं। सूर्य-मण्डल से भी अनेक गुणाधिक अनेक ज्योतिष्पिण्डों के विद्यमान रहते हुए, केवल विश्व के निकट सम्बन्धियों में 'नव' की ही मर्यादा मान ली गयी, तब अनेक उपग्रहों के विज्ञान से वंचित रह कर यह नहीं हुआ है। अतएव उनकी अन्वेषण-क्षमता के समक्ष, आधुनिक विज्ञान को भी सिमिट कर रह जाना पड़ता है। शत-सहस्रशः ग्रहोपग्रहों, तेजस्वी तारक-पुंजों के तत्वावलोकन के पश्चात् भी सौर-परिवार की सीमा को छोड़ उनकी साधना के समक्ष, अन्य तेजोमण्डलवर्तिपिण्ड, अधिक तेजस्वी विदित नहीं हुए। उन्होंने इन ग्रहों के मूल कारणों, तत्वों और इनके निर्माण में अपने ज्ञान-किरण का प्रकाश पहुँचाया है, और इनके सृजन, अंतरङ्ग का अवलोकन भी किया है। जिस समय रवि-मण्डल, सौर-जगत् के सीमान्त प्रदेश पर्यन्त सूक्ष्मबाण के स्वरूप में व्यापक रूप लिए हुए था,

उस समय उस बाण-राशि का विभिन्न-अंश, एक पृथक् वेग से पृथक् प्रवहमान हो रहा था। कालक्रम-वश गतिविधि के कारण उस पृथकता में एकत्व संभावित हुआ और बाण-राशि के भार केन्द्र की चतुःसीमा में पश्चिम से पूर्व-वर्तिनी एक आवर्त-गति प्रादुर्भूत हो गयी, फलतः तापविकीर्ण के समवेत वह विशाल ज्योतिष्पिण्ड, नियमानुसारी हो, मध्याकर्षण में संकुचित होता चला गया। इस कारण यथाक्रम आयतन में अल्पता आने लगी और आवर्तन का परिवर्धन स्वाभाविक हो गया। और इस वेग-वृद्धि के साथ ही, केन्द्रापसरण की प्रवृत्ति में भी प्रगति संभावित हुई। परिणामतः उस द्रवज-पिण्ड का निरक्ष-दिग्भागीय अंश अनुतप्त होने लगा; एवं मरुप्रदेश की ओर वह संकुचित रूप ग्रहण करने लगा। क्रमशः इस संकोची भाव और केन्द्रापसरण प्रगतिशील रहने से मध्यवर्ती तरल पिण्ड, निरक्ष प्रदेशीय स्फीत से विच्छिन्न हो गया और उसका दृश्य, एक करांगुलीय मुद्रिका के आकार का बन गया। तदंतर्गत पिंड, अपने एक-एक अक्ष पर पश्चिम से पुर्वानुवर्ति हो, परिभ्रमित लक्षित होने लगा और क्रमागत घनीभूत एवं संकुचित बनता हुआ, एक विस्तृत चक्राकार-मुद्रिका के अनुवर्तन में परिवेष्टित हो, भ्रमण-शील विदित होने लगा। और उस पिण्ड का संकोच क्रम तो जारी ही रहा है। इस क्रम-कारण-वश एकाधिक मुद्रिकाएँ परिलक्षित होने लगीं, इनकी संख्या, 'नव' पर्यन्त रही है। और वह मध्य-स्थित शीर्ण-काय तरल-पिण्ड, घनत्व लिए अपनी वेगवती-गति-वश निज अक्ष पर आवर्तनशील बना रहा; अपने संकोच-शील स्वभावानुसार परम-ताप का प्रसव कर, चतुर्दिक् विस्तृत करता रहा है। यही वे मुद्रिकाएँ हैं, जो एक-एक ग्रहों के सृजन के मूल में है। इन मुद्रिकाओं की सर्वदा समान गति नहीं है। विभिन्न अंशों, परिमाणों में सार्द्र बनी रहने के कारण, तथा बल, आकर्षण के अवलंबन-वशवर्तिनी हो, वह विभिन्न भागों में विभक्त बनी रही, तथापि वे खण्ड, विभिन्न वेग से उसी एक पथ पर ही भ्रमित होते रहे, और काल-क्रमागत परस्पराकर्षण वश हो, पुनः एक पिण्डत्व में रूपान्तरित भी हो गये। प्रथम मुद्रिका गोलाकार हो, उस आदिम विस्तृत पिण्ड के चारों ओर भ्रमित होती रही और यही क्षुद्र-गोलाकृतियाँ एक-एक ग्रहों के रूप में बन गयीं, और उस मूल बृहत्पिंड से, जिसने द्रवता से घनत्व में परिवर्तित हो, अपने अङ्ग से अन्य ग्रहों का प्रसव किया था, क्षुद्र-पिण्ड-रूपी ग्रहांशों ने भी शैत्य और घनत्व प्राप्त कर एक-एक मुद्रिका का प्रादुर्भाव किया। ये मुद्रिकाएँ पिंडत्व में परिणित हो उप-ग्रह रूप में प्रकट हो गयीं!

इसी प्रकार पृथ्वी (जो स्वयं एक ग्रह है) से भी एक, और अन्य भौमादिक ग्रहों से एकाधिक हिम-मय पिण्डों का प्रसव हुआ। इधर पृथ्वी तो अन्य अनेक कारणवश तरलता से घनत्व में परिणत हो गयी और अपनी ग्रह-सृष्टि-क्षमता को भी खो बैठी, यद्यपि आवर्तनजात केन्द्रापसरण से भू-मण्डलीय निरक्ष-भाग आज भी स्फीत ही बना हुआ है। और परिणाम यह हुआ है कि उत्तर-दक्षिण दिग्भाग के मेरु चपटे हो गये हैं। यह प्रारम्भिक जन्म-कथा है। आज भी यह नहीं कि खगोल-जग की सृजन-शक्ति या विकास-क्रम की प्रगति अवरुद्ध हो गयी हो। आज भी अगणित तारकवृन्द जीवनोन्मुख बने हुए हैं, बाष्प से आवृत हो, गगन-मण्डल की विशाल-परिधि को परिवेष्ठित किये हुए हैं। कौन कह सकता है इस विचित्र सृष्टि-क्रम से, प्रचुर प्रकाशपिण्ड प्रसूत हो, विचित्र ग्रहोपग्रहों के प्रकट में समर्थ नहीं हो सकेंगे ? छोड़िये यह वैज्ञानिक-तत्त्व-चिन्तनोन्मुखी पारिभाषिक रस-रहित चर्चा को मर्यादित ही।

आइए, पुनः मेरे साथ हो लीजिए। मैंने यूरोप के विविध प्रदेशों की यन्त्र-वेधशालाओं को अपनी यात्रा-प्रसंग में सहज देखने का प्रयत्न किया है। ज्योतिर्विज्ञान के इस जनक देश भारत की अपेक्षा, आज सहस्र-शत-गुण अधिक अनुराग, इस विज्ञान की ओर उन राष्ट्र-जनों का सजग है। उदार अन्तःकरण एवं मुक्तहस्त हो वे साहस-पूर्वक प्राणार्पण की प्रवृत्ति लिए प्रस्तुत हैं। अनन्त काल से मानव-मन को चकित-स्तम्भित-मुग्ध बनाये रखनेवाले इस अज्ञात-जगत् के साथ अपना निकटतम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए वे आतुर बने हुए हैं। **निःसन्देह उनकी जिज्ञासा-वृत्ति और विज्ञानानुरक्ति धन्य है।** यदि भारतीय ज्योतिर्विज्ञान की रचना के मूलाधारभूत तत्त्वों, सिद्धान्तों-स्रोतों और विविधांगों के सूक्ष्म-रहस्यों से वे अविदित न होते तो उन्हें कल्पनाश्रित तत्त्वों के अवलम्बन-वश, जो रहस्य-ज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों के स्थिर-रूप भारतीय पुराकालीन अन्वेषण-वश सुलभ हो सके हैं, आरम्भ में स्वैर-संचार, भ्रम-भ्रमण नहीं करना पड़ता। नव-प्रथानुसन्धान का कठिन कृत्य नहीं करना पड़ता। कुछ समय हुआ मैंने 'ग्रीनविच' वेधशाला के निरीक्षण का संक्षिप्त-वृत्त प्रकट करते हुए बतलाया था कि सूर्य-मण्डल के चतुर्दिक् सन् ३६ के जून में, अनेक लक्ष योजन की परिधि में क्षणिक विकार (अरोरा-बेरेलिस) उत्पन्न हुआ था। उस विकार के मूल कारणों की खोज में वैज्ञानिकों के मस्तक विस्मय-विमुग्ध बने हुए थे। सापेक्षवाद के सिद्धान्त समर्थक आइन्स्टीन जैसों ने उसे एक 'विस्मयोत्पादक' घटना और अनुसन्धान का

विषय बतलाया था। उस समय 'ग्रीनविच' के सौरचित्रों की चर्चा के समय मुझे अपनी महान् आत्माओं के महती अनुसंधान-क्षमता पर गर्वानुभव हो रहा था कि असाधन-युग के उन आचार्यों ने सूखे बाँस की कमचियों पर करतल में गगन-गणना कर यह सब और न जाने क्या-क्या देखकर पहिले ही से रख छोड़ा था। वराहमिहिर ने अनेक शताब्दियों के प्रथम इस घटना को भी देख लिया था और सौर-मण्डल की ततोधिक हुई और होने वाली घटनाओं के विदिध रूपों एवं परिणामों तक पर प्रकाश डाला है। यह है भारतीय शास्त्रों की सूक्ष्म-दर्शिता और सामर्थ्य ! कौन उनकी महत्ता से इनकार कर सकता है ? ज्योतिःशास्त्र के खगोलीय-गणित की निःसन्दिग्धता तो सर्व-स्वीकृत है, परन्तु उनके मौलिक विधानों की मर्मावलोकन-क्षमता कितनों में है ? कालगति-वश जो साहित्य अनुपलब्ध है, उसकी तो व्यथा-कथा ही व्यर्थ है। और इस विषय का अभिन्न एवं विभिन्न अंग जिसे फल और संहिता की संज्ञा से अभिहित किया जाता है, हम कितनी उपेक्षा कर रहे हैं ? यह विज्ञान भी अद्यावधि विश्वास और अविश्वास के प्रचण्ड झंझावातों, संघर्षों के बीच काल-गतिवश आत्मजनों से उपेक्षित बनकर भी अपना अचल अस्तित्व बनाये हुए हैं। यह इसके अतीत की गौरव-परम्परा का प्रमाण है। विश्व भर के विज्ञान के समस्त अनुसन्धानों में आज भी साहस-पूर्वक कहा जा सकता है कि ऐसा कोई विज्ञान अन्य नहीं है जो भावी कथन की क्षमता रख सकता है। भारतीय विज्ञान-वेत्ताओं की यह एकमात्र अनुपम अद्भुत देन है। दिव्य-दर्शी आचार्यों ने इस भावी-सूचक साहित्य का विस्मयोत्पादक सृजन किया है। ज्योतिर्मय गृह-तारकों से जो परिणाम-दर्शन किया है, वह विश्व के कल्याण की उन्नति भावना के लिए आशीर्वाद-स्वरूप है। दुर्भाग्यवश अदूरदर्शियों ने इस महान् विज्ञान को आज व्यवसाय और जीवन-वृत्ति का साधन बना, अविश्वास की भूमि पर रखा है। यद्यपि केवल भावुकता और अंध-विश्वास की मनोभूमि पर पनपने—परिपोषित होने वाले ज्ञान-विज्ञान, चिरकाल जीवित नहीं रहते, समय परिवर्तन के साथ वे काल-विलीन हो जाते हैं, परन्तु जिनकी पृष्ठ-भूमि सत्य और विज्ञान के दृढ़ आधार पर अवलम्बित होती है, वे विश्व के विषम वात्याचक्रों के विविध आघातों में आन्दोलित, धूल-धूसरित होते हुए भी अमर विधानों की तरह शाश्वत रहते हैं।

ज्योतिर्विज्ञान के अंग

ज्यतिर्विज्ञान का यह भावी-भाषित करने वाला अंग, वेद-विहित पुरातन-

तम है और उसके विशिष्टांग के रूप में सनातन चला आ रहा है । गणित-ज्ञान की वैज्ञानिकता को सत्य स्वीकृत करने वाला समाज, उसी के परिणाम-प्रदर्शक अंग को किस प्रकार उपेक्षित करता है । तीन विभागों में विभाजित ज्योतिर्विज्ञान, केवल एक भाग गणित पर्यन्त ही 'शास्त्रीय' कहा जा सके, और अवशिष्ट दो भाग अवैज्ञानिकता के आवरण में प्रच्छन्न रहें । 'अपूर्णता' में पूर्णता की स्थापना कीजिये, यह कहाँ तक सुसंगत है ? त्रिस्कंध ज्योतिष ही एकांग-पूर्ण विशाल है और उस पूर्णांग की ही शास्त्रीयता सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित है ।

ज्योतिर्विज्ञान के इस परिणामक.री अंग (अंश) की सत्य सनातन वैज्ञानिकता के विषय में विविध, काल, देश और भाषाओं के प्राक्काल से अद्यावधि प्रमाण उपस्थित किये जा सकते हैं । सहस्रों वर्षों से भारत ही नहीं, अन्यान्य यूनान, ग्रीक, अरब आदि देशों में भी परम प्रतिष्ठा ही नहीं रही, किन्तु इस दिशा में परम प्रगति भी की है । उसके विकास की प्रवृत्ति में ग्रन्थ-राशि का निर्माण भी हुआ है । यही क्यों, भारतीयों में और उन लोगों में परस्पर बहुत-कुछ आदान-प्रदान भी हुआ है । अनेक शताब्दियों तक साम्राज्यों के पथ-पदर्शित करने में इस विज्ञान का बहुत बड़ा भाग रहा है—इसका साक्षी स्वयं इतिहास और हमारा पुरातन साहित्य है ।

मेरा स्वतः का भी अपना दीर्घकालीन प्रयोगात्मक आश्चर्यजनक अनुभव है । फलतः एक विरोधी वृत्ति से प्रवेश कर आज इस विज्ञान के सत्य विधान के समक्ष सादर मस्तक झुका देना पड़ा है । हमारे देश में ही नहीं, पश्चिमात्य प्रदेशों में भी इस विज्ञान के विविध प्रकार मानव के 'भावी' की जिज्ञासा-शमन के लिए अनन्त काल से प्रचलित हैं, और उनके मूल स्रोतों में भारतीय साहित्य ही सन्निहित है । तब हमारे अपने इस आश्चर्यजनक भावी विज्ञान-शास्त्र के प्रति अज्ञात-उपेक्षा और अवैज्ञानिकता का आरोप, क्षमा किया जाय, अपना आत्मीय अपमान ही है ! यहाँ इस विषय के प्रयोगात्मक उदाहरण या तर्क की तालिका देने या सत्य के असीमित प्रमाण प्रस्तुत कर विज्ञापन करने की न तो आवश्यकता है, न समय ही । परन्तु मैं अपनी समस्त शक्ति के साथ यह निवेदन करने की अवश्य आज्ञा चाहूँगा कि हमारे निकट जो **जगत् के प्रगतिपूर्ण विज्ञान के समक्ष, भावी सूचित करने वाला एक महान् शास्त्र है, उसकी अज्ञात उपेक्षा न की जाय** । अवश्य ही मैं उसके व्यवसाय और विकृत रूप से जनता को प्रवञ्चित करने वाली वृत्ति की

तीव्र भर्त्सना करने और नियन्त्रित करने की भावना में, उन सभी सज्जनों के साथ सहयोग करता हूँ, जो इसकी शास्त्रीयता स्वीकृत करते हुए आधुनिक रूप मात्र के प्रति अपना रोष प्रकट करते हैं। अन्यथा इस विज्ञान के द्वारा, यही क्यों, भारतीय समस्त विज्ञान के मूल में विशेषता ही रही है—जगत् का कल्याण, समाज का हित, जीवन का पथ प्रकाशमय प्राप्त हो सकता है।

पुरातन और पाश्चात्य-साहित्य का समन्वय कर इस दिशा में विविधांगों के तत्वों पर विश्लेषणात्मक दृष्टि से अपने कुछ विचार स्थिर किये हैं और उनके प्रयोगों पर मेरी आस्था भी है। इसी प्रकार गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त, सापेक्षवाद और खगोल-खचित-खग गणों द्वारा पौराणिक एवं औपनिषदीय सृष्टिलयान्त की कल्पना-रूपकों से पृथ्वी की आयुर्मर्यादा के विषय में भी धारणा की है। परन्तु यहाँ इतना समय और स्थान कहाँ है ? इस पर भी मुझे जिस क्षण सूचना मिली है, उससे तो मैं यह अपना निवेदन भी क्षिप्रा की सुरभित बात में केवल आरम्भ मात्र कर पाया था और इसी स्थल पर माता मन्दा-किनी के मन्द मधुर मलयानिल के मृदुल स्पर्श में अंजलि रूप में अर्पित कर रहा हूँ। इस थोड़े से क्षण में ऐसे महान् विषय पर जिसका मैं एक लघुतम विद्यार्थी हूँ, कैसे उसके विकसित रूप और विचित्र ज्योतिर्मय साम्राज्य की सैर कराने का साहस कर सकता हूँ। पुनश्च—सम्मेलन के साथ होने वाली इन परिषदों का 'स्वर' कहाँ इतना प्रभावोत्पादक है ? वर्षभर भी तो इनका जीवन नहीं, कि ये अपने अस्तित्व प्रमाणित करने के प्रयत्न में भी प्रगति कर सकें। आज तो इसी ज्योतिर्विज्ञान के विषय में बहुत से मतभेद और स्वैर-प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं। पंचांगों की अनेकता, निरंकुशता, दुराग्रह, नवीन और पुरातन शैलियों के संघर्ष, यह इस दैनिक जीवनोपयोगी-शास्त्र के लिए कितने विषम हैं, जिसकी कल्पना भी हमें नहीं होती है। जिस प्रकार कागजी-मुद्रा, गोल्ड स्टैण्डर्ड, स्टर्लिंग और विनिमय के अंतरंग को न जान कर उनके शासकीय मनोनुकूल प्रयोगों के कारण सर्वसाधारण से लेकर, सारे देश की कितनी हानि हो जाती है, यह सर्वसाधारण नहीं जान पाते। ठीक इसी प्रकार इस विज्ञान के अज्ञान और अवगणना तथा प्रयोग, प्रचार, अनियंत्रण, मतान्तर, स्वार्थ साधुत्व आदि के फलस्वरूप समाज के इस दैनिक व्यवहारोपयोगी शास्त्र-द्वारा कितना विपरीत प्रभाव पड़ रहा है, इसका हमें अनुमान भी नहीं हैं।

आज विश्व में नव-विधान की आतुरता सेवित हो रही है। मानव-मन

में नव-निर्माण के परमाणु, जड़-संस्कृति के इस अन्तिम क्षण में जागृत हो उठे हैं । अतएव इस नवयुग का स्वागत करने के लिए ज्योतिर्विज्ञान से हम साञ्जलि आलोक-दान की कामना करें, जिससे हमारे भावी-युग में प्रवेश करने का प्रशस्त-पथ प्रचुर प्रकाशमय बन जावे । वास्तविकता के दर्शन की आतुरता विज्ञान के जन्म की आभारी है । ऐसे समय हम उस तर्क और गणना का सम्बल ग्रहण करें, जो सारे विज्ञान के क्रम-विकास के 'मूल' में मण्डित है ।

ज्योतिर्विज्ञान के एक छोटे से सेवक के नाते यह निवेदन करने का साहस करूँ तो आयुक्तिक न होगा, कि मैं तो नवयुग के स्वागतार्थ आशा की उज्ज्वल किरण को सुदूर—क्षितिज से प्रकाश-पुञ्ज लिए, अधिक-अधिक निकट आती हुई देख रहा हूँ । मुझे विश्वास होता है कि अतीत के उज्ज्वल सुवर्ण-युग को अपने अमल अंचल में लिए, यह उज्ज्वल किरण, गौरव के हिमशैल-शृंग पर हमारी पुनीता संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा कर, अपने पावन प्रकाश से सुस्नात और नव तेजो-राशि से परिपूरित कर देगी । राष्ट्रभाषा की इस सदुद्योगमयी प्रवृत्ति और प्रगति को आशा के समुज्ज्वल प्रकाश में निहारता हुआ पुनः एक बार इतना समय और सम्मान प्रदान करने के लिए विनम्र-भावेन आभार मानता हूँ और विराम ग्रहण करता हूँ ।

अभिभाषण*-१०

डॉ० सत्यप्रकाश

उपस्थित साहित्यानुरागी देवियो और सज्जनो,

आज से लगभग चार वर्ष पूर्व इसी अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के २९ वें अधिवेशन में जो पुणे में हुआ था, मुझे इस विज्ञान-परिषद् के सभापति होने का गौरव प्राप्त हुआ, और आज फिर जयपुर के इस अधिवेशन में मुझे उसी प्रकार की सेवा करने का अवसर दिया जा रहा है, उससे सम्मेलन का मेरे ऊपर अनुग्रह स्पष्ट है। इस कृपा के लिए धन्यवाद तो दिया जा सकता है, पर इतने शीघ्र ही इस आसन पर मुझे दोबारा बिठा देने से यह अभिप्राय भी व्यञ्जित होता है कि हिन्दी साहित्य के वैज्ञानिक क्षेत्र में सेवा करने वालों की संख्या बहुत सीमित और संकुचित है। हिन्दी-भाषी प्रान्तों में इस समय ८ विश्वविद्यालय हैं—प्रयाग, काशी, लखनऊ, आगरा, अलीगढ़, पटना, नागपुर और लाहौर के विश्वविद्यालय जिनके अधीन अनेक वैज्ञानिक विभाग हैं। भारतवर्ष के अन्य भाषा-भाषियों को यह सौभाग्य नहीं प्राप्त है, बंगभाषियों के २ विश्वविद्यालय कलकत्ता और ढाका, मराठी के दो नागपुर और बम्बई, गुजराती वालों का एकमात्र बम्बई, दाक्षिणात्यों की अनेक भाषाओं के बीच में ३-४ विश्वविद्यालय। इस दृष्टि से हिन्दी-भाषियों को एक विशेष सुविधा प्राप्त है। अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ भी हिन्दी-भाषी प्रांतों में अधिक हैं। ऐसी परिस्थिति में **जहाँ वैज्ञानिक विभागों में सैकड़ों विशेषज्ञ हिन्दी प्रान्तों में कार्य कर रहे हों, हिन्दी साहित्यिक क्षेत्र में इतने कम वैज्ञानिकों का सहयोग होना देश के लिए कुछ अधिक गौरव की बात नहीं है।** इसके तीन कारण रहे हैं—हिन्दी-प्रान्तों के विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिक विभागों पर अन्य-भाषी वैज्ञानिकों का प्रभुत्व, जो अब शनैः शनैः कुछ कम अवश्य हो रहा है; हिन्दी-भाषी वैज्ञानिकों में भी भाषाज्ञान का कुछ अभाव और अंग्रेज़ी के प्रति उनकी उदासीनता। २० वर्ष पूर्व की अपेक्षा इस समय परिस्थिति में

***३२वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् २००१ जयपुर अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

कुछ उन्नति अवश्य हुई है, और यह सन्तोष की बात है पर अभी हमें इस ओर बहुत कुछ करना है।

पुणे के अधिवेशन में जिस समय मैंने भाग लिया था, उस समय इस विश्वव्यापी युद्ध की परिस्थिति कुछ और थी, और इन चार वर्षों में युद्ध के क्षणिक विराम के अब दिन दूर नहीं हैं। मैं यह तो नहीं कह सकता कि युद्ध का अन्त इस वर्ष हो जायेगा, कोई कारण नहीं कि निकट भविष्य में फिर युद्ध आरम्भ न हो जाय। यूरोप में देशों का भाग्य-निबटारा संभवतः कुछ दिनों के लिए इस वर्ष अवश्य हो जाय, पर एशिया के युद्ध का सूत्रपात जो इस महायुद्ध के समय हुआ है, इतना शीघ्र अन्त नहीं होने का। भविष्य में हमारा यह महाद्वीप भी प्रचण्ड युद्ध-क्षेत्र रहेगा, इसके चिह्न अब स्पष्ट हैं। इन युद्धों के प्रति हमारे देश का मौन धारण करना, उदासीन रहना अथवा अपने को तटस्थ रखना कभी संभव न होगा। हम चाहे कितने भी शान्ति-प्रिय रहें, दूसरे हमें शान्ति-प्रिय रहने न देंगे, इसलिए वर्तमान युद्ध के विराम और विश्राम के अनन्तर भी हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है। मैंने युद्ध-सम्बन्धी परिस्थिति की ओर इसलिए निर्देश किया, कि आजकल के युद्ध का बहुत कुछ संचालन वैज्ञानिकों के हाथ में है और युद्धकालीन कारखानों का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है। सफल युद्ध के लिए सफल वैज्ञानिक शिक्षण का होना अनिवार्य है। युद्ध जब तक भारतीय जनसमूह का युद्ध नहीं होगा, तब तक भाड़े के टट्टू सैनिकों, स्वार्थ में निरत व्यवसायियों एवं चलतू सहयोग देने वाले वैज्ञानिकों से इसमें वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती। सफल युद्ध के लिए केन्द्रस्थ स्वराष्ट्रीय परिषद् की जहाँ आवश्यकता है, वहाँ उसके लिये स्वदेशीय भाषा द्वारा उत्पन्न साहित्य और उसके द्वारा दिये गये वैज्ञानिक-शिक्षण की भी आवश्यकता है। कोई भी राष्ट्रीय संस्था तब तक पूर्णरूपेण राष्ट्रीय नहीं कही जा सकती, जब तक वह अपने समस्त दृष्टिकोणों में राष्ट्रीय न हो।

युद्धानन्तरीय योजनाओं की चर्चा इस समय यूरोप तथा अमेरिका के सभी देशों में हो रही है, और हमारे देश में भी इस चर्चा की कभी हल्की-सी ध्वनि सुनायी दे जाती है। इस प्रतिध्वनि से जो आभास हमें मिला है वह हमारे लिये असन्तोष ही नहीं, प्रत्युत ग्लानि का विषय है। हमें बारबार यह स्मरण दिलाया जा रहा है कि यह देश 'कृषि-प्राधान्य' है, और कृषि के उद्योग को युद्ध के अनन्तर प्रोत्साहन दिये जाने की आयोजना हो रही है।

बाह्यदृष्टि से यह बात कोई बुरी नहीं प्रतीत होती, पर इस भावना के अन्तर्गत एक कुटिल-नीति भी है। इस भावना का अर्थ यह है कि हमारा देश केवल कच्चे माल की पूर्ति का क्षेत्र बना रहे, और देश के उद्योगों और कारखानों को युद्ध के अनन्तर बन्द कर दिया जाय। युद्ध के इन पाँच वर्षों में अनेक सामग्रियों के कारखाने देश में खुले हैं और इन्होंने गौरव भी प्राप्त किया है, व्यवसायियों ने प्रचुर-लक्ष्मी इनके कारण कमायी है और वे युद्ध के अनन्तर कारखानों और उद्योगों का इस देश में पाश्चात्य ढंग पर प्रसार करने के लिए उत्सुक भी हैं। इन कारखानों को शासन-सत्ता की ओर से जहाँ संरक्षण मिलना चाहिए था, वहाँ इनके मार्ग में विभिन्न प्रकार के अवरोध प्रस्तुत किये जायँगे। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट है कि यूरोप और अमरीका से हमारे देश में रासायनिक पदार्थ और यांत्रिक सामग्री पूर्वापेक्षया बहुत अधिक मात्रा में आने लगेगी, जिसका निश्चित परिणाम यह होगा कि हमारे नवस्थापित कारखाने बन्द हो जावेंगे। इन कारखानों में जो इस समय वैज्ञानिक-शिक्षाप्राप्त-युवक संलग्नता से काम कर रहे हैं; वे बेकार हो जायँगे। ऐसी परिस्थिति में वैज्ञानिक-शिक्षण की आयोजनाओं को धक्का पहुँचेगा। आवश्यक तो यह था कि हम युद्ध के अनन्तर अपनी शिक्षण-योजनाओं में क्रान्ति उत्पन्न करते, पर संभवतः हमारे भाग्य में ऐसा अवसर आना अभी दूर-भविष्य की बात है। अभी हमें विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना है, वैज्ञानिक शिक्षा के दृष्टिकोण को परिवर्तित करना है। युद्ध के अनन्तर अनेक नयी समस्याएँ उपस्थित होंगी। बहुत संभव है कि यह देश एशियाई युद्ध का एक अड्डा बन जावे और फिर हमारे कारखानों की क्या परिस्थिति होगी और उन उद्योगों में देश के शिक्षित युवकों का किस प्रकार सहयोग होगा, यह एक सोचने का विषय है। मेरा विश्वास तो यह है कि युद्धानन्तरीय काल में भारत का यदि गौरवपूर्ण सहयोग वांछित समझा गया तो **यहाँ की वैज्ञानिक-शिक्षण-पद्धति में विशेष परिवर्तन करने पड़ेंगे और इन परिवर्त्तनों में सबसे मुख्य परिवर्तन होना चाहिए—हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक-शिक्षण**। जनता में वैज्ञानिक प्रवृत्ति जागृत करने के लिए हिन्दी में लोकप्रिय साहित्य का बृहद् परिमाण में सृष्टि करना नितान्त आवश्यक होगा।

हैदरी समिति

पुणे के अधिवेशन में मैंने वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत किये थे। इधर गत चार वर्षों में इस सम्बन्ध में कुछ विशेष

कार्य तो हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नहीं हो सका है, पर यह सन्तोष का विषय है कि किसी न किसी रूप में इसकी कुछ विशेष चर्चा रही है। मैंने अपने गत भाषण में 'सेण्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड ऑफ एजुकेशन' की साइंटिफिक टर्मिनोलॉज़ी कमिटी का, जिसके अध्यक्ष स्वर्गीय सर अकबर हैदरी थे, थोड़ा-सा निर्देश किया था। उस समय तक इस कमिटी की पूरी रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई थी। सन् १९४१ ई० में यह प्रकाशित हुई। बम्बई प्रान्त के डेपुटी डाइरेक्टर श्री बी० एन० सील महोदय की प्रेरणा पर यह विषय बोर्ड के समक्ष रखा गया था। कमिटी में सर्वश्री हैदरी, मेनन, त्रिपाठी, आर्मस्ट्रंग, ज़ियाउद्दीन अहमद, अमरनाथ झा, दौदपोटा और भारतीय सरकार के एजुकेशनल कमिश्नर ये ८ सदस्य थे, और डॉ० अब्दुलहक, डॉ० भटनागर और डॉ० कुरेंशी अतिरिक्त सदस्य थे। इस कमिटी की रिपोर्ट परिशिष्टों सहित ४७ पृष्ठ की प्रकाशित है। मेरे पास यहाँ इतना अवकाश नहीं है कि मैं इसकी धारणाओं की विस्तृत आलोचना करूँ। रिपोर्ट के साथ दिये परिशिष्टों में सील, अमरनाथ झा, डाइरेक्टर आव् एडुकेशन हैदराबाद, मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त पारिभाषिक शब्द समिति, अब्दुलहक और कुरेंशी की टिप्पणियाँ विशेष महत्त्व की हैं।

एडवाइज़री बोर्ड की इस कमिटी के निश्चयों का सारांश उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है* :—

*१. भारत में वैज्ञानिक अध्ययन के विकास को आगे बढ़ाने के लिए जहाँ तक व्यावहारिक हो एक सर्वसामान्य शब्दावली ग्रहण करना वाञ्छनीय होगा और उन सारे प्रयासों को ध्यान में रखना होगा जो इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पहले किये जा चुके हैं।

२. अन्य देशों में होने वाली वैज्ञानिक प्रगति के साथ देश की प्रगति का तालमेल बनाये रखने के लिए, भारत में जो पारिभाषिक शब्दावली ग्रहण की जाय उसे यथासम्भव उन सारे शब्दों को पचा लेना चाहिए जिनको पहले से सार्वभौम स्वीकृति मिल चुकी है। किन्तु इस बात को ध्यान में रखते हुए कि भारत में अनेक प्रकार की भाषाएँ प्रयुक्त होती हैं और चूंकि वे इन भाषाओं का उद्गम एक नहीं है, अतः यह आवश्यक होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली के साथ-साथ उन दो मुख्य भाषाओं से शब्द उधार लिए जायँ तथा उनके शब्द ग्रहण किये जायँ जिनसे अधिकांश भारतीय भाषाओं का सम्बन्ध हो।

१—दैट इन आर्डर टु प्रोमोट दि फर्दर डेवेलपमेंट ऑव् सायंटिफिक स्टडीज़ इन इंडिया, इट इज़ डिज़ाइरेब्ल टु एडोप्ट ए कामन टर्मिनोलॉजी सो फार ऐज़ मे बि प्रैक्टिकेब्ल एण्ड फुल रिगार्ड शुड बि हैड टु एटेम्प्ट्स ह्विच हैव आलरेडी बीन कैरिड आउट विद् दिस् आब्जेक्ट इन् व्यू ।

साथ ही, विभिन्न भाषाओं के नित्यप्रति में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को ग्रहण किया जाय अत: भारतीय वैज्ञानिक शब्दावली में सम्मिलित होंगे :—

(i) अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली, जो अंग्रेजी के रूप में होगी और जिसका प्रयोग सारे भारत में होगा।

(ii) क्षेत्र के अनुसार हिन्दुस्तानी या द्राविडी भाषाओं से उधार लिए और अनुकूलित शब्द । किन्तु जहाँ तक सम्भव हो संस्कृत, फारसी तथा अन्य साहित्यिक भाषाओं के कठिन शब्दों से बचा जाय ।

(iii) विभिन्न भाषाओं के अपने शब्द, जिन्हें जनसामान्य की शिक्षा को ध्यान में रखते हुए बनाये रखना आवश्यक हो । शिक्षा की उच्चतर अवस्थाओं के श्रेणी (iii) के शब्दों के स्थान पर क्रमश: श्रेणी (i) तथा (ii) के शब्द ग्रहण किये जायँ ।

३. देश भर में वैज्ञानिक शब्दावली के स्थायी विकास के प्रति आश्वस्त होने के लिए यह आवश्यक होगा कि एक केन्द्रीय निर्देश परिषद् हो, जिसमें विशेषज्ञ उपसमितियाँ हों जिनसे कि सामान्य मामलों तथा उनके पास भेजे गये विशिष्ट मामलों के विषय में प्रान्तीय सरकारें तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रीय संगठन मार्गदर्शन प्राप्त कर सकें ।

४. यह मानते हुए कि भारतीय भाषाएँ दो प्रमुख समूहों में विभाजित की जा सकती हैं—यथा (i) हिन्दुस्तानी तथा (ii) द्राविडी समूह, इनमें से प्रत्येक समूह के लिए एक बोर्ड (परिषद् की स्थापना की जाय जो उस समूह के लिए एक सर्वसामान्य शब्दावली विकसित कर सके ।

५. एकरूपता की दृष्टि से गणितीय साध्यों तथा प्रश्नों को उर्दू में बाएँ से दाएँ लिखा जावे ।

६. एकरूपता को प्रोत्साहित करने तथा स्वीकृत शब्दावली के व्यापक प्रचार के लिए पाठ्यपुस्तकों को मान्यता देने वाले अधिकारियों को चाहिए कि वे यह देखें कि जिन पाठ्यपुस्तकों में स्वीकृत शब्दावली व्यवहृत है, उनमें उन्हें ही स्वीकृति मिले ।

—सम्पादक

२—दैट इन आर्डर टु मेन्टेन दि नेसेस्सरी कॉण्टेक्ट बिट्वीन सायंटिफिक डेवेलपमेंट इन इंडिया एण्ड सिमिलर डेवेलपमेंट्स इन अदर कंट्रीज, दि सायंटिफिक टर्मिनोलॉजी एडोप्टेड फार इंडिया शुड एस्सिमिलेट ह्वेरेवर पासिब्ल दोज़ टर्म्स ह्विच हैव आलरेडी सिक्योर्ड जनरल इंटरनेशनल एक्सेप्टेन्स । इन व्यू, हाउएवर, आव् दि वेराइटीज़ आव् लेंग्वेजेज़ इन यूज़ इन इंडिया एण्ड आव् दि फैक्ट दैट दीज़ आर नौट डिराइव्ड फ्रौम वन कामन पेरेंट स्टाक, इट् विल बि नेसेस्सरी टु इम्प्लोय, इन ऐडिशन टु ऐन इंटर-नेशनल टर्मिनोलॉजी, टर्म्स बारोड और एडोप्टेड फ्रौम दि टू मेन स्टाक्स टु ह्विच मोस्ट इंडियन लैंग्वेजेज़ बिलौंग ऐज़ वेल ऐज़ टर्म्स ह्विच आर इन कामन यूज़ इन इंडिविडुअल लैंग्वेजेज़ ।

ऐन इंडियन सायंटिफ़िक टर्मिनोलॉजी विल, देयरफ़ोर, कन्सिस्ट आव् :—

(i) ऐन इंटरनेशनल टर्मिनोलॉजी, इन इट्स इंग्लिश फॉर्म, ह्विच विल बि इम्प्लोयेब्ल थ्रूआउट इंडिया;

(ii) टर्म्स बौरोड* और एडेप्टेड फ्रॉम हिन्दुस्तानी और दि ड्रेवेडिअन लेंग्वेजेज़ एक्कोर्डिंग टु एफिनीटीज़ आव् दि एरिआ, बट एवोयडिंग ऐज़ फ़ार ऐज़ पौसिब्ल डिफ़िकल्ट वर्ड्स फ्रौम संस्कृत, पर्शियन और अदर क्लासिकल लैंग्वेजेज़;

(iii) टर्म्स पिक्यूलियर टु इंडिविडुअल लैंग्वेजेज़ हूज़ रिटेन्शन ऑन दि ग्राउंड आव् फैमिलयारिटी मे बि इसेंशल इन दि इंटेरेस्ट आव् पॉपुलर एजुकेशन । इन दि हायर स्टेजेज़ आव् एजुकेशन टर्म्स फ्रौम कैटिगोरीज़ (i)

*बोर्ड की मीटिंग में इस अंश को निकाल दिया है और संशोधन इस प्रकार किया गया है—

'नं० II (ii) इन दि मेन कौन्क्लूज़न्स एण्ड रिकमेन्डेशन्स शुड बि डिलि-टेड । दि ग्रेट मेजोरिटी आव् दि मेम्बर्स प्रेजेण्ट वेअर आव् ओपीनियन दैट् दि एडोप्शन आव् दिस रिकमेन्डेशन वुड इण्ट्रोड्यूस एन अन-नेसेस्सरी कौम्प्लि-केशन सिन्स दि लेजिटिमेट ऐसपिरेशन आव् मोडर्न इंडियन लैंग्वेजेज़ इन् दिस रेस्पेक्ट वुड बि सेटिसफाइड अंडर (iii), ह्विच ऐज़ दि चेयरमन पायंटेड आउट डिड नॉट प्रेक्लूड दि एडोप्शन आव् न्यू वर्ड्स फॉर्म्ड एण्ड एवोल्व्ड इन् एक्कोर्डेन्स विद् दि ट्रेडिशन्स एण्ड जीनियस आव् पीप्ल एज़ डिस्टिंक्ट फ्रौम नेओलोजिज्म्स इनवेण्टेड एज़ इट् वेयर फॉर देयर ओन सेक'' ।

एण्ड (ii) मे बि प्रोग्रेसिवली सब्सटिट्यूटेड फौर दोज़ इन कैटिगोरी (iii)।

३—टु एनश्योर दि स्टेडी ऐण्ड यूनिफार्म ग्रोथ आव् सायंटिफिक टर्मिनोलॉजी आन् ऑल इंडिया बेसिस, इट इज़ डिज़ायरेब्ल दैट, देयर शुड बि ए सैंट्रल बोर्ड आव् रेफ़ेरेन्स विद् ऐक्सपर्ट सब-कमिटीज़ हूज़ गायडेन्स औन जनरल इशूज़ एण्ड डेसिशन्स औन स्पेसिफिक इशूज़ सबमिटेड टु देम उड बि एक्सेप्टेड बाइ प्राविन्शल गवर्नमेण्ट्स एण्ड अदर रीजनल बाडीज़ कन्सर्न्ड।

४—दैट ओन दि एज़म्पशन **दैट इंडियन लैंग्वेजेज़ मे बि डिवायडेड इनटु टू मेन ग्रूप्स,** बिज़, (i) हिन्दुस्तानी, (ii) दि ड्रैविडियन ग्रूप, बोर्ड्स शुड बि सेट अप फॉर इच ग्रूप विद् दि आब्जेक्ट आव् इवोल्विंग ए कॉमन टर्मिनोलॉजी विदिन दि ग्रूप।

५—दैट फॉर दि सेक आव् यूनिफॉर्मिटी, मैथेमेटिकल प्रोपोज़ीशन्स एण्ड क्वेश्चन्स इन उर्दू शुड बि रिटेन फ्रौम लेफ्ट टु राइट।

६—दैट टु प्रोमोट यूनिफॉर्मिटी, एण्ड टु इंकरेज दि वाइडेस्ट पौसिब्ल यूज़ आव् दि टर्म्स एप्रूव्ड, दि औथोरिटीज़ रिसपौन्सिब्ल फार औथोराइज़िंग दि यूज़ आव् टेक्स्ट-बुक्स शुड सी दैट् औनली दोज़ आर सैंक्शण्ड ह्विच एम्प्लोय दी टर्म्स इन क्वेश्चन।

इस उपसमिति के सदस्यों में उर्दू और फ़ारसी के समर्थकों की संख्या बहुत थी। यही कारण था कि उपसमिति ने देश का "हिन्दुस्तानी" और "द्राविड़ी" भाषाओं में विभाग कर दिया। सौभाग्यवश श्री अमरनाथ झा महोदय की प्रेरणा से बोर्ड के अधिवेशन में इसका संशोधन "सांस्कृतिक" और "फारसी-अरबी" के रूप में हो गया। अबोहर अधिवेशन के अध्यक्ष अमरनाथ जी ने इसका उल्लेख अपने अभिभाषण में किया भी है।

हैदरी कमिटी के ये परामर्श न तो नये हैं और न इनमें कोई विशेषता ही है। पर तब भी इस कमिटी के निश्चयों से कई बातें ऐसी प्रतिभासित होती हैं, जो हमारे परिवर्तित दृष्टिकोण की परिचायक हैं। इस कमिटी में तीन तो डाइरेक्टर शिक्षा-विभाग के थे, एवं श्री जान सारजेंट भारतीय सरकार के एडुकेशनल कमिशनर थे और उनकी ओर से इस प्रकार के परामर्शों का आना इतना तो प्रमाणित करता है, कि ये सब सज्जन इस मत के पक्ष में हैं कि वैज्ञानिक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा (या भाषाएँ) बना दी जाय, अंग्रेजी द्वारा दी जाने वाली वैज्ञानिक शिक्षा भारत के हित

में नहीं है । दृष्टिकोण में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाना हमारे लिए गौरव और सन्तोष की बात है । सैण्ट्रल एडवाजरी बोर्ड की जिस मीटिंग में (११, १२ जनवरी १६४१) हैदरी कमिटी के ये परामर्श (कुछ साधारण परन्तु आवश्यक संशोधनों के अनन्तर) स्वीकृत हुए, उसमें सर गिरिजाशंकर वाजपेयी, जान सारजेंट, हैदरी, मौरिस गौअर (भारत के चीफ जस्टिस), ८ प्रांतों के शिक्षा-विभागों के डाइरेक्टर (मद्रास, बम्बई, संयुक्त-प्रांत, पंजाब, मध्य प्रदेश और बरार, असम, सिंध, एवं उड़ीसा के), ढाका, आन्ध्र और प्रयाग विश्वविद्यालयों के वायसचैन्सलर प्रभृति व्यक्ति उपस्थित थे । अतः शिक्षा-विभागों और विश्वविद्यालयों की नीति इस सम्बन्ध में इतनी तो स्पष्ट है, कि अब समय आ गया है जब हम अपनी भाषा में वैज्ञानिक शिक्षा देना श्रेयस्कर समझने लगे हैं। मतभेद जो कुछ हो सकता है वह विस्तार और व्यावहारिक रूप के सम्बन्ध में है ।

अन्तर्जातीय शब्द क्या हैं ?

हैदरी कमेटी के परामर्शों में इस प्रकार के शब्द हैं—"टर्म्स ह्विच हैव औलरेडी सीक्योर्ड जनरल इण्टर-नेशनल एक्सेप्टैन्स—"ऐन इन्टरनेशनल टर्मिनोलॉजी"—इन स्थलों पर प्रयुक्त "इण्टरनेशनल" या अन्तर्जातीय शब्द से मैं सदा घबराया करता हूँ । मुझे तो ऐसे स्थलों पर "अन्तर्जातीय" शब्द का प्रयोग अनेक देशों के लिए अपमान का सूचक प्रतीत होता है । कोई शब्द केवल इतने से ही कैसे "अन्तर्जातीय" हो जायेगा यदि उसका प्रयोग यूरोप के कुछ देशों और अमरीका में ही होता हो । जर्मन, फ्रेंच, और अंग्रेजी में (अथवा यूरोप की कुछ और भाषाओं में भी) प्रयोग होने पर किसी शब्द को अन्तर्जातीय घोषित कर देना अन्तर्जातीयता को कलुषित करना है । भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इन भाषाओं में उतना ही सम्पर्क है जितना बङ्गाली, हिन्दी, मराठी या गुजराती में । जिस प्रकार कोई शब्द हमारी इन चार भाषाओं में एकसमान होता हुआ भी अन्तर्जातीय नहीं कहला सकता, उसी प्रकार अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच आदि कुछ एक ही वंश की भाषाओं में समान प्रयुक्त होने वाले शब्द अन्तर्जातीय नहीं कहे जा सकते । इनके शब्दों को जब कोई अन्तर्जातीय घोषित करता है, तो उसे इस बात का ध्यान विस्मृत हो जाता है कि संसार के किसी कोने में अन्य जातियाँ भी जीवित हैं, जिनकी भाषायें हेमेटिक, सेमेटिक, इंडोएरियन, ड्रैविडियन, मङ्गोलियन आदि वंश की

हैं, उन जातियों के मानव-प्राणियों की संख्या यूरोपीय और अमरीकन प्रदेशों में रहने वाले व्यक्तियों से अधिक है, उनकी भी भाषायें हैं, संस्कृति है और उनके पास भी साहित्य है, उनकी अपनी एक पृथक् परम्परा है एवं उनको भी जीवित रहने का अधिकार है। मेरी अपनी धारणा यह है कि जिसको कुछ व्यक्ति "अन्तर्जातीय" घोषित कर रहे हैं, उनकी अन्तर्जातीयता आभास-मात्र है। यदि कुछ शब्द जर्मन या अंग्रेजी में समान-रूप से व्यवहृत हो रहे हैं, तो अधिकांश इसलिए नहीं कि वे "अन्तर्जातीय" हैं, प्रत्युत इसलिए कि वे दोनों एक ही परम्परा के अनुकूल हैं। यूरोप और अमरीका में "अन्तर्जातीय" शब्द यूरोप, अमरीका और आस्ट्रेलिया के देशों के लिये ही रूढ़ि-सा हो गया है—गौरांगों की भाषा और उनका साहित्य हम कृष्ण-वर्ण वालों की उपेक्षा करता हो, तो यह कोई नयी बात नहीं है।

अस्तु, मेरी धारणा यह है कि कोई भाषा या कोई शब्द अन्तर्जातीय नहीं है। हमारे इस मानव समाज में इतना समुचित विस्तार है कि इसमें **तीन-चार पद्धतियों पर प्रचलित शब्दावली** सुगमता से चल सके। सबके लिये मुक्त क्षेत्र विद्यमान है—(१) एक यथाशक्य समान पारिभाषिक शब्दावली अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन आदि भाषाओं की हो। (२) दूसरी समान शब्दावली मिस्र, अरब, तुर्क, पारस और अफ़गानिस्तान वालों की हो और हमारे उर्दू के प्रेमी इसको अपनाना चाहें, तो हमें कोई आपत्ति नहीं, और न हमें उनसे प्रतिस्पर्धा ही है। (३) तीसरी शब्दावली आर्यदेशस्थ भारतीय भाषाओं की हो। (४) चीन-जापान वालों की मंगोलियन शब्दावली हो।

उर्दू वालों की प्रवृत्ति

मई सन् १९२० में उसमानिया यूनिवर्सिटी की कौंसिल ने इस सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत किए थे—

(ए) रिज़ौल्व्ड दैट इन व्यू आव् दी इमेन्स डिफ्फकल्टीज विद् ह्विच दि एवोल्यूशन आव् ए कम्प्लीट सिस्टम आव् इंडिजिनस नोमनक्लेचर इज़ बिसेट, एण्ड दि फेसिलिटीज़ एक्क्रूइङ्ग फ्रौम दि यूज़् आव् इंटरनेशनल नोमेनक्लेचर इन दि प्रोसीक्यूशन आव् रिसर्च एण्ड फर्दर स्टडी इन अदर ब्रांचेज़् आव् लरनिङ्ग लाइक मेडिसिन, इञ्जिनीरिंग, एटसेट्रा, इट इज़् एडवाइज़ेब्ल एट प्रेज़ेंट टू एडाप्ट दि लेटर;

(बी) दैट दि इन्टरनेशनल टर्म्स यूज़्ड बि रिटेन बोथ इन इंग्लिश एण्ड इन उर्दू इन दि बौडी आव दि टेक्स्ट;

(सी) दैट दि इंटरनेशनल फौर्मुलाइ एण्ड सिम्बल्स बि एडाप्टेड; एण्ड;

(डी) दैट दि मूवमेण्ट फॉर कौयनिंग उर्दू इक्विवेलेण्ट्स बि केप्ट अप, एण्ड दैट दि को-ओपरेशन आव लर्नेडबौडीज़ आउटसाइट दि स्टेट शुड बि सौलिसिटेड सो ऐज़ टु इवोल्व ए कौमन नोमनक्लेचर।

हिन्दी के क्षेत्र में भी लगभग इसी प्रकार की नीति का बहुत कुछ प्रयोग हुआ है। "अन्तर्जातीय" सूत्र और संकेतों को ज्यों का त्यों अपनाने में कुछ कठिनाइयाँ अवश्य हैं। जिस पदार्थ के लिये यह संकेत प्रयुक्त हो रहा है, यदि उसका अनुवाद हिन्दी और उर्दू में हो जाय पर संकेत अंग्रेज़ी वाला ही रहे, तो यह बात कुछ स्वाभाविक प्रतीत होती है। मान लीजिये कि एक समीकरण P v=RT है जहाँ P का अभिप्राय दबाव (Pressure), से है, Y आयतन (goleme), T तापक्रम (temperature) और R गैस का स्थिरांक हैं। p, v और T तीन शब्दों के प्रथमाक्षर हैं, R को "अन्तर्जातीय" सर्वमान्य संकेत कहा जा सकता है। अब यह बात विचारणीय है, कि हम उपर्युक्त समीकरण को वैसा ही रहने दें, अथवा द आ=र त करें, अथवा द आ=R त करें। अपनी लिपि के साथ रोमनाक्षरों का प्रयोग कहाँ तक उचित है इस पर हम आगे विचार करेंगे। ये समस्याएँ हैं जिन्हें हमें सुलझाना होगा।

हैदराबाद के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने हैदरी कमेटी के पास जो विचार उपस्थित किये थे, उसमें ये वाक्य हैं—

(अ) निश्चय हुआ कि देशी नामकरण की सम्पूर्ण शृंखला का विकास जिन कठिनाइयों से ग्रस्त है इनको और शोध तथा चिकित्सा, इंजीनियरी आदि विद्या की अन्य शाखाओं के कार्यन्वयन में अन्तर्राष्ट्रीय नामकरण से उत्पन्न होने वाली सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए इस समय अच्छा यही हो यदि इस पत्र को स्वीकार कर लिया जाय।

(आ) मूलपाठ में प्रयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय शब्दों को अंग्रेजी तथा उर्दू दोनों में ही रहने दिया जाय।

(इ) अन्तर्राष्ट्रीय सूत्रों तथा संकेतों को ग्रहण कर लिया जाय।

(ई) उर्दू समानार्थी शब्दों का निर्माण चालू रखा जाय और इसके लिए राज्य के बाहर की विद्वत्समितियों का सहयोग माँगा जाय, जिससे एक सर्व-सामान्य नामकरण विकसित हो सके।

इन दि लाइट आव् दि प्रिन्सिप्ल लेड डाउन इन दि रेज़ोल्यूशन कोटेड एबब, टेक्निकल टर्म्स यूज़्ड इन दि उस्मानिया यूनिवर्सिटी ट्रान्सलेशन्स हैव बीन डिवायडेड इन टु दि फौलोइङ्ग थ्री ग्रूप्स :—

(i) नोमेनक्लेचर, (ii) नोटेशन, (iii) टर्मिनोलॉजी।

वर्ड्स कमिग अंडर ग्रूप (i) आर नौट ट्रान्सलेटेड बट आर इनकौरपोरेटेड इन देयर इंगलिश फौर्म। दस नेम्स ऑव एलिमेंट्स एण्ड देयर कम्पाउण्ड्स, नेम्स ऑव कैसेज इन कैमिस्ट्री एण्ड दि नेम्स ऑव फाइलम, क्लासेज, आर्डर्स, जीनस एण्ड स्पेसीज इन बायलोजी आर ट्रीटेड एज इंटरनेशनल ऐण्ड रिटेण्ड इन देयर ओरिजनल फार्म्स।

वर्ड्स कमिङ्ग अंडर ग्रूप (ii)—नोटेशन—बिलौंग मोस्टली टु मैथिमैटिक्स। दीज सिम्बल्स एण्ड ऐब्ब्रीवियेशन्स आरट्रान्सलेटेड लाइक कि फुल टर्म्स आव ह्विच दे आर दि सिम्बल्स।

अंडर ग्रूप (iii)—टर्मिनोलॉजी—आर इंक्लूडेड औल दोज सायंटिफिक वर्ड्स ह्विच आर आइदर दि नेम्स आव फिनोमिना, प्रापर्टीज, प्रोसेसेज, एपेरेटस, इटसेट्रा, और सच टर्म्स एज हीट, लाइट, एलेक्ट्रिसिटी, साउण्ड, मेग्नेटिज़्म, ह्विच हैव कौनोटेशन्स इन कौमन लैंग्वेज औल्सो। दीज वर्ड्स

(i) नामकरण (ii) संकेतन (iii) परिभाषिकशब्दावली समूह

(i) के अन्तर्गत आने वाले शब्दों को अनूदित नहीं किया जाता अपितु उन्हें उनके अंग्रेजी रूप में ही सम्मिलित कर लिया जाता है।

इस प्रकार तत्त्वों तथा उनके यौगिकों के नाम, केमिस्ट्री के वर्गों के नाम तथा जीवविज्ञान में फाइलम, क्लास, आर्डर, जीनस एवं स्पीसीज के नाम अन्तर्राष्ट्रीय माने जाते हैं और इन्हें मूलरूप में रहने दिया जाता है।

समूह (ii) के अन्तर्गत आने वाले शब्द—संकेतन—मुख्य रूप से गणित से सम्बन्धित हैं। इन संकेतों तथा संक्षेपों को पूरा-का-पूरा पद रूप में अनूदित कर दिया जाता है।

समूह (iii) पारिभाषिक शब्दावली—के अन्तर्गत वे सारे वैज्ञानिक शब्द सम्मिलित हैं जो या तो किसी घटना, गुण, प्रक्रम, उपकरण आदि के नाम हैं और ऐसे शब्द हैं—यथा हीट, लाइट इलेक्ट्रिसिटी, साउण्ड, मैग्नेटिज़्म जिनके लिए सामान्य भाषाओं में भी शब्द हैं। वैज्ञानिक शब्दावली में ऐसे ही शब्दों की संख्या सबसे बड़ी है और यदि विद्यार्थी को अपनी भाषा में वैज्ञानिक विचार को समझना है तो उनका अनुवाद होना अनिवार्य है।

फौर्म बाइ फार दि लार्जेस्ट पार्ट ऑव सायंटिफिक वोकेबुलेरी, एण्ड हैव नेसेस्सरिली टु बि ट्रान्सलेटेड इफ ए स्टूडेण्ट हैज टु अंडरस्टेंड सायंटिफिक थौट इन हिज ओन लैंग्वेज।

व्यवहार की दृष्टि से उसमानिया यूनिवर्सिटी की यह नीति श्रेयस्कर है और हिन्दी के क्षेत्र में भी इसे अपनाया जा रहा है। उसमानिया यूनिवर्सिटी में इस नीति का इतने दिनों से अनुसरण हो रहा है तथा साहित्य और शिक्षण के क्षेत्र में इसका सफल प्रयोग भी हो चुका है, अतः इसमें मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। दस-पाँच वर्ष बाद नीति में परिवर्तन करने से लाभ भी कुछ नहीं होता। मेरा विचार है कि जिस पद्धति पर उसमानिया में उर्दू-वैज्ञानिक साहित्य तैयार हुआ है, अब उर्दू के क्षेत्र में वही श्रेयस्कर है; स्वाभाविक विकास के लिये तो अवश्य स्थान रहेगा, पर इसमें मौलिक परिवर्तन नहीं लाये जा सकते। उनकी शब्दावली के स्थान पर आजकल की रूढ़ि "हिन्दुस्तानी" के शब्द अथवा संस्कृतगर्भित शब्द कभी प्रचलित हो सकेंगे, इसकी आशा करना अनुचित है।

"अन्तर्जातीयता' के नाम पर अँग्रेजी के शब्दों की भरमार कर लेने के विरोध में हैदराबाद के डाइरेक्टर के ये शब्द भी विशेषता रखते हैं—"नेवरदिलेस इट इज फेल्ट दैट दि एडोप्शन ऑव् मि० सीत्स क्लासिफिकेशन आव् टर्म्स ह्विच शुड बि बौरोड एक्सक्लूसिवली फ्रौम दि इंग्लिश वोकेबुलेरी, उड मिलिटेट अगेन्स्ट दि वेरी परपस ह्विच इट इज इण्टेण्डेड टु सर्व, नेम्ली, दैट आव् डिस्सेमिनेटिंग सायंटिफिक नालेज थ्रू दि मीडियम आव् दि इंडियन लैंग्वेजेज"।

मेरी धारणा यह है कि उसमानिया यूनिवर्सिटी का कार्य उर्दू क्षेत्र की दृष्टि से ठीक ही मार्ग पर हो रहा है और हिन्दी-क्षेत्र को लगभग उसी नीति पर अपने क्षेत्र में काम करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पर यह आशा रखना कि उर्दू की यह शब्दावली हिन्दी क्षेत्र में भी व्यवहृत हो सकेगी, प्रवंचना मात्र है। हैदराबाद के डाइरेक्टर के ये शब्द कुछ अत्युक्ति ही होंगे—"विद

फिर भी, ऐसा अनुभव किया जाता है कि यदि सील महोदय ने अंग्रेजी से उधार लिये जाने वाले शब्दों का जो वर्गीकरण किया है, यदि उसे उस रूप में ग्रहण कर लिया जाय तो उससे उस उद्देश्य को ही वह नष्ट कर देता जो उसका मन्तव्य था—अर्थात् भारतीय भाषाओं के माध्यम से वैज्ञानिक ज्ञान का प्रचार-प्रसार।

औल इट्स वर्ब्स डिराइव्ड फ्रौम दि ब्रजभाषा एण्ड बीइंग ए कौम्पोजिट लैंग्वेज, उर्दू हैज ए ग्रेटर क्लेम टु वि मेड बेसिस आव् टर्मिनोलॉजी दैन ऐनी अदर लैंग्वेज एण्ड दि प्रेजेण्ट टेक्निकल टर्म्स कॉयण्ड एट दि उसमानिया यूनिवर्सिटी में वेल सर्व दि पर्पस आव् ऐन औल-इंडिया टर्मिनोलॉजी ।"

क्रियाओं के समान होने पर भी अपने शब्द-भंडार के कारण उर्दू हिन्दी से बहुत पृथक् हो चुकी है और साहित्यिक हिन्दी और साहित्यिक उर्दू में क्रियाएँ तो अपना महत्त्वपूर्ण स्थान खो चुकी हैं—है, था, रहा, गया आदि कुछ साधारण क्रियाएँ ही रह गयी हैं, सर्वनाम अवश्य अब भी समान हैं । यह आश्चर्य की बात है कि सर्वनाम और क्रियाओं के भिन्न होने पर भी वर्तमान हिन्दी से अवधी, बुन्देलखंडी, ब्रजभाषा, राजपूतानी और यही नहीं बंगाली, गुजराती और मराठी भी, अधिक निकट प्रतीत होती हैं, पर फारसी, अरबी और तुर्की के भंडार से लदी उर्दू सर्वनाम और क्रियाओं के समान होने पर भी हमसे दूर जा पड़ी है ।

हिन्दी, उर्दू से दूर हो रही है अथवा उर्दू, हिन्दी से ?

यह स्पष्ट है कि आजकल हिन्दी और उर्दू के साहित्यिक रूप में बहुत अन्तर आ गया है, साधारण भाषणों और वक्तृताओं की भाषा में भी अन्तर आ गया है । बाजारू बोली में (अथवा बेसिक भाषा में) यह अन्तर अधिक नहीं है, पर बेसिक भाषा का भंडार केवल १००० शब्दों का है । इसमें बहुत से शब्द फारसी और संस्कृत के भी हैं, पर उन्हें बहुधा सभी समझ लेते हैं ।

मुसलमान शासकों ने कचहरी की भाषा फारसी बना रखी थी और मुग़ल-काल तक ऐसा रहा । उत्तर और मध्य भारत में इस समय तक लोगों की भाषा हिन्दी थी । "हिन्दी जीती जागती भाषा थी और इसलिये इसने बहुत से फारसी शब्दों को अपने में पचा लिया । गुजराती और मराठी ने भी ऐसा ही किया । पर फिर भी हिन्दी, हिन्दी ही रही । शाही दरबारों के निकट इस समय हिन्दी के फारसी-गर्भित रूप का विकास हुआ और इसका नाम

ब्रजभाषा से सारी क्रियाएँ ग्रहण करने तथा एक मिली-जुली भाषा होने के कारण उर्दू को पारिभाषिक शब्दावली का आधार बनाने का दावा किसी अन्य भाषाओं की अपेक्षा अधिक बड़ा है और इस समय उस्मानिया विश्वविद्यालय द्वारा निर्मित पारिभाषिक-शब्द समग्र भारत की पारिभाषिक शब्दावली का काम दे सकते हैं ।

रेख़ता पड़ा। मुग़लों के कैम्पों में इस समय उर्दू नाम का भी जन्म हुआ, पर इस शब्द का प्रयोग हिन्दी के ही पर्याय के रूप में रहा। यह स्थिति सन् १८५७ के विद्रोह तक रही। उर्दू और हिन्दी में केवल भेद लिपि का रहा। यही नहीं, कुछ काल तक भी उर्दू लिपि में लिखने वाले मुसलमानों ने अपनी भाषा का नाम हिन्दी ही रखा"—(जवाहरलाल नेहरू)। अस्तु, आगे जिस ढंग से उर्दू हिन्दी से अलग होती गयी, उसका इतिहास तो स्पष्ट है।

पर प्रश्न यह है कि इस पार्थक्य का उत्तरदायित्व हिन्दी वालों पर है अथवा उर्दू वालों पर। पार्थक्य स्वभावतः एक भाषा में संस्कृत-प्राधान्य शब्दों के कारण है और दूसरी में फारसी-प्राधान्य। उर्दू वाले कहते हैं, और बहुत से राष्ट्रीयवादी भी, कि हिन्दी की वर्तमान प्रवृत्ति अपने में संस्कृत शब्दों को पूर्वापेक्षया अधिक ग्रहण करने की ओर अग्रसर हो रही है। मौलाना अब्दुल हक़ साहेब लिखते हैं—

"अवर कम्प्लेण्ट दैट संस्कृत वर्ड्स आर बीइङ्ग इंक्रीजिगली इण्ट्रोड्यूस्ड इन दि लैंग्वेज इज़ यूज़ुऐली आन्सर्ड बाइ दि रिटॉर्ट दैट वी आर एज़ गिल्टी आव् यूजिंग मोर आव् पर्शियन एण्ड ऐरेबिक वर्ड्स। बट व्हाइल इट हैज़ नेवर बीन अवर इण्टेन्शन टु ओवरलोड उर्दू विद ऐरेबिक एण्ड पर्शियन वर्ड्स इट हैज़ बीन दि एवाउड पालिसी आव् गांधी जी, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, काका कालेलकर एण्ड देयर फौलोअर्स टु मेक इंक्रीज़िंग यूज़ आव् संस्कृत वर्ड्स औन दि ग्राउण्ड दैट दि लैंग्वेज़ वुड देयरबाइ बि ईज़िली अंडरस्टुड बाइ दि पीप्ल् आव् सदर्न इण्डिया, व्हूज मदरटंग्स हैव ए संस्कृत कम्प्लेक्शन।"

इस विषय की विस्तृत मीमांसा करने का यहाँ स्थल नहीं है। मेरे विचार **में यह धारणा नितान्त भ्रममूलक है कि हम पूर्वापेक्षया अब अपनी हिन्दी भाषा को अधिक संस्कृतगर्भित बना दे रहे हैं।** हिन्दी भाषा के परम्परागत रूप का

हमारी इस शिकायत का उत्तर कि भाषाओं में संस्कृत शब्दों का प्रवेश अधिक मात्रा में हो रहा है, इस जवाब से मिल जाता है कि हम भी फारसी तथा अरबी शब्दों का अधिक प्रयोग करने के दोषी हैं। लेकिन हमारी आन्तरिक इच्छा उर्दू को कभी भी फारसी तथा अरबी शब्दों से बोझिल बनाने की नहीं रही तो भी गाँधी जी, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, काका कालेलकर तथा उनके अनुयायियों की यह प्रिय नीति रही है कि संस्कृत शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग किया जाय जिससे कि भाषाएँ उन दक्षिण भारतीयों द्वारा सरलता से समझी जा सकें जिनकी भाषाएँ संस्कृत से मिलती-जुलती हैं।

संक्षिप्त निदर्शन अमरनाथ जी ने अपने अबोहर के भाषण में कराया था। हमारी भाषा आज भी उतनी ही संस्कृतगर्भित है, जितनी चन्दबरदायी, कबीर, नानक, सूरदास, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, रसखान, जायसी या देव के समय में थी। यह सम्भव है कि कभी हमने तद्भव शब्दों का प्रयोग किया हो, और कभी तत्समों का। तुलसी, कबीर और सूर के पद आज भी सार्वजनिक जनता के लिए भाषा सम्बन्धी आदर्श हैं। "सरन सरोरुह जल बिहंग, कूजत गुंजत भृंग। बैर विगत विहरत विपिन, मृग बिहंग बहुरंग"— यह हमारी जनता के सर्वप्रिय कवि तुलसीदास जी की भाषा है। "ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास। गुरु सेवा ते पाइये सतगुरु चरन निवास" यह भाषा अशिक्षित कबीर की है। रैदास, पलटू, दूलन आदि जन-श्रेणी के संत कवियों की भाषा भी सदा ऐसी ही रही है। अतः यह लाञ्छन व्यर्थ है कि हिन्दी की वर्त्तमान प्रवृत्ति पूर्वापेक्षया अधिक संस्कृतगर्भित होने की ओर है।

वस्तुतः जब हम किसी ऐसे शब्द का प्रयोग करते हैं जो दूसरों को संस्कृत प्रतीत होता है (और सौभाग्यतः वह संस्कृत के कोष में है भी), तो हमारा अभिप्राय किसी ऐसे शब्द के प्रयोग करने का नहीं होता है, जो शब्द हमारा नहीं है। मोहनदास, पुरुषोत्तमदास, सम्पूर्णानन्द, गंगाप्रसाद, अशोक, ये सब नाम जब हम अपने व्यक्तियों में रखते हैं, तो वे सब शब्द हमारी दृष्टि में हिन्दी के ही शब्द हैं। ये सब जनता के शब्द हैं, जनता के साहित्यकों के शब्द हैं, इनकी परम्परा बहुत पुरानी है, इन शब्दों का प्रयोग कोई आज की हमारी नयी नीति नहीं है। अतः स्पष्ट है कि हमारा परम्परागत शाब्दिक भण्डार लगभग एकसा ही रहा है। यह स्मरण रखना चाहिये कि संस्कृत शब्दों का प्रयोग अंग्रेजी अथवा फारसी शब्दों के प्रयोग के समकक्ष में नहीं रखा जा सकता है। कुछ अंग्रेजी और फारसी शब्दों को हमने उदारतावश पचाने का प्रयत्न अवश्य किया है, पर संस्कृत शब्दों के सम्बन्ध में "पचाने" शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। वे तो हमारी पैत्तृक सम्पत्ति हैं; यही नहीं, उनसे पृथक हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं है, हम तो उन्हीं के दूसरे रूप हैं, हमारा प्रवाह उन्हीं की परम्परा में है। संस्कृत कोष की प्रत्येक संज्ञा हमारी संज्ञा है, यह परम्परागत देन सभी भारतीय आर्यभाषाओं को प्राप्त है। यह दूसरी बात है कि किसी प्रान्त में अथवा किसी समय में हम किसी

एक शब्द का अधिक प्रयोग करें, और अन्य प्रान्त में अथवा अन्य समय में हम उसी शब्द के किसी अन्य पर्याय का।

फारसी और अंग्रेजी के शब्द हम किसी विशेष समय पर विशेष आवश्यकता होने पर अवश्य ग्रहण करेंगे, और उस आवश्यकता के मिट जाने पर उस शब्द को फिर निकाल बाहर भी कर देंगे, पर संस्कृत के शब्द जो कि अपने ही शब्द हैं, एक-रस प्रवाह में यहाँ हमारे साथ रहेंगे। आवश्यकता पड़ने पर हमने "मक़तब" शब्द को अपनाया, मक़तबों के दिन बीते, "स्कूल" शब्द भी हमने पचा लिया, पर पाठशाला और विद्यापीठ शब्द तो प्रवाह के साथ प्रत्येक युग में रहेंगे। मुसलमानी शासन में कचहरी शब्द मिला और आजकल कोर्ट। ये शब्द सामयिक हैं, पर न्यायालय शब्द साहित्य में अमर रहेगा। उस्ताद और टीचर या मास्टर ये शब्द समय पर आये और समय परिवर्त्तित होने पर ये साहित्य से निकाल भी दिये जायँगे पर गुरू और अध्यापक शब्द प्रवाह के साथ निरन्तर चलेंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि अंगरेजी, फारसी आदि शब्दों का प्रयोग व्यावहारिक और कालापेक्षित है, पर इनके होते हुए हमारा एक स्थायी शब्द भण्डार है, वह हमें संस्कृत और प्राकृत के प्रवाह से मिला है, वह अपना है और उसके शब्द भण्डार को सामयिक शब्द भण्डार के समकक्ष में नहीं रखा जा सकता है।

मेरे इस दृष्टिकोण के आधार पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि **हिंदी तो अपने पूर्व प्रवाह की परम्परा में अब भी आगे बढ़ रही है और हिन्दी-उर्दू के पार्थक्य का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उर्दू-लेखकों पर है।** स्वाभावत: पार्थक्य अब इस सीमा तक पहुँच गया है—उर्दूवालों ने अपने को हमसे और अपनी मूल परम्परा के रूप से इतना अलग कर लिया है कि उनको अब पहचानना भी कठिन हो गया है। यह सोचने में मस्तिष्क को बल देना पड़ता है कि कभी वे भी हममें ही थे, पर दुराग्रहता के कारण वे आज हमसे पृथक् हो गये हैं।

मैं इस चर्चा को यहाँ न छेड़ता, पर वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली का संस्कृत के कोष-भंडार पर क्या अधिकार है, यह निश्चय करने के लिए इन विचारों को उपस्थित करना मैंने आवश्यक समझा।

दक्षिणात्य भाषाओं की शब्दावली

दक्षिण प्रान्तीय भाषाओं में तमिल, तेलगू, मलयालम और कन्नड मुख्य

हैं । इन भाषाओं में कुछ साम्य भी है, पर अनेक मौलिक बातों में ये एक-दूसरे से भिन्न हैं । इनकी वर्ण-लिपि, वर्ण-क्रम, एवं वर्णोच्चारण में भी अन्तर है । इनकी अपनी गिनती लिखने की पद्धति भी आर्य-भाषाओं की पद्धति से भिन्न है । यह बात अवश्य समान है कि चारों भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य है और इनकी भाषा में ये शब्द इतने प्रविष्ट हो चुके हैं कि इन शब्दों को भी इन भाषाओं के शब्द माना जा सकता है । मराठी, हिन्दी, बंगाली आदि आर्य-भाषाओं का तो विकास संस्कृत-प्राकृत परम्परा से हुआ है, अतः इन भाषाओं में संस्कृत शब्दों का प्रयोग होना और बात रखता है, पर द्राविडी भाषाओं का विकास निजी पृथक् परम्परा से है और उन भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का बाहुल्य होना उसी प्रकार का है जैसे हमारी भाषा में फ़ारसी अथवा अंग्रेजी शब्दों का । दक्षिणात्य भाषा-भाषियों ने आर्य-संस्कृति और उसके साथ-साथ आर्य धर्म-ग्रन्थों को न केवल अपनाया ही, पर आर्य-संस्कृति भी शंकर, रामानुज, मध्व आदि आचार्यों की इतनी ऋणी है कि इस संस्कृत द्वारा द्राविड और आर्य भाषाओं का पार्थक्य सदा के लिए दूर हो गया है ।

लगभग सभी दक्षिणात्य भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य थोड़ा बहुत अग्रसर अवश्य हुआ है । पुस्तकें अब तक स्कूली कक्षाओं के योग्य ही अधिक लिखी गयी हैं और उनमें प्रयुक्त शब्दावली उनके साहित्य में बहुत कुछ स्थायी रूप प्राप्त कर चुकी है । उनकी मासिक पत्रिकाओं में लोक-प्रिय एवं तात्त्विक लेख भी यदा-कदा प्रकाशित होते रहते हैं, और कुछ लोकप्रिय ग्रन्थों की भी रचना हुई है । शब्दावली के स्थिरीकरण के लिए भी उन्होंने लगभग ५५ वर्षों से कुछ न कुछ प्रयत्न किया है । सरकार की ओर से पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में सन् १६२३ से प्रयत्न किया जा रहा है । सन् १६२३ में सरकार ने मद्रास प्रान्त की चार मुख्य भाषाओं के लिए एक शब्दावली बनाने की योजना की । इस काम के लिए जो समिति बनायी गयी उसने १६३१ में अपना काम पूरा किया और यह शब्दावली गवर्नमेंट प्रेस से प्रकाशित हुई । पर यह शब्दावली सर्वमान्य न हो सकी, साहित्यिकों का एक-मत सहयोग इसे प्राप्त न हुआ, अतः स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों में इसका प्रचलन बाध्य न किया जा सका ।

इसके बाद ही सरकार ने यह निश्चय कि सन् १६३८-३६ तक कक्षा ४ से लेकर कक्षा ६ तक का शिक्षण मातृभाषा के माध्यम द्वारा हो ।

तब से पारिभाषिक शब्दों की ओर जनता का ध्यान फिर आकर्षित हुआ।

जून १६४० में सरकार की ओर से सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों की एक समिति पारिभाषिक शब्दावली सम्बन्धी नीति निर्धारण करने के लिए बनी जिसके संयोजक माननीय श्रीनिवास शास्त्री नियुक्त हुए। इस समिति ने अपनी नीति इस प्रकार व्यक्त की—

६. दि कमिटी रिज़ौलब्ड टु सबमिट टु गवर्नमेंट दि फॉलोइङ्ग जनरल प्रिंसिपिल्स ऑन व्हिच ए यूनिफॉर्म सिस्टम आव् स्टैन्डर्डाइज्ड टेक्निकल एण्ड सायंटिफिक टर्म्स कैन बि इंट्रोड्यूस्ड इन साउथ इंडियन लैंग्वेजेज:—

(i) दि इक्विवेलेण्ट्स ऑव् फॉरेन टेक्निकल टर्म्स इन दि साउथ इंडियन लैंग्वेज नाउ इन यूज इन दि लोअर सेकंडरी क्लासेज हैव मोस्टली इस्टैब्लिश्ड देमसेल्व्ज एण्ड आर ऐक्सेप्टेबिल फॉर ऐजूकेशनल पर्पजेज। अदर टर्म्स व्हिच आर करेंट इन दि साउथ इंडियन लैंग्वेजेज़ मे औल्सो बि एडोप्टेड, सच ऐज़ दि नेम्स आव् कौंक्रीट नैचुरल (फ़िज़िकल) औबजेक्ट्स ऑर फिनोमेना, लाइक लाइटनिंग, थंडर, इको, अर्थक्वेक, मेटेल, लिंब, म्यूल। दिस ग्रूप आव् वर्ड्स मे बि पिक्यूलियर टु ईच आव् दि साउथ इंडियन लैंग्वेजेज़।

(ii) इट इज़ नेसेस्सरी टु ड्रा अप ए स्टैंडर्डाइज्ड लिस्ट आव् टेक्निकल टर्म्स, कॉमन टु ऑल साउथ इंडियन लैंग्वेजेज़ फॉर दि कन्सेप्टुअल आर ऐब्सट्रैक्ट नेम्स एण्ड आइडियाज़, ऐज़ फॉर इक्ज़ाम्प्ल, क्वालिटीज़, प्रोपर्टीज़,

*समिति ने निश्चय किया कि सरकार के समक्ष निम्नलिखित सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत किये जायँ जिन पर आधारित करते हुए दक्षिण भारतीय भाषाओं में मानकीकृत प्रौद्योगिक तथा वैज्ञानिक शब्दों के लिए एक समान प्रणाली का सूत्रपात किया जा सके :

(i) निम्नतर माध्यमिक श्रेणियों में दक्षिण भारतीय भाषा में प्रचलित जिन विदेशी पारिभाषिक शब्दों के समानार्थी प्रयुक्त हो रहे हैं वे शिक्षण कार्यों के लिए स्वीकार्य हैं। अन्य शब्द जो दक्षिण भारतीय भाषाओं के प्रचलित हों उन्हें भी ग्रहण कर लिया जाय। यथा भौतिक वस्तुओं या घटनाओं के नाम—लाइटनिंग, थंडर, इको, अर्थक्वेक, मेटेल, लिम्ब, म्यूल। इस वर्ग के शब्द प्रत्येक दक्षिण भारतीय भाषा में विचित्र लग सकते हैं।

(ii) धारणा अथवा भाववाचक नामों तथा विचारों के लिए समस्त दक्षिण भारतीय भाषाओं में समान रूप से पाये जाने वाले पारिभाषिक शब्दों

नेम्स आव् सबजेक्ट्स आव् स्टडी, फोर्स, सेंटर, वौल्यूम न्यूट्रिशन, एक्सन, रिएक्शन, सेन्सेशेन, लैटिच्यूड, लौंगिच्यूड, इक्विनौक्स, सरफ़ेस, लिक्विड, सौलिड, गैसिअस, रोटेशन, ऐलजेब्रा एण्ड जिओमेट्री । दीज़ नेम्स मे बि वेस्ड आर संस्कृत एलिमेंट्स फॉर ड्रैविडियन लैंग्वेजेज एण्ड आर पर्शियन एण्ड ऐरेबिक फॉर उर्दू । दिस ग्रूप विल नेसेस्सरिली बि स्मौल ।

'अवर कोलीग, मि० पिशारोद्री, इज आव् ओपिनियन दैट फॉर दि फर्स्ट फ्यू यिअर्स एटलीस्ट दि प्रैक्टिस मे बि एडोप्टेड आव् इंक्लोजिंग विदिन ब्रैकेट्स दि इंग्लिश एक्विवेलेंट्स आव् दि टेक्निकल टर्म्स अंडर दि कैटिगरी ।'

(iii) दि रिमेनिंग टेक्निकल टर्म्स, नौट इंक्लूडेड इन दि टू प्रीवियस ग्रूप्स, विलबि बौडिली टेकेन फ्रॉम इंगलिश एण्ड ट्रान्सलिटरेटेड इंटु दि साउथ इंडियन स्क्रिप्ट्स एक्कमपेनीड व्हेरेवर नेसेस्सरी बाइ दि ओरिजनल वर्ड्स इन इंग्लिश स्क्रिप्ट इनक्लोज्ड विदिन ब्रैकेट्स;

प्रोवाइडेड, हाउएवर, दैट कैण्डिडेट्स ऐट एक्जामिनेशन्स विल बि परमिटेड टु यूज, ऐट देयर औप्शन, आइदर दि ओरिजनल फार्म्स इन इंग्लिश आर दि ट्रान्सलिटरेटेड फौर्म्स आर बोथ ।

की मानक सूची बनाना आवश्यक है । उदाहरणार्थ गुण, गुणधर्म, अध्ययन गत विषयों के नाम, फोर्स, सेन्टर, वाल्यूम, न्यूट्रिशन, एक्स, रिएक्शन, सेन्सेशन, लैटिट्यूड, लौंगिट्यूड, इक्विनोक्स, सरफेस, लिक्विड, सोलिड, गैसिअस, रोटेशन, ऐलजेब्रा तथा जिओनेट्री । ये नाम द्राविडी भाषाओं के लिए संस्कृत पर आधारित हो सकते हैं और उर्दू के लिए फारसी तथा अरबी भाषाओं पर । यह वर्ग निश्चित रूप से छोटा होगा ।

हमारे सहयोगी श्री पिशारोडी का मत है कि कुछ वर्षों तक इस कोटि के पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ उनकी बगल में कोष्ठकों में उनके अंग्रेजी समानार्थी शब्दों को प्रयुक्त करने की प्रथा चलती रहे ।

(iii) शेष पारिभाषिक शब्द, जो उपर्युक्त दो वर्गों में नहीं आये, वे अंग्रेजी से उसी रूप में ग्रहीत होकर दक्षिण भारतीय भाषाओं में लिप्यन्तरित होंगे और जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ उनकी बगल में कोष्ठकों में मूल अंग्रेजी शब्द लिखे जावें ।

बशर्ते कि परीक्षार्थियों को परीक्षा के समय उन्हें अंग्रेजी मूल रूप में या लिप्यन्तरित रूपों में या कि दोनों रूपों में प्रयुक्त करने की अनुमति प्राप्त हो ।

(iv) इन मैथेमेटिकल एण्ड सायंटिफिक बुक्स, ऐरेबिक न्यूमरेल्स एण्ड दि साइन्स एण्ड सिम्बल्स इन इंग्लिश बुक्स आर टु बि रिटेंड ।

इसी शास्त्री-समिति ने सरकार से इस बात का भी अनुरोध किया कि दक्षिणात्य चारों भाषाओं के लिए एक-एक उपसमिति बना दे, जो कुछ और अतिरिक्त सदस्यों की सहायता से उपर्युक्त नीति के आधार पर विस्तृत पारिभाषिक सूची तैयार करे और ये सूचियाँ विचार और परामर्श के लिए शास्त्री-समिति के सामने फिर रक्खी जायँ । जब समिति इन्हें स्वीकृत कर ले तो सरकार लेखकों और प्रकाशकों को आज्ञा दे कि शिक्षाविभाग से स्वीकृत पुस्तकों में इनका ही व्यवहार हो । लगभग प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद, अनुभव के आधार पर इन शब्दों में यथोचित सुधार भी किये जावें ।

शास्त्री-समिति की ये धारणाएँ बहुत उपयुक्त थीं, पर पता नहीं कि गत तीन वर्षों में इनके आधार पर कोई काम अग्रसर हुआ या नहीं। जहाँ तक मेरा विचार है, सभी समीतियाँ इस विषय में अब एकमत हैं कि जहाँ तक आर्य-द्राविड़ भाषाओं का सम्बन्ध है, कुछ अंगरेजी के अपनाये जायँ, कुछ संस्कृत के आधार पर नये बनाये जायँ । अपनी भाषा के प्रचलित शब्दों को लेने में किसी को आपत्ति नहीं होगी, इससे अपनी भाषाओं का व्यक्तित्व जीवित रहता है, पर पारिभाषिक शब्द-कोष के अगाध भंडार में ऐसे शब्दों की संख्या १-५ प्रतिशत से अधिक न होगी । अंगरेजी में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द ज्यों के त्यों कितने लिये जायँ, इसका निश्चय किसी नियम के आधार पर नहीं किया जा सकेगा । विज्ञान के प्रत्येक विभाग में एक पृथक नीति ही निर्धारित करनी होगी । मेरे विचार में ऐसे अंगरेजी शब्द लेने में कोई आपत्ति नहीं है, जिस शब्द के अन्य वैयाकरणरूप हमें बनाने न पड़ें । **जिन शब्दों के अनेक रूपान्तरों का हमें अपनी वैज्ञानिक भाषा में प्रयोग करना पड़े, उनके लिये अंगरेजी या विदेशी रूप ग्रहण करना भाषा की क्षमता में बाधा डालना है** । शब्दों के रूपान्तर तो प्रत्येक भाषा में अपने अपने व्याकरण के आधार पर ही बनाये जायँगे । हम विदेशी भाषा के किसी एक रूप को तो ग्रहण कर सकते हैं, पर उसके ग्रहण करने के अनन्तर शेष भावात्मक रूप अपने व्याकरण अथवा अपनी भाषा-परिपाटी के अनुसार बनाने की हमें

(iv) गणितीय तथा वैज्ञानिक पुस्तकों में अरबी संख्याएँ तथा संकेत एवं चिन्ह उसी रूप में होंगे जैसा कि अंग्रेजी पुस्तकों में होते हैं ।

स्वतन्त्रता होनी चाहिये। विदेशी गृहीत शब्दों में रूपान्तरित होने की क्षमता कम हो जाती है। उदाहरणत:; क्योंकि हमें साहित्य में electrical, electricity, electrified, dielectric, आदि एक शब्द के अनेक रूपों की आवश्यकता होगी, और स्पष्टत: ऐसे स्थलों पर हम अंग्रेजी के सभी रूपों का व्यवहार नहीं कर सकते हैं, अत: यह शब्द हमें संस्कृत से ही लेने पड़ेंगे। यही अवस्था action reaction, activity, activated, activation, inaction आदि शब्दों के लिए भी है। यदि हम 'ऐक्शन' शब्द को अपना लेवें तो क्या साहित्य में reaction के लिए प्रत्यैक्शन शब्द बनाने की स्वतन्त्रता होगी ? यदि हम 'ऐक्टिविटी' अपनाते हैं, तो क्या हम इससे ऐक्टिवेटित, ऐक्टिवीकरण, अनैक्टिव, आदि रूप बना सकेंगे ? 'पानी गरमाया जा सकता है' पर 'पानी हीटा' तो नहीं जा सकता। नमक 'घोला' जा सकता है पर हम उसे 'डिज़ौल्व' नहीं सकते । अत: यह स्पष्ट है कि जिस शब्द के हमें अनेक वैयाकरण रूपों का वैज्ञानिक साहित्य में प्रयोग करना पड़े, उसके अंग्रेजी रूप का ग्रहण करना साहित्य में श्रेयस्कर न होगा। शेष शब्दों में से कुछ अंग्रेजी तत्सम अपनाये जा सकते हैं, कुछ तद्‌भव रूप में और कुछ के संस्कृत से बनाये गये पर्यायों का भी उपयोग हो सकता है। कुछ अंग्रेजी शब्दों के तत्सम रूप और संस्कृत पर्याय दोनों का प्रयोग साहित्य में चलता रहेगा—जैसे कोई 'डिगरी' कहेगा और कोई अंश भी कहेगा, कोई हवाई जहाज भी लिखेगा, कोई एयरोप्लेन-भी और कोई वायुयान भी।

विश्वविद्यालयों में वैज्ञानिक शिक्षण

इन दो-तीन वर्षों में लखनऊ विश्वविद्यालय की सायंसफैकल्टी ने मातृभाषा में वैज्ञानिक शिक्षण की ओर कुछ विशेष प्रवृत्ति दिखायी है और उनका यह प्रयास स्तुत्य अवश्य है, पर उनके एकाध निश्चय ऐसे हैं जिनसे कुछ अकल्याण होने की आशंका है। हिन्दी और उर्दू की व्यावहारिक कठिनाई दूर करने के लिए उन्होंने **रोमन लिपि का उपयोग करना निश्चय किया है।** रोमन लिपि में कुछ विशेषताएँ होते हुए भी वह हमारे साहित्य के लिए नागरी लिपि की स्थानापन्न नहीं हो सकती। यह ठीक है कि कुछ भाषा विशारदों ने पाश्चात्य जनता की सुविधा के लिए हमारे देश के वेदादि संस्कृत साहित्य को रोमन लिपि में प्रकाशित किया है, ईसाई समाज में उनके हिन्दी-उर्दू के संगीत भी रोमन लिपि में प्रकाशित हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय लिपि

का स्वप्न देखने वाले सज्जन एवं वे व्यक्ति भी जिनका ध्यान प्रेस और टाइप-राइटर की सुविधा की ओर अधिक जाता है, इस लिपि के प्रसार के इच्छुक हैं, **पर हमारी आस्था अपनी लिपि के प्रति इतनी है कि यह आशा रखना व्यर्थ है कि रोमन लिपि के पक्ष में हम अपनी लिपि का कभी बहिष्कार कर सकेंगे।**

प्रयाग विश्वविद्यालय अथवा काशी विश्वविद्यालय हिन्दी भाषा को माध्यम बनाने में अभी सफल नहीं हो सके हैं। मेरा अपना अनुभव यह है, कि बी० एस-सी० कक्षा में पढ़ने वाले अधिकांश विद्यार्थियों का हिन्दी-उर्दू भाषा सम्बन्धी ज्ञान बहुत कच्चा होता है। यदि **उनके लिए हिन्दी पढ़ने की कुछ सुविधाएं विश्वविद्यालयों में दी जायँ और उनसे वैज्ञानिक विषयों पर लेख लिखवाये जायँ, तो आगे हिन्दी को माध्यम बनाने में बहुत सुविधा होगी।** प्रयाग विश्वविद्यालय में जनरल इंग्लिश का जो स्थान है, लगभग वैसा ही स्थान हिन्दी का हो जाना चाहिये।

विश्वविद्यालयों की आवश्यकता की दृष्टि से "भारतीय-हिन्दी परिषद्" ने भी अच्छी योजना तैयार की है। इस परिषद् ने एम० एस-सी० के विद्यार्थियों और अध्यापकों की आवश्यकता की पूर्ति कर सकने वाले अंग्रेजी-हिन्दी वैज्ञानिक कोष के कार्य को प्रारम्भ कर दिया है। नमूने के कुछ पृष्ठ भी "हिन्दी अनुशीलन" में प्रकाशित हुए हैं। परिषद् के प्रधान और मंत्री दोनों डॉ० वर्मा (श्री धीरेन्द्र जी एवं रामकुमार जी) इस कार्य के लिए धन का संचय भी कर रहे हैं। ये सब आशा के चिह्न हैं, जिनसे हिन्दी के गौरव की वृद्धि हुई है। 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' भी इस प्रकार के कार्य के लिए उत्सुक प्रतीत होती है और जिस प्रगति से वातावरण हमारे अनुकूल हो रहा है, वह हमारे सौभाग्य की बात है।

अनेक लिपियों का प्रयोग

अंग्रेजी साहित्य में रोमन लिपि के साथ-साथ ग्रीक अक्षरों का भी बहुत प्रयोग होता है,—रासायनिक, भौतिक और गणित के समीकरणों में ऐलफा, बीटा, गामा, थीटा पाई, ओमेगा आदि लगभग पूरी ग्रीक वर्णमाला का ही प्रयोग आवश्यक समझा जाता है। हमारे स्कूल के विद्यार्थी रेखागणित और बीजगणित में अंग्रेजी के ए, बी, सी, एक्स, वाई, जेड आदि वर्णों का प्रयोग करते हैं, और इन विषयों की प्रकाशित हिन्दी पाठ्यपुस्तकों में भी इन

अक्षरों का प्रयोग विस्तार से हो रहा है। रासायनिक समीकरणों में शब्दों के संकेत भी रोमन लिपि में लिखना एक प्रकार से सर्वमान्य हो गया है, इसका फल यह है कि **हिन्दी में लिखे गये वैज्ञानिक साहित्य में नागरी, रोमन और ग्रीक तीन की वर्णमालाओं का प्रयोग करना पड़ेगा**। यह बात कहाँ तक श्रेयस्कर है इसके सम्बन्ध में मैं अब तक कुछ निश्चय नहीं कर सका हूँ। मैं इस क्षेत्र में कार्य करने वाले सहयोगियों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराना चाहता हूँ। मेरा विचार यह है कि छापेखाने की सुविधा की दृष्टि से जहाँ तक सम्भव हो (१) अंग्रेजी वर्णमाला का कम से कम उपयोग किया जाय—बीजगणित और रेखागणित में नागरी अक्षरों से काम आसानी से निकाला जा सकता है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के पास गणित की जो पुस्तकें प्रकाशनानार्थ आयी हैं, वे इस बात के लिए आदर्श हैं। श्री सुधाकर द्विवेदी जी ने अपने चलन-कलन, समीकरण-मीमांसा आदि ग्रन्थों ग सर्वत्र नागरी-अक्षरों का ही प्रयोग किया है। (२) जिन स्थलों पर कोई अक्षर रूढ़ि हो गया हो (जैसे ग्रीक का "पाई" अक्षर व्यास और परिधि के सम्बन्ध के लिए), उसको छोड़कर यथाशक्य ग्रीक अक्षरों का प्रयोग किया ही न जाय। ऐलफा किरण, बीटा किरण, गामा किरण ये शब्द ले लिये जायँ, पर इन्हें उच्चारण सहित नागरी लिपि में ही लिखा जाय, इस प्रकार एक्स किरण लिखना शुद्ध माना जाय, न कि X-किरण। (३) समीकरण सूत्रों में जहाँ नागरी लिपि के अक्षरों में कुछ विभिन्नता करनी आवश्यक प्रतीत हो वहाँ बंगाली लिपि के अक्षरों का प्रयोग किया जा सकता है। यदि उच्चारण के लिए ध्वनि भेद भी आवश्यक हों तो वहाँ उच्चारण करते समय अकार, मकार, गकार इस प्रकार का उच्चारण किया जाय, अर्थात् बोलते समय नागरी 'अ' को 'अ' कहा जाय और बंगाली के 'अ' को 'अकार' बोला जाय। इस प्रकार बोलने में वह अन्तर उत्पन्न किया जा सकता है जो ए और एलफा, बी और बीटा, जी और गामा में है। यदि और आवश्यक हो तो गुजराती की लिपि के अक्षर भी अपनाये जा सकते हैं। (४) श्री सुधाकर द्विवेदी ने जैसा अपनी समीकरण-मीमांसा में किया है, a, a', a,'' a''' में ऊपर लगाये गये डैशों को मात्राओं द्वारा व्यक्त किया जाय—क, का, कि, की। डैशों की अपेक्षा यह पद्धति हिन्दी में बहुत सफल रही है और इसका अनुसरण किया जा सकता है।

सारांश यह है कि यथाशक्य नागरी लिपि से काम निकाला जाय और

अनिवार्य परिस्थितियों में ही इतरलिपियों का उपयोग किया जाय। ऐसा प्रतीत होता है कि रासायनिक समीकरणों में रोमन संकेतों का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

क्या रोमन गिनतियाँ अपना ली जायँ

यूरोप में तो रोमन गिनतियों का प्रयोग होता ही है, चीन और जापान वालों ने भी इन गिनतियों को अपनाया है, क्योंकि उनकी अपनी लिपि में गिनतियों के लिए ऐसे चिह्न न थे जिनका गणित में सुविधापूर्वक उपयोग किया जा सके। यही परिस्थिति दक्षिणात्य लिपियों की रही है, उदाहरणतः तमिल में जो मूल गिनती है वह वर्णमाला का कुछ रूपान्तर है, और उसके द्वारा बड़ी संख्याओं को प्रकट करने की पुरानी परिपाटी बड़ी जटिल है। इसीलिये इन भाषाओं ने भी रोमन गिनतियों को अपना लिया है। उनकी पुस्तकों के पृष्ठों पर पृष्ठों की संख्या रोमनांकों में ही दी होती है। अब प्रश्न यह है कि क्या हम अपने नागरी अङ्कों को छोड़ दें ? हमारे इन अङ्कों के प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं है। इनका अपना एक इतिहास है। जहाँ तक सिद्धान्त का सम्बन्ध है हमारे इन अङ्कों में और रोमन अङ्कों में कोई मौलिक भेद नहीं है। रोमन अङ्कों के पक्ष में उनका व्यापक प्रयोग एक प्रबल तर्क है। आजकल हम देखते हैं कि हमारे स्कूलों में नीची कक्षा के विद्यार्थी भी रोमन अङ्कों का उपयोग कर रहे हैं और नागरी अङ्कों की अपेक्षा रोमनांक लिखने का उन्हें अधिक अभ्यास है। मैं इस समस्या को अपने साहित्यिक मित्रों के समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ और आशा करता हूँ कि वे इस सम्बन्ध में उचित परामर्श देंगे। वे कृपया यह भी बतावें कि $H_3\ PO_4$ सूत्र को H_3O_4 लिखना शोभा देगा या नहीं।

व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का वर्णानुक्रम

अन्त में एक विशेष विषय की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। यह विषय साहित्यिकों की दृष्टि से अब तक उपेक्षित रहा है। वैज्ञानिक क्षेत्र में ही नहीं, समाचार पत्रों के क्षेत्र में भी यह विषय अपना महत्व रखता है। हमें अपने लेखों में बहुत-सी विदेशी व्यक्तिवाचक-संज्ञाओं का प्रयोग करना पड़ता है। ये शब्द अंग्रेजी में वर्णानुक्रमित होकर हमारे सामने आते हैं। अंग्रेजी वर्णमाला की ध्वन्यात्मक कला इतनी अनिश्चित है कि उस वर्णमाला

में वर्णानुक्रमित किसी शब्द का उच्चारण क्या होना चाहिये, यह कोई नहीं कह सकता। कहने को तो यूरोप के सभी देशों में वर्णमाला एक ही प्रकार की है और इसके आधार पर भ्रमवश लोग रोमन लिपि को सर्वसम्मत लिपि घोषित कर भी देते हैं। पर लिपि केवल अक्षरों की बाह्य-रूपरेखा का नाम नहीं है। बाह्य-रूपरेखा एक होने पर यदि अक्षरों का उच्चारण भी एक हो तब लिपि समान कहला सकती है अथवा नहीं। (इस भेद से मेरा अभिप्राय उदात्त-अनुदात्त स्वर भेद से नहीं है, जैसा कि नागरी वर्णमाला के बंगाली, हिन्दी एवं मद्रासी उच्चारणों में है) यूरोप में उच्चारण का मौलिक अन्तर है, P-A-R-I-S लिखा गया शब्द फ्रान्स में पेरि उच्चरित होता है और अंग्रेजी में पेरिस। M-I-N-E शब्द अंग्रेजी में माइन है और जर्मन में मिने; K-N-I-F-E शब्द अंग्रेजी में नाइफ है, पर जर्मन पद्धति पर इसका उच्चारण क्निफे होगा। इतना अन्तर होने पर भी यह कहना कि रोमन लिपि सर्वमान्य है, इसका कोइ अर्थ नहीं। इसकी सर्वमान्यता तभी स्वीकृत हो सकती थी जब इस वर्णमाला में लिखे गये शब्दों का यूरोप के समस्त देशों में एकसमान उच्चारण होता।

उच्चारण का यह अन्तर साधारण भाषा में कठिनाई नहीं डालता है, अर्थ-बोध से वहाँ उच्चारण कर लिया जाता है। पर व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में यह बाधा बहुत खटकती है। Europe शब्द को कोई हिन्दी में योरुप लिखता है, कोई यूरोप, कोई योरोप। America को अमरीका, एमेरिका, अमेरिका इत्यादि। Leipzig को भूगोल की पुस्तकों में लीपज़िग लिखा जाता है, यद्यपि इसका शुद्ध उच्चारण लाइपत्सिग है। Nazi को नाजी लिखना भूल है, यह शब्द नात्सी है। Lavoisier फ्रेञ्च वैज्ञानिक का नाम कोई लवासिये लिखता है, कोई लवाशिये, कोई लेवोइसिये; यद्यपि इसका उच्चारण लाव्वासीए है। Einstein को कोई ऐन्सटीन, कोई आइंसटीन लिखता है, इसका उच्चारण आइन्सटाइन है। चीनी-जापानी नगरों के नाम भी हमारे सामने अँग्रेजी वर्णानुक्रमण में आते हैं और हम उनका मनमाना उच्चारण करने लगते हैं। उनका असली उच्चारण क्या है, इसकी ओर लोगों का ध्यान नहीं गया है।* मेरा अभिप्राय यह है कि अंग्रेजी वर्णानुक्रमण

***हमारे देश के अनेक नगरों और नदी-नदों के नामों का अंग्रेजी वर्णानुक्रमण कितना भ्रष्ट है यह** Gogra, Muttra, Lucknow, Calcutta, Gan-

के आधार पर उच्चारण करना और तदनुकूल नागरी में लिप्यन्तरित करना कोई गौरवपूर्ण पद्धति नहीं है। 'साहित्य सम्मेलन' से मेरा अनुरोध है कि वह एक ऐसा कोष प्रकाशित करे जिसमें भूगोल में प्रयुक्त नगरों, प्रान्तों, सरिताओं पर्वतों आदि के नामों की आदर्श सूची हो और इनके उच्चारण यथाशक्य दिये हों। शुद्ध से मेरा अभिप्राय उस उच्चारण से है, जो वहाँ का देशवासी करता हो। अंग्रेजी कोषों में भौगोलिक नामों के उच्चारण की ऐसी सूची दी होती है, उससे सहायता मिल सकती है, पर सबसे अच्छा यह होगा कि तद्देशीय व्यक्तियों के सहयोग से यह सूची तैयार की जाय। इसी कारण एक सूची ऐतिहासिक और वैज्ञानिक साहित्य में प्रयुक्त होने वाले पुरुषवाचक नामों की भी होनी चाहिये। जब से रेडियो का व्यवहार बढ़ा है तब से हमें सभी देशों के मौलिक उच्चारण सुनने का अवसर प्राप्त होने लगा है, पर अब हमें अपना अंग्रेजी लिपि द्वारा सीखा गया भ्रष्ट उच्चारण बहुत खटकने लगा है। इन नामों के वर्णानुक्रमण के सम्बन्ध में स्थिरीकरण की नितान्त आवश्यकता है।

नागरी में लिप्यन्तरित करने की क्षमता

जिस समय मैंने अपना यह भाषण प्रेस में प्रकाशित होने के लिए दिया, प्रेस के अधिकारियों ने मेरे भाषण में उद्धृत अंगरेजी स्थलों के प्रति आपत्ति की, क्योंकि उनके प्रेस में अंगरेजी का टाइप कम था और प्रेस में अंगरेजी के कम्पोजिटर भी न थे। उनकी सुविधा का विचार करते हुए मुझे यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि मैं अपने उद्धरणों को नागरी अक्षरों में लिप्यन्तरित कर दूँ। मैंने कई बार अपने लेखों में यह अनुरोध किया है कि नागरी अक्षरों में ही हमें विदेशी भाषाओं के उद्धरणों को प्रस्तुत करना चाहिये, यदि रोमनाक्षरों में आपके वेद-शास्त्रादि प्रकाशित मिलते हैं और अधिकांश पाश्चात्य देशों में अपनी लिपि में ही दूसरों की भाषाओं के उद्धरणों को

---

ges, Kirkee, Jumna, Mussorie, Oudh, Delhi, Poona, Meerut **आदि शब्दों से स्पष्ट है। अपरिचित व्यक्ति कैसे समझ सकते हैं कि ये शब्द घाघरा, मथुरा, लखनऊ, कलिकाता, गंगा, खिडकी, जमुना, मन्सूरी, अवध, देहली, पूर्ण, मेरठ आदि हैं। अंग्रेजी वर्णानुक्रमण द्वारा उच्चारण सीखकर हमने अपने देशी नामों को भ्रष्ट कर दिया है। कभी-कभी यह भ्रष्टो-च्चारण हम गुरुतापूर्वक भी करते हैं, यह सब हमारी अधोगति के लक्षण हैं।**

लिप्यन्तरित करने की पद्धति है, तो हम भी ऐसा ही क्यों न करें। हमने अपनी लिपि को फारसी और अरबी के शब्दों के उपयुक्त तो बना ही लिया है, और इन भाषाओं के उद्धरणों को बहुधा हम अपनी लिपि में ही प्रस्तुत करते आये हैं, तो कोई कारण नहीं कि हम अंगरेजी, फ्रेंच, जर्मन, अथवा चीन-जापान की भाषाओं के उद्धरणों को अपनी लिपि में ही क्यों न लिखें। चीनी भाषा के लिए चीनी लिपि, मिश्री भाषा के लिए मिश्री लिपि, अंगरेजी के लिये अंगरेजी लिपि और रूसी भाषा के लिए रूसी लिपि ऐसी प्रथा बहुत दिनों नहीं चल सकती। हमको काम अपनी लिपि से ही लेना है। मेरा अनुरोध है कि हिन्दी भाषा के लेखक—वैज्ञानिक और शुद्ध साहित्यिक दोनों—अङ्गरेजी भाषा के उद्धरणों को अपने लेखों और ग्रन्थों में देते समय नागरी लिपि का ही प्रयोग करें। सभी उन्नत भाषाएँ अपने उद्धरणों में अपनी लिपि का ही प्रयोग करती हैं, और अंगरेजी को छोड़कर फारसी, अरबी, बंगाली, गुजराती, तमिल, तेलुगू आदि भाषाओं के उद्धरणों के प्रति हम भी अब तक ऐसा ही करते आये हैं। ऐसा करने में प्रेस और टाइपराइटर दोनों की सुविधा है। दूसरी भाषाओं की नयी ध्वनियों के लिए नये संकेत हमें अपने 'विशेष' कामों के लिए बनाने पड़ेंगे पर यह अनिवार्य नहीं है कि हम लिप्यन्तरित करने में सदा इन स्वरों का व्यवहार करें। साधारण कार्यों के लिए हमारी लिपि और वर्णमाला पर्याप्त है।

हिन्दी में अनुसन्धानों की पत्रिका

एक बात की ओर ध्यान और आकर्षित करके मैं अपने इस भाषण को समाप्त करने का प्रयास करूँगा। आज तक हमने 'विज्ञान' पत्रिका द्वारा लोकप्रिय अथवा पाठ्यपुस्तक सम्बन्धी साहित्य ही प्रकाशित किया है। इस प्रकार का कार्य करते हुये हमें ३० वर्ष हो गये। अब आवश्यकता है कि हम एक पग आगे बढ़ें। **मेरा प्रस्ताव है कि हिन्दी में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान पत्रिका आरम्भ करनी चाहिये।** जापान में तो जापानी भाषा में अनेक अनुसन्धान-पत्रिकाएँ अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही हैं। हमें भी यह काम किसी दिन आरम्भ करना है। जापान वाले इन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का सारांश अँग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच भाषाओं में भी प्रकाशित करते हैं, जिससे यूरोप वाले इनकी प्रगतियों से परिचित रहें। मैं हिन्दी में इस प्रकार की पत्रिका के लिए उत्सुक हो रहा हूँ। मैं इसके सम्पादन का भार अपने पर

लेने को तैयार हूँ; यदि साहित्य सम्मेलन ५००) वार्षिक के लगभग इस पर व्यय करने को तैयार हो, तो नागरी प्रचारिणी पत्रिका के समान एक त्रैमासिक पत्रिका से आरम्भ किया जाय। भारतवर्ष में इस समय अँग्रेजी में कई अनुसंधान पत्रिकाएँ निकल रही हैं, और जो समस्त विदेशों में जाती हैं, पर उन पर कहीं भी किसी भारतीय भाषा या लिपि का चिह्न तक नहीं होता। ये पत्रिकाएँ विदेश में यही भावनाएँ उत्पन्न करती होंगी कि हमारे देश की न कोई भाषा है, और न कोई लिपि ही। इस दृष्टि से चीनी और जापानी पत्रिकाएँ हमसे कहीं अधिक गौरव अपनी भाषा को देती हैं। मैंने उनकी अँग्रेजी पत्रिकाओं पर भी पत्रिका का नाम एवं उनके परिषद् के पदाधिकारियों के नाम उनकी ही वर्णमाला में प्रकाशित देखे हैं।

मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि हमारी भाषा का सर्वतोन्मुखी गौरव बढ़े। भाषा में हमारी मनोवृत्ति का प्रतिबिम्ब पड़ता है, राष्ट्रीय भाषा की सेवा राष्ट्र की एक परमोच्च सेवा है।

मैं एक बार फिर आपको धन्यवाद देना चाहता हूँ कि आपने मुझे अपने विचार व्यक्त करने का एक अवसर दिया।

अभिभाषण*-११

श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव

प्यारे भाइयो और बहनो !

विज्ञान का विषय बड़ा ही व्यापक और गंभीर है। एक बड़े विद्वान् ने 'विज्ञान' को समुद्र की उपमा दी थी और अपने को समुद्र के किनारे पर बिखरे हुए छोटे-छोटे पत्थरों का बटोरने वाला समझा था। यह उस समय की बात है जब आधुनिक विज्ञान अपनी बाल्यावस्था में था अर्थात् आज से लगभग ३०० वर्ष पहले। इस बीच में आधुनिक विज्ञान ने इतनी उन्नति कर ली है कि इसकी एक शाखा के विशेषज्ञ भी अपने को उस शाखा की सभी उपशाखाओं का मर्मज्ञ नहीं समझते। एक मित्र का कथन है कि इधर के २० वर्षों में भौतिक विज्ञान की इतनी उन्नति हुई है कि इससे पहले के पढ़े हुए बड़े-बड़े पदवीधारी भी इसको अच्छी तरह ग्रहण करके छात्रों को समझाने में अपने को असमर्थ पाते हैं जब तक कि वे अपना बहुत-सा अवकाश इसके अध्ययन में न लगावें। ऐसी दशा में इस सेवक से जो विज्ञान का भक्त तो अवश्य है परन्तु उसके विषय में बहुत कम ज्ञान रखता है आप लोग यह आशा तो कर नहीं सकते कि वह इस मंच से विज्ञान के सम्बन्ध में गम्भीर और गवेषणापूर्ण भाषण करे। यह समझते हुए भी आपने मुझे इस पद पर बैठाने की जो कृपा की है उसके लिए मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि आपने जिस प्रेम से इस आसन पर बैठाने की कृपा की है उसी प्रेम से मेरी तोतली बातें सुनने की भी कृपा करेंगे।

विज्ञान का अर्थ है विशेष ज्ञान। आज-कल लोग पदार्थ-विज्ञान को ही विज्ञान समझते हैं। यह विशेषता दिखलाने के लिए कुछ लोग इसे प्राकृतिक विज्ञान (Natural Science) कहते हैं और उन्हीं पदार्थों को प्राकृतिक समझते हैं जो हमारी इन्द्रियों से जाने जा सकते हैं। इस दृष्टि से पहले पदार्थों के केवल तीन विभाग किये गये थे—ठोस, द्रव, और वायव्य। जब बहुत सी ऐसी घटनाएँ उपस्थित हुईं जिनकी व्याख्या इन तीनों के द्वारा न

---

*३३वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन संवत् २००२ उदयपुर अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

हो सकी तब चौथा पदार्थ ईथर लाया गया जो अत्यन्त सूक्ष्म और सारे सौर जगत् में व्यापक समझा जाता है। यह प्राचीन भारतीयों के 'आकाश' शब्द से बहुत कुछ मिलता है।

विज्ञान और धर्म

जिस समय पाश्चात्य जगत् में आधुनिक विज्ञान बढ़ने लगा उस समय ऐसी बहुत सी बातें ज्ञात हुईं जो वहाँ की धर्मपुस्तक बाइबिल की बहुत सी बातों के प्रतिकूल पड़ती थीं। इसलिए उस समय के धर्मवेत्ताओं ने विज्ञान को अधार्मिक समझकर इसका तिरस्कार किया और इसके सेवियों को तरह-तरह के कष्ट दिये। यह हवा कुछ दिन तक यहाँ भी चली और लोग समझने लगे कि विज्ञान के जाननेवाले धर्मपुस्तकों में लिखी हुई बहुत-सी बातों को नहीं मानते और न ईश्वर को ही मानते हैं, इसलिए नास्तिक हैं। परन्तु यह विचार कुछ दिन के बाद बदलने लगा और अब प्राचीन पद्धति के विद्वान् भी वैज्ञानिक अनुसंधानों से लाभ उठाकर धर्म की व्याख्या इस प्रकार करने लगे कि दोनों का समन्वय होता है। अब तो यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि धर्म और विज्ञान में कोई विरोध नहीं है, विज्ञान धर्म का सहायक है। यह बात प्राचीन महर्षियों ने भी स्वीकार की है जो एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी।

धर्म का तत्त्व समझने के लिए हमारे यहाँ षड्दर्शन हैं जिनके नाम हैं—वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा या वेदान्त। इन छहों दर्शनों में, जहाँ तक पदार्थों का सम्बन्ध है, समानता है। वरन् यह कहना चाहिए कि सबका आधार पदार्थ-विज्ञान या विज्ञान है। वैशेषिक दर्शन तो पदार्थ-विज्ञान का ही मुख्य दर्शन माना गया है। इसलिए इसके आरम्भ के दो-तीन सूत्रों पर विचार करने से यह पता चल जायगा कि धर्म और विज्ञान में कितना गहरा सम्बन्ध है और विज्ञान के बिना धर्म का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। इसका पहला सूत्र यह है—

अथातो धर्मं व्याख्या स्यामः।

जिससे प्रकट होता है कि यह पुस्तक धर्म की व्याख्या करने के लिए लिखी गयी है। इसका दूसरा सूत्र बतलाता है कि धर्म क्या है,

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धि स धर्मः।

अर्थात् धर्म वही है जिससे अभ्युदय (सांसारिक उन्नति) और नि.श्रेयस (मोक्ष) की सिद्धि हो।

चौथे सूत्र में बतलाया गया है कि किस तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस की सिद्धि होती है।

द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्यभ्यां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसम् । अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म आदि पदार्थों के साधर्म्य और वैधर्म्य के तत्त्वज्ञान से निःश्रेयस होता है।

पाँचवें सूत्र से स्पष्ट हो जाता है कि द्रव्य क्या है—पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशकालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैशेषिक दर्शन पञ्च महाभूतों के अतिरिक्त काल, दिक्, आत्मा और मन को भी द्रव्य मानता है—पृथ्वी, जल, वायु और आकाश इन्हीं को वह अपना विषय समझता है। तेज को वह शक्ति समझता है, मन और आत्मा को भी वह द्रव्य नहीं मानता। परन्तु इधर के १५, २० वर्षों के और विशेष करके इधर सात वर्षों के अनुसंधानों से अब आधुनिक विज्ञान-वेत्ता भी कहने लगे हैं कि चारों प्रकार के भिन्न-भिन्न तत्त्वमूल में शक्ति-पुञ्ज ही हैं। इसलिए वैशेषिक दर्शन के अनुसार आधुनिक विज्ञान धर्म का विरोधी तो नहीं है।

विज्ञान का ध्वंसकारी परिणाम

इस समय विज्ञान के ध्वंसकारी परिणाम से लोगों का चित्त घबड़ा उठा है और लोग समझने लगे हैं कि विज्ञान के कारण संसार का नाश शीघ्र हो जायगा। उन लोगों से मेरा नम्र निवेदन है कि इसमें विज्ञान का दोष नहीं है, वरन् ईर्ष्या, द्वेष, लोभ आदि का दोष है। इसलिए जब तक किसी मनुष्य या समाज के इन मानसिक विकारों को सामूहिक रूप से नियन्त्रण में रखने का उपाय नहीं सोचा जायगा तब तक हम इसी प्रकार दुःख भोगते रहेंगे। यदि इनको नियन्त्रण में रखकर वैज्ञानिक अनुसंधानों या परमाणुशक्ति से लाभ उठाया जाय तो संसार का कायापलट हो सकता है। वैज्ञानिक आविष्कार यन्त्र की तरह हैं, यदि इनसे अच्छा काम लीजिए तो संसार की भलाई हो सकती है और बुरा काम लीजिए तो संसार का नाश भी हो सकता है। आग, छुरी, तलवार आदि से आततायी समाज की बड़ी हानि करता है, परन्तु

फिर भी इनकी उपयोगिता के कारण इन्हें कोई त्याग नहीं सकता। इसी प्रकार वैज्ञानिक अनुभवों से भी हमें लाभ उठाना चाहिए और व्यवस्था करनी चाहिए कि परमाणुशक्ति जैसी शक्तियों का उपयोग कोई भी देश या मनुष्य ध्वंसकारी कामों के लिए न करे। मैंने रसायनसार या किसी ऐसी ही वैद्यक-पुस्तक में पढ़ा था कि विषों का प्रयोग दुष्ट विद्यार्थियों को नहीं बतलाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि आधुनिक विज्ञान-वेत्ताओं को भी कुछ ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि ध्वंसकारी पदार्थों का उपयोग दुष्ट प्रकृति के मनुष्यों को न बतलाया जाय। हर्ष की बात है कि परमाणु बम के दुष्प्रयोग के विरुद्ध संसार के बड़े-बड़े विचारकों का ध्यान जा रहा है और इसके नियन्त्रण के भी उपाय सोचे जा रहे हैं।

विज्ञान से धर्म का ज्ञान

ऊपर मैंने बतलाया है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के प्रतिकूल नहीं हैं, वरन् विज्ञान, धर्म का सहायक है। हमारा धर्म कहता है कि यह संसार एक ही अव्यय, अविनाशी और सनातन सत्य से बना है। सांख्यों का सिद्धान्त है कि इन्द्रियों को अगोचर अर्थात् अव्यक्त, सूक्ष्म और चारों ओर अखण्डित भरे हुए एक ही निरवयव मूल द्रव्य से सारी व्यक्त सृष्टि उत्पन्न हुई' है—(गीतारहस्य पृ० १७१)। परन्तु यह बात साधारण बुद्धि के मनुष्यों की समझ में नहीं आती थी और न इसका प्रत्यक्ष प्रमाण ही दिया जा सकता था। परन्तु **आधुनिक विज्ञान ने इसे सिद्ध कर दिया।** एक समय था जब आधुनिक विज्ञान के अनुसार सारी सृष्टि दो भागों में विभक्त की जाती थी—द्रव्य और शक्ति (matter and force)। परन्तु अब यह सिद्ध हो गया कि द्रव्य नाम की कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है, जिसे साधारणतः लोग द्रव्य समझते हैं वह शक्ति की ही एक अवस्था है। जैसे वाष्प, जल और बर्फ एक ही सत्ता की तीन अवस्थाएँ हैं, वैसे ही द्रव्य शक्ति की एक अवस्था है। यही नहीं, आधुनिक विज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि संसार के ९२ या इससे कुछ ऊपर तथाकथित मौलिक तत्त्व भी एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। क्योंकि प्रत्येक तत्त्व का सूक्ष्मतर रूप परमाणु हैं जो गत शताब्दी के अन्त तक अविभाज्य और पदार्थ के सबसे छोटे अंश समझे जाते थे परन्तु अब देखा गया है कि परमाणु एक क्षुद्र सौर-परिवार की तरह है जिसका बीज (nucleus) सूर्य की तरह नाभि में स्थिर रहता है और विद्युत्कण

(electron) इसके चारों ओर अपनी-अपनी कक्षाओं में ग्रह की तरह परिक्रमा करते रहते हैं। परमाणु बीज कितना छोटा होता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक घन सेंटीमीटर में एक करोड़ अरब × एक करोड़ अरब अथवा 10^{32} केन्द्र समा सकते हैं। परमाणु का कुल द्रव्य बीज में ही एकत्र रहता है और द्रव्य के सारे भौतिक और रासायनिक गुण परिक्रमा करनेवाले इलेक्ट्रानों से सम्बन्ध रखते हैं तथा बीज साधारणतः किसी क्रिया में भाग नहीं लेता। इस बीज में भी छोटे-छोटे कण होते हैं जिनको प्रोटान (proton) और निउट्रान (neutron) कहते हैं। अभी तक यह समझा जाता है कि यह अविभाज्य हैं अर्थात् इनसे भी छोटे टुकड़े नहीं हो सकते। निउट्रान में कोई विद्युत्शक्ति नहीं होती परन्तु प्रोटान में धनात्मकविद्युत् भरी रहती है। ये दोनों प्रबल आकर्षणशक्ति के द्वारा बीज के भीतर बँधे रहते हैं। संसार के भिन्न-भिन्न प्रकार के तत्वों में जो अन्तर देख पड़ता है, वह बीज के भीतर के इन प्रोटानों और निउट्रानों की संख्या के कारण है। यदि किसी तत्त्व के प्रोटानों और निउट्रानों की संख्या में कमी-बेशी कर दी जाय तो वह दूसरे तत्त्व में बदल सकता है। लोहे से सोना बनाया जा सकता है, जो पहले असंभव समझा जाता था—('विज्ञान' भाग ६१ सं० ६, पृष्ठ २-५)।

इधर ६ व्रर्षों के अनुसन्धान से सिद्ध हुआ कि परमाणु बीज के भी टुकड़े किये जा सकते हैं और इस क्रिया से शक्ति उत्पन्न होती है, यही परमाणु बम (atom bomb) की विध्वंसकारिणी शक्ति है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि संसार के परस्पर भिन्न-भिन्न पदार्थ केवल देखने में भिन्न प्रतीत होते हैं, यथार्थ में भिन्नता नहीं हैं। क्या इससे हमारे सांख्यों का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता ?

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान से इतना तो सिद्ध हो गया कि पदार्थ मूल में जड़ नहीं है, वरन् शक्ति का पुञ्ज है। अब यह सिद्ध करना और रह गया कि यह शक्ति अन्धी नहीं है, इसमें चेतनता भी है। **यदि यह भी सिद्ध हो जाय तो हमारे वेदान्त सिद्धान्त की सारी सृष्टि के मूल में एक परमब्रह्म ही है जो सत् चित्त् और आनन्दरूप है, सप्रमाण सिद्ध हो जाता है।**

विज्ञान और विश्वास का मिथ्या विरोध

इस प्रकार आधुनिक विज्ञान के निष्कर्ष हमारे वेदान्त दर्शन के अनुकूल सिद्ध हो रहे हैं और इसका पोषण कर रहे हैं, परन्तु जो विश्वास किसा

तत्त्वज्ञान पर आश्रित नहीं है वरन् भ्रममूलक ज्ञान के कारण है, उन पर आधुनिक विज्ञान अवश्य कुठाराघात करता है जिससे हमें दुःखी नहीं होना चाहिए और न डरना चाहिए। ऐसे मिथ्या विश्वासों को हमें बदलना ही पड़ेगा। कौन ऐसा मनुष्य है जो प्राचीनों की तरह इस बात का विश्वास करेगा कि पृथ्वी अचल है और सूर्य, ग्रह, तारे आदि इसकी परिक्रमा कर रहे हैं जब कि वह स्पष्ट देख सकता है और प्रयोगों से सिद्ध कर सकता है कि यथार्थ में पृथ्वी ही चलती है और ग्रहों की विचित्र गतियाँ इसी के कारण होती है।

इस प्रकार प्रायः सभी पुराणों में सप्तर्षि के चलने की बात कही गयी है। काश्मीर में तो एक प्रकार का संवत् भी चालू है जो सप्तर्षि-संवत् कहलाता है और जिसका चक्र १०० वर्ष का माना गया है क्योंकि पुराणों में कई जगह लिखा मिलता है कि सप्तर्षि १०० वर्ष में एक नक्षत्र चलता है और २७०० वर्षों में एक नक्षत्र-चक्र पूरा कर लेता है। परन्तु आकाश को ध्यान से देखने वाले यह देख सकते हैं कि सप्तर्षि में ऐसी कोई गति नहीं है। यदि आप १८५० ई० के वेधों को वर्तमान वेधो से मिलाएँ तो पता चल जायगा कि ७५ वर्षों में सप्तर्षि के ध्रुवसूचक तारों के विषुवांश की गति अयन चलन के कारण कितनी हुई।

१८५० का विषुवांश १९२५ का विषुवांश अन्तर—

	घं०	मि०	से०	घं०	मि०	से०	मि०	से०
सप्तर्षि का ख तारा	१०	५२	४५	१०	५७	२०	४	३५
,, क ,,	१०	५४	२५.७	१०	५१	७	४	४१

आप देखेंगे कि ७५ वर्षों में इन तारों की विषुवांश गति ४ मिनट ३५ सेकंड के लगभग हुई जो अयन चलन के कारण हुई। यदि १० वर्ष में एक नक्षत्र की गति ठीक होती तो इतना ही अन्तर थोड़े ही पड़ता।

अब आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय दर्शन के मर्मज्ञ पाश्चात्य अनुसन्धानों का समन्वय करें और दिखलावें कि हमारे दर्शनशास्त्र और वैज्ञानिक अनुसन्धानों में कितनी समानता है। हर्ष की बात है कि हमारे कुछ तत्त्वज्ञानी इस ओर अपना ध्यान दे रहे हैं।

परन्तु हमारी बहुत बड़ी विद्वन्मण्डली इस ज्ञान से वंचित है, क्योंकि उनका पठन-पाठन संस्कृत में होता है जिसमें आधुनिक विज्ञान की शिक्षा नहीं दी जाती। इसलिए वे इससे न तो कोई लाभ उठा सकते हैं और न इसके परिणामों से दर्शनशास्त्र का समन्वय कर सकते हैं। इसलिए आवश्यक

है कि इस समाज को भी हिन्दी भाषा के द्वारा आधुनिक विज्ञान की पूर्ण जानकारी करायी जाय । **आज से लगभग ३२ वर्ष पूर्व अर्थात् हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के जन्म से लगभग एक वर्ष के भीतर* प्रयाग में विज्ञान परिषद् की स्थापना की गयी जिसके मुख**-पत्र 'विज्ञान' का मूल मंत्र यह रखा गया—

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति—तै० उ० ३।५

परन्तु विज्ञान-परिषद् की ओर लोगों का ध्यान उतना नहीं गया जितना जाना चाहिए । इन ३२ वर्षों में विज्ञान परिषद् ने हिन्दी में जितना साहित्य रचा और उसके कारण हिन्दी में विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें लिखने का जितना उत्साह लेखकों को हुआ, यह कम प्रशंसा की बात नहीं है । परन्तु फिर भी इतना पर्याप्त नहीं है । हम चाहते हैं कि हमारी मातृभाषा में विज्ञान की सभी शाखाओं के उत्तम-उत्तम ग्रन्थ रचे जायँ, जिनके द्वारा विज्ञान का ऊँचे से ऊँचा ज्ञान केवल मातृ-भाषा जाननेवालों के लिए भी सुलभ हो जाय । हैदराबाद की निज़ाम सरकार ने प्रचुर धन की सहायता से एक ऐसा विभाग खोल रखा है, जो वैज्ञानिक पुस्तकों के अनुवादों द्वारा उर्दू-साहित्य का भंडार भर रहा है । यह काम हिन्दी साहित्य-सम्मेलन आसानी से कर सकता है । इसका प्रचार-विभाग जैसा काम कर रहा है, वैसा ही साहित्य निर्माण विभाग को भी करना चाहिए । भारतीय ग्रन्थों के अनुवाद के साथ-साथ, जैसा इस समय हो रहा है, आधुनिक विज्ञान के ग्रन्थों का भी अनुवाद या भावानुवाद होना चाहिए । इसके लिए एक अलग उपसमिति होनी चाहिए जिसमें रसायन, भौतिक, जीव, भूगर्भ, वनस्पति, खनिज आदि विज्ञानों के विशेषज्ञ रहें जो यह बतलावें कि विज्ञान से भिन्न-भिन्न विषयों की कौन-कौन-सी प्रामाणिक पुस्तकों का अनुवाद कराया जाय और कैसी-कैसी पुस्तकें स्वतन्त्र रची जायँ । इस सम्बन्ध में केवल सिद्धान्त के ही ग्रन्थ न रचे जायँ, वरन् ऐसी पुस्तकों की भी रचना हो जो विविध उद्योग-धन्धों और कलाओं के जानकारों को भी सहायता पहुँचा सकें और उनके सैद्धान्तिक ज्ञान की भी वृद्धि करें । युद्धोत्तर-निर्माणकाल में ऐसे ग्रन्थों की अत्यन्त आवश्यकता है । ऐसे ग्रन्थ लिखने वालों को उचित और पर्याप्त पारिश्रमिक भी देने की व्यवस्था होनी चाहिए क्योंकि

***विज्ञान परिषद् की स्थापना १९१३ ई० में और हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना १९१० में की गयी, अतः यह अन्तर ३ वर्ष का हुआ—सम्पादक**

विज्ञान-परिषद्, प्रयाग के ३२ वर्षों के अनुभव से सिद्ध हो रहा है कि यह काम अवैतनिक रूप से सन्तोषजनक रीति से नहीं हो सकता।

हमको यह बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि हिन्दी में विज्ञान की किन-किन शाखाओं पर पुस्तकें लिखवायी जायँ। हम तो समझते हैं कि विज्ञान की जितनी शाखाएँ हैं, प्रत्येक पर दो-दो पुस्तकें ऐसी होनी चाहिए जिनको पढ़कर हमारे हिन्दी या संस्कृत के विद्वान् उस विषय की कुछ जानकारी प्राप्त कर सकें। किस वैद्य को आधुनिक विज्ञान के रसायन, भौतिक, जीव, वनस्पति, खनिज, शरीर-विज्ञान आदि के जानने की आवश्यकता नहीं है? कला-कौशल के व्यवसायियों को रसायन, भौतिक-वनस्पति-विज्ञान आदि सभी जानने की आवश्यकता है। क्या वर्तमान ज्योतिषी शुद्ध गणित, व्यावहारिक गणित, भौतिक और रसायन-विज्ञान के बिना जाने नक्षत्र-विद्या का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर सकता है? क्या कोई गृहिणी रसायन, भौतिक, जीव, वनस्पति-विज्ञान आदि का बिना परिचय प्राप्त किये गृह-विज्ञान में निपुण हो सकती है और अपने घर को आदर्श बना सकती है? इसलिए **हिन्दी में विज्ञान की प्रत्येक शाखा का साहित्य-निर्माण करना चाहिए।**

दो प्रकार की पुस्तकमालाएँ हों

समाज के सब प्रकार के मनुष्यों को लाभ पहुँचाने के लिए हमें कम से कम **दो प्रकार की विज्ञान-ग्रन्थ-मालाओं की आवश्यकता** है। एक तो विद्वानों के लिए उच्चकोटि के वैज्ञानिक ग्रन्थ जिनसे वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी बढ़े और हमारा सांस्कृतिक स्तर ऊँचा उठे और दूसरी से हमारे गाँवों में रहनेवाले किसानों और शहरों में रहनेवाले कलाकारों को लाभ हो। दूसरे प्रकार की पुस्तकें सौ-सौ पृष्ठों से बड़ी न हों और न उनका दाम ही आठ-आठ आने से अधिक रखा जाय। उदाहरण के लिए गाँवों में बसनेवालों के लिए पुस्तकों का विषय यह होना चाहिए—

१—खेती-बारी के मूल सिद्धान्त। २—पशुपालन जिसमें पशुओं की रक्षा, सफाई, गोबर, मूत्र आदि से खाद बनाने की रीति, दूध-दही और मक्खन को सुरक्षित रखने की विधियाँ, पशुओं के रोग और चिकित्सा इत्यादि का वर्णन हो। ३—शरीर-विज्ञान, स्वास्थ्यरक्षा पर भी पुस्तक होनी चाहिए, क्योंकि हमारे किसान इन विषयों से अनभिज्ञ होने और मिथ्या-विश्वासों के कारण अपनी बड़ी हानि कर रहे हैं।

ऐसी पुस्तकें सरल भाषा में रोचक ढंग से लिखी जायँ तो गाँव वाले इनसे सहज ही लाभ उठा सकते हैं। इनसे उनकी साक्षरता बढ़ेगी, उनका परम्परागत ज्ञान बढ़ेगा, भ्रमात्मक विचारों से छुटकारा होगा और सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होगा। ऐसी पुस्तकमालाओं से हमारे लेखकों और प्रकाशकों को भी लाभ होगा। मान लीजिए कि हिन्दी-भाषी प्रान्तों में कुल मिलाकर एक लाख गाँव हैं और प्रत्येक गाँव में कम से कम एक-एक पुस्तक पहुँचाने का प्रबन्ध किया गया है तो, कम से कम एक लाख पुस्तकों की खपत तो अवश्य ही होगी। इससे प्रकाशकों को भी पर्याप्त लाभ पहुँच सकता है और लेखकों को भी रायल्टी और पुरस्कार के रूप में उचित और आवश्यक सहारा मिल सकता है।

कृषि और उद्योग

कृषि और उद्योग की शिक्षा हिन्दी में देने के लिए मेरठ का कला-भवन, जिसके संचालक चौधरी मुखत्यारसिंह जी हैं, कई वर्षों से काम कर रहा है और उसने कई पुस्तकें भी प्रकाशित करवायी हैं। चौधरी साहब कृषि-सम्बन्धी आवश्यकताओं को अच्छी तरह समझते हैं, इसलिए यदि उनके सहयोग से कृषि और उद्योग-सम्बन्धी पुस्तकों का प्रकाशन किया जाय तो बड़ा ही अच्छा हो। चौधरी साहब से हमारी प्रार्थना है कि वे विषयों के चुनाव के सम्बन्ध में कुछ सुझाव दें। आरम्भ में तीन-चार पुस्तकें जो बहुत ही आवश्यक हों छापी जायँ और उनका प्रचार किया जाय। इससे जो लाभ हो, उससे आगे की पुस्तकें प्रकाशित की जायँ। मैं समझता हूँ कि इस काम के लिए लोगों से चन्दा माँगने की आवश्यकता नहीं है। यदि पुस्तकें आवश्यक और महत्त्वपूर्ण होंगी तो उनकी बिक्री से हमारा खर्च चलेगा और हम लेखकों को उचित पुरस्कार भी दे सकेंगे।

दुःख है कि हमारे हिन्दी प्रान्तीय विश्वविद्यालयों में अब भी हिन्दी सब छात्रों को अनिवार्य रूप में नहीं पढ़ायी जाती। विज्ञान के विद्यार्थी तो इससे प्रायः वंचित ही रहते हैं जिसका दुष्परिणाम यह होता है कि वह अपने ज्ञान को हिन्दी में प्रकट करने में असमर्थ रहते हैं और अपने ज्ञान से हिन्दीभाषी लोगों को लाभ नहीं पहुँचा सकते। इसलिए हमारा यह प्रयत्न होना चाहिए कि **विश्वविद्यालयों में सभी हिन्दी-भाषी छात्रों को बी० एस-सी० और एम० एस-सी० के विद्यार्थियों के लिए भी हिन्दी भाषा का एक प्रश्नपत्र अनिवार्य कर दिया**

जाय जैसा अँग्रेजी के लिए एक सामान्य (General English) प्रश्नपत्र आता है। इससे उनमें यह योग्यता रहेगी कि वे अपने मनोभाव शुद्ध हिन्दी में व्यक्त कर सकें और अपने ऊँचे से ऊँचे ज्ञान को हिन्दी भाषा में लिखकर प्रकट कर सकें। डॉ० रामकुमार वर्मा के भाषण से यह जान कर प्रसन्नता हुई कि प्रयाग विश्वविद्यालय ने यह प्रबन्ध कर दिया है।

इस सम्बन्ध में कलकत्ता विश्वविद्यालय बहुत दिनों से ऐसा काम कर रहा है। वहाँ बँगला भाषा का जानना प्रत्येक बंगाली विद्यार्थी के लिए अनिवार्य है। इसका परिणाम भी स्पष्ट है। बँगला भाषा में आधुनिक विज्ञान और दर्शन पर जितनी उत्तम-उत्तम पुस्तकें निकली हैं, उतनी हमारी भाषा में कहाँ हैं?

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक ग्रन्थ-निर्माण में एक कठिनाई यह होती है कि हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का कोई अच्छा और पूर्ण कोष नहीं है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का परिवर्धित कोष भी पर्याप्त नहीं है, क्योंकि विज्ञान का विस्तार बड़ी तेजी से हो रहा है जिससे उसके पारिभाषिक शब्दों की संख्या भी बहुत बढ़ रही है। इसलिए ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि शब्दकोष भी तैयार कराये जायँ। हर्ष की बात है कि प्रयाग विश्वविद्यालय की 'भारतीय हिन्दी परिषद्' ने इसी वर्ष विज्ञान के विविध शाखाओं के मर्मज्ञों से एक वैज्ञानिक शब्दकोष तैयार करवाया है जिसमें प्रयत्न किया गया है कि एम० एस-सी० के कोर्स तक में पढ़ाये जाने वाले सब शब्द आजायँ। इसका सम्पादन हमारे गत अधिवेशन के सभापति डाक्टर सत्यप्रकाश जी कर रहे हैं। आशा है कि यह कोष शीघ्र छपकर प्रकाशित हो जायगा। इससे पारिभाषिक शब्दों की कठिनाई कुछ दिनों के लिए दूर हो जायगी। फिर जैसे-जैसे वैज्ञानिक साहित्य का विकास होगा, तैसे-तैसे इसमें भी परिवर्तन होता जायगा।

कुछ लोगों का विचार है कि ये नये पारिभाषिक शब्द गढ़ने की आवश्यकता नहीं है, अंग्रेजी के शब्द ही नागरी लिपि में लिखे जायँ तो अच्छा होगा; क्योंकि इससे हमें बाहरी देश से व्यवहार करने में सुविधा होगी। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। छोटे-छोटे सरल शब्द जो रूढ़ि हो गये हैं, उन्हें ले लेने में कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु बड़े-बड़े शब्द जिनका उच्चारण करना भी हमारे लिए

कठिन होगा उन्हें लेने से लाभ बहुत कम है, कठिनाई बहुत है। यह तो निर्विवाद है कि अंग्रेजी शब्द ऊटपटांग ढङ्ग से नहीं गढ़े गये हैं; वे भावात्मक हैं—अर्थात् उनसे किसी अर्थ का बोध होता है जिससे उस वस्तु का बोध सुगमता से हो जाता है जिसके वे द्योतक हैं। उदाहरण के लिए टेलिस्कोप या माइक्रास्कोप शब्द ले लीजिये। पहले का शब्दार्थ है दूर से देखनेवाला और दूसरे का सूक्ष्म वस्तुओं को दिखानेवाला। जो अंग्रेजी भाषा जानते हैं, उनको इन शब्दों का शब्दार्थ समझाने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए वे सहज ही समझ सकते हैं कि यह कैसे यंत्रों के द्योतक हैं। परन्तु यदि यही शब्द हिन्दी में ज्यों के त्यों ले लिये जायँ तो हिन्दीवालों को अंग्रेजी के 'टेली' और 'स्कोप' तथा 'माइक्रो' शब्दों का भी अर्थ रटना पड़ेगा। इसलिए इन भावात्मक शब्दों की जगह दूरबीन या दूरदर्शक और खुर्दबीन या सूक्ष्म-दर्शक शब्द ही ग्रहण करना उचित और लाभदायक है। इन शब्दों में भी दूरबीन और खुर्दबीन शब्दों की जगह दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक शब्द अधिक उपयोगी और सरल हैं। किसी समय इनके लिए दूरवीक्षण और सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र नामक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, परन्तु ये शब्द भी अपने स्थूल-काय शरीर और जटिलता के कारण ग्रहण करने योग्य नहीं हैं।

इसलिए हिन्दी के सरल और भावसूचक शब्दों का ही प्रयोग करना उचित है। **अंग्रेजी के हजारों जटिल वैज्ञानिक शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेने से हमारी स्मरण-शक्ति को व्यर्थ ही अनावश्यक बोझे से लादना कहाँ की बुद्धिमानी है?** शब्दों का निर्माण संस्कृत और हिन्दी भाषा के ही आधार पर होना चाहिए। हाँ, यह ध्यान रखना होगा कि उसमें जटिलता न आने पावे, जैसे दूरवीक्षण यंत्र की जगह दूरदर्शक अधिक सरल और भाव-बोधक है। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि गत अधिवेशन के सभापति ने इस विषय को अधिक विस्तार के साथ लिखकर दिखलाया है कि शब्दनिर्माण किस ढङ्ग पर होना चाहिए जिसका सारांश मैं यहाँ उन्हीं के शब्दों में दुहरा देता हूँ—

"मेरे विचार से ऐसे अंग्रेजी शब्द ले लेने में कोई आपत्ति नहीं है जिस शब्द के अन्य वैयाकरण रूप हमें बनाने न पड़े। जिन शब्दों के अनेक रूपान्तरों का हमें अपनी वैज्ञानिक भाषा में प्रयोग करना पड़े, उनके लिए अंग्रेजी का विदेशी रूप ग्रहण करना भाषा की क्षमता में बाधा डालना है। शब्दों के रूपान्तर तो प्रत्येक भाषा में अपने-अपने व्याकरण के आधार पर

ही बनाये जायँगे। हम विदेशी भाषा के किसी एक रूप को तो ग्रहण कर सकते हैं, पर उसके ग्रहण करने के अनन्तर शेष भावात्मक रूप अपने व्याकरण तथा अपनी भाषा-परिपाटी के अनुसार बनाने की हमें स्वतन्त्रता होनी चाहिए।......अतः यह स्पष्ट है कि जिस शब्द के हमें अनेक वैयाकरणरूपों का वैज्ञानिक साहित्य में प्रयोग करना पड़े, उसके अंग्रेजी रूप का ग्रहण करना साहित्य में श्रेयस्कर न होगा। शेष शब्दों में से कुछ अंग्रेजी तत्सम अपनाये जा सकते हैं, कुछ तद्भव रूप में।"

अनेक लिपियों का प्रयोग

अंग्रेजी वर्णमाला में कुल २६ अक्षर हैं और वैज्ञानिक संकेत इससे कहीं अधिक। इसलिए रोमन अक्षरों के साथ ग्रीक अक्षरों का भी प्रयोग किया जाता है और जब इनसे भी काम नहीं चलता तब एक, दो, या तीन डैश भी लगाये जाते हैं। दुःख है कि कोई-कोई लेखक हिन्दी अक्षरों के साथ भी डैशों का प्रयोग करते हुए देखे गये हैं जो अनावश्यक हैं। हमको विदेशी अक्षर या डैशों को अपनाने की आवश्यकता नहीं है। हमारी नागरी वर्णमाला मात्राओं के साथ मिलकर इतने संकेतों का सूचक हो सकती है जिसमें सारे संसार के भाव प्रकट किये जा सकते हैं और हमारा सब वैज्ञानिक काम सरलता-पूर्वक चल सकता है।

अंग्रेजी अंकों का प्रयोग अनुचित

मुझे यह देखकर बड़ा दुःख होता है कि स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली गणित और विज्ञान की हिन्दी पुस्तकों में अंग्रेजी या रोमन अंकों का प्रयोग बराबर हो रहा है और इसके लिए संयुक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग ने यह नियम बना दिया है कि इनमें रोमन अंकों का ही व्यवहार किया जाय। इससे हमारी बड़ी हानि हो रही है पर दुःख है कि इस ओर हमारा ध्यान बहुत कम गया है। क्या नागरी अंक, रोमन अङ्कों की अपेक्षा कठिन या निकृष्ट हैं? जब ऐसी बात नहीं है तब क्यों हमको अपने अंकों का बहिष्कार करना सिखलाया जा रहा है? इन अंकों का वर्तमान रूप हजारों वर्षों के संस्कार का परिणाम है जिनका इतिहास भी रोचक और शिक्षाप्रद है। इसलिए हमको चाहिए कि हम अपने ही अंक व्यवहार करें। मैं समझता हूँ कि यह बात केवल उन पुस्तकों में पायी जाती है जो ऐंग्लोवर्नाक्यूलर स्कूलों में पढ़ायी जाती हैं।

यदि दुर्भाग्यवश यह रोग गाँवों में पढ़ायी जानेवाली पुस्तकों में भी पहुँच गया तो बड़ा अन्याय होगा। इसलिए हम अभी से बतला देना चाहते हैं कि **हिन्दी पुस्तकों में प्रयुक्त होनेवाले अंक हमारे अपने हों** जिनका प्रचार सैकड़ों वर्षों से हमारे गाँवों में है और जिनसे हमारा ग्राम-समाज पूरी तरह परिचित है। मैं समझता हूँ कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस पर एक प्रस्ताव स्वीकृत करे और यहाँ के शिक्षा-विभाग को बतलावे कि भविष्य में हिन्दी में लिखी विज्ञान, गणित आदि की पुस्तकों में रोमन अंकों का व्यवहार न किया जाय।

प्राचीन भारतीयों की वैज्ञानिक विचारधारा

पाश्चात्य विद्वानों की यह साधारण धारणा है कि प्राचीन भारतीय आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से परिचित नहीं थे। एक विद्वान् ने तो अपने ज्योतिष के इतिहास में यहाँ तक लिख डाला है कि भारतीय अच्छे दर्शक (observer) नहीं थे। परन्तु मेरा अनुभव बतलाता है कि पाश्चात्यों की यह धारणा निर्मूल है। चरकसंहिता वैद्यक का सिद्धान्त-ग्रन्थ है और कम से कम दो हजार वर्ष पहले का समझा जाता है। इसमें एक अध्याय षट्रसों पर है जिसमें गुरु और शिष्य के सम्वाद रूप में बहुत विस्तार के साथ विचार किया गया है कि रस कितने प्रकार के हो सकते हैं और अन्त में निश्चय किया गया है कि यह ६ प्रकार के हैं। इस अध्याय के पढ़ने से पता चल जायगा कि उनकी निरीक्षण-शक्ति कितनी सूक्ष्म थी और किस प्रकार तर्क के साथ वह विषय का प्रतिपादन किया करते थे। आचार्य पी० सी० राय के 'हिस्ट्री आव् हिन्दू केमिस्ट्री' से भी सिद्ध होता है कि हमारे रसायनाचार्य उस समय वैज्ञानिक पद्धति से काम लेते थे।

ज्योतिष के प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से भी यह निश्चय हो जाता है कि ज्योतिष के पुराने आचार्यों ने आकाश का कितना सूक्ष्म निरीक्षण किया था। पाश्चात्य ज्योतिष में वसन्त-सम्पात के चलने की बात हिपार्कस के समय में, अर्थात् ईसा से लगभग १५० वर्ष पहले, देखी गयी थी। परन्तु हमारे यहाँ वेदाङ्ग-ज्योतिष में जो १४०० वर्ष ईसा से पहले अवश्य बनाया गया होगा, यह बतलाया गया है कि उत्तरायण के समय सूर्य धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ में रहता था। इससे भी पूर्व की घटना का उल्लेख मैत्रायिणी उपनिषद् में मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि दक्षिणायन के समय सूर्य मघा नक्षत्र के आदि में और उत्तरायण धनिष्ठा के मध्य में होता है। स्वयम्

वराहमिहिर ने ईसा की छठी शताब्दी में इन घटनाओं की चर्चा करते हुए लिखा है कि पहले दक्षिणायन जिस नक्षत्र में होता था उससे हटकर अब वह पुनर्वसु नक्षत्र में होता है। इसलिए मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि भारतीयों में वैज्ञानिक रीति से वस्तुओं के गुण-धर्म निश्चय करने की परिपाटी नहीं थी।

सज्जनो, मैंने आपका बहुत सा समय ले लिया। आपने धैर्य के साथ इसे सुनने की कृपा की, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि आप विज्ञान-परिषद् को व्यावहारिक और उपयोगी बनाने की कृपा करेंगे।

अभिभाषण*—१२
श्री चन्द्रशेखर वाजपेयी

प्यारे भाइयो और बहिनो,

आज मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ कि मुझे विज्ञान-परिषद् का कार्य-संचालन करने का शुभ अवसर प्रदान किया गया है। विज्ञान-परिषद् का सभापति निर्वाचित कर आप महानुभावों ने मेरा बड़ा सम्मान किया है, जिसका अनुभव मैं हृदय से कर रहा हूँ। मैं इस सम्मान के लिए हिन्दी भाषाभाषी विशिष्ट जनता तथा उसके प्रतिनिधिरूप आप लोगों को हृदय-तल से धन्यवाद देता हूँ। यदि मैं यह कहने का साहस करूँ कि मैं सभापति-पद के लिए अयोग्य हूँ, तो आप तथा हिन्दी भाषाभाषी जनता के निर्वाचन की क्षमता पर परोक्ष रीति से लाञ्छत आता है। सूर्य के प्रकाश के अभाव में आप देशी मिट्टी के चिराग ही से काम चलाना चाहते हैं, इससे जहाँ एक ओर आप की दूरदर्शिता तथा उदारता का परिचय मिलता है, वहाँ दूसरी ओर मुझ जैसे हिन्दी के सेवक को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। अवसर प्रदान तथा आदर भाव के लिए मैं हिन्दी भाषा-भाषी जनता का आभारी हूँ। एतदर्थ मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विज्ञान-युग

जिस विज्ञान का प्रसार संसार में हुआ है और जिसकी करामातों तथा उपकारों की संख्या अगणित है, उसका प्रादुर्भाव कुछ अंशों में कीमियागीरी के ऊपर अवलम्बित है। इतिहास से मालूम होता है कि प्राचीन समय में कुछ लोगों में यह धुन सवार थी कि किस प्रकार निम्नश्रेणी के धातुओं को जैसे ताँबा, लोहा, शीशा आदि, उत्तमकोटि की धातुओं (जैसे सोना, चाँदी आदि) में परिणत कर दिया जाय। पारस पत्थर की खोज में वे दिन-रात लगे रहते थे। 'पारस गुन अवगुन ना चितवे कंचन करत खरो' का उद्देश्य उनके सामने रहता था। इसी प्रकार के प्रयत्न योरप में अनुमानतः दो-ढाई

*३४वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् २००३ के कराँची अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

सौ वर्ष पहिले बड़े जोरों से जारी थे। ऐसे तथाकथित वैज्ञानिकों को काल्पनिक पारस पत्थर तो नहीं मिल सका, पर उनके प्रयत्नों से वर्तमान विज्ञान का प्रादुर्भाव अवश्य हो गया। उनकी खोज ही ने वर्तमान रसायनशास्त्र की नींव डाली, नाना प्रकार के तत्वों का आविष्कार हुआ। अन्त में सचमुच ही पारस पत्थर इन वैज्ञानिकों के हाथ लग गया। विज्ञान, विकास के पथ पर अग्रसर होता चला गया। विज्ञान ने मानवीय समाज के सभी क्षेत्रों पर अपनी छाप लगा दी है। अतः वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

दिन-रात भर में कितने कार्य हम करते रहते हैं, उनके ऊपर विज्ञान ने अपना अमिट प्रभाव डाला है। जितनी क्रियाएँ हम करते हैं और जितने व्यापारों में हम लगे रहते हैं, यदि उनकी सूची बनावें, तो हम विज्ञान के किये गये उपकारों को भलीभाँति अनुभव कर सकेंगे। विज्ञान से चहुँतरफा विकास ने हमारे जीवन की पृष्ठभूमि को ही बदल दिया है। गत तीस-पैंतीस वर्षों में विज्ञान की उन्नति आश्चर्यजनक हुई है,—यह तथ्य प्रत्यक्ष है।

जो वस्त्र हम पहनते हैं, उनका निर्माण मशीनों द्वारा हुआ है। जिन रंगों से हमारे वस्त्र रँगे जाते हैं, उनकी उत्पत्ति विज्ञान ही द्वारा हुई है। चमड़े की 'क्रीम' टैनिङ्ग मशीन द्वारा ही होती है। आजकल बाजार में जिस बनस्पति घी ने असली घी का स्थान ले लिया है, वह भी विज्ञान की देन है। साबुन तथा तेल के तैयार करने में विज्ञान की सहायता अपेक्षित है। खाद्य-पदार्थों की पैदावार में विज्ञान से सहायता मिलती है। जिस खेत में एक मन गेहूँ पैदा होता रहा है, उसमें विज्ञान की करामात से दो मन गेहूँ पैदा किया जा सकता है—इस प्रकार के प्रयत्नों से संसार के अन्नसंकट का निराकरण बड़ी आसानी से किया जा सकता है। ईख की खेती में वैज्ञानिक अन्वेषण किये जा रहे हैं। जो अंगूर चमन से आता है, वह वैज्ञानिक विधि से सुरक्षित किया जाता है। अन्य फलों का संरक्षण भी विज्ञान द्वारा साध्य हो गया है। औषधियों के तैयार करने में विज्ञान सहायक हुआ है। रेडियो द्वारा हमको संसार की खबरें प्राप्त होती रहती हैं और चित्ताकर्षक गान और रोचक अभिनय सुनने का सुअवसर मिलता रहता है। यातायात के उपयोगी साधनों से दूरी का प्रश्न बहुत आसान हो गया है। वायुयान का प्रयोग इस प्रश्न के हल करने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। साक्षरता के प्रसार में भी विज्ञान से बड़ी सहायता मिली है। जो पुस्तकें कुछ समय पूर्व अलभ्य मालूम

होती थीं, वे अब यन्त्रालय द्वारा सर्व-साधारण को सुलभ भी हो गयी हैं। अमेरिका आदि देशों में घर के अनेकों काम वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा किये जाते हैं। घर की सफाई, भोजन पकाने आदि व्यापारों में विज्ञान की सहायता ली जा रही है। लिखने का तात्पर्य यह है कि जीवन-क्षेत्र में विज्ञान की सेवाएँ अतुलनीय हैं।

विज्ञान के प्रसार से व्यवसायियों ने बड़ा लाभ उठाया है। कल-कारखानों की स्थापना से उद्योग-धन्धों में बड़ी उन्नति हुई है। नवीनतम साधन-विधियों का आविष्कार होता चला जा रहा है। संसार-व्यापी जो युद्ध अभी कुछ एक-दो वर्ष पहिले समाप्त हुआ है, उसके पहिले प्रचलित यन्त्र आदि आजकल पुराने समझे जा रहे हैं। उनके स्थान को लेने के लिए जिन यन्त्रों का निर्माण किया गया है, वे मानसिक दक्षता और प्रतिभा के नवीनतम उदाहरण हैं। इन यन्त्रों से सर्वसाधारण को भी अनेकों लाभ मिले हैं, किन्तु अधिक लाभ पूँजीपतियों के ही हाथ लगा है।

विज्ञान का दूसरा पहलू

उपर्युक्त विवरण से विज्ञान के उज्ज्वल पक्ष का पता लगता है, पर इसका 'कृष्ण पक्ष' भी है। गत विश्वव्यापी युद्ध ने इस कृष्ण पक्ष से बड़ी सहायता ली थी—या यों कहिये कि इस **युद्ध ने विज्ञान को कलंकित कर दिया** है। नये-नये प्रकार के विध्वंसकारी अस्त्रों का प्रयोग इस युद्ध में किया गया था। जितने राष्ट्र इस युद्ध में सम्मिलित थे, उनके बड़े-बड़े वैज्ञानिक नये विनाश-कारी अस्त्र-शस्त्रों के आविष्कार में तल्लीन थे। परमाणुबम इन्हीं प्रयत्नों का फल है। जब एकाएक पहला परमाणुबम १९४५ के अगस्त मास में जापान के हिरोशीमा नगर पर गिराया गया, तो लोगों को इसके प्रलयङ्कारी प्रभाव का कुछ अनुमान हो गया। ऐसा मालूम होने लगा कि महाभारत और रामायण में वर्णित ब्रह्मास्त्र इस पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों के हाथ लग गया है। पृथिवी के विनाश में अब किसी प्रकार की देरी बाकी नहीं रह गयी है। जापान के एक कोने से दूसरे कोने तक 'त्राहि'-'त्राहि' के शब्द सुनायी पड़ने लगे—यहाँ तक कि जापान ने अस्त्र डाल दिये और वह संधि करने के लिए तैयार हो गया। अब भी इस परमाणुबम से समस्त संसार में आतङ्क छाया हुआ है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से सशंकित है कि न मालूम कब यह ब्रह्मास्त्र उसके विरुद्ध प्रयोग में लाया जाय।

कुछ लोग विज्ञान के इस विनाशकारी पहलू को लक्ष्य में रखकर विज्ञान को बदनाम कर रहे हैं। वे समझते हैं कि संसार में जितने क्लेश और दुःख मनुष्यों को भुगतने पड़ रहे हैं, उनका दोष विज्ञान के ही ऊपर आरोपित होना चाहिए। कुछ अंशों में यह बात सत्य ही है, पर संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनमें दो पहलू पाये जाते हैं—एक अच्छा, तो दूसरा खराब। द्वन्द्व-भाव का राज्य सर्वत्र ही फैला हुआ है। शुभ्र ज्योत्स्नापूर्ण चन्द्रमा में भी कलङ्क है। किन्हीं-किन्हीं दशाओं में भोजन भी विष हो जाता है और मनुष्यों की मृत्यु घण्टों में हो जाती है। बिजली से अनेक लाभ मिलते हैं, पर यदि उसका प्रयोग ठीक प्रकार से न किया जाय तो वही मृत्यु का कारण हो सकती है। जिस पानी के बिना हमारे जीवन के कार्य नहीं चल सकते हैं, उसी में डूब कर बहुधा लोग मर जाते हैं। पर इन दुःखद और क्लेशकारी परिणामों से हम बिजली और जल को कोस नहीं सकते हैं। इसी प्रकार यदि विज्ञान का दुरुपयोग किया जाय और उससे संसार में दुःख का संचार किया जाय तो विज्ञान को बलिवेदी पर नहीं चढ़ाना चाहिए। विज्ञान-वेत्ता भी राष्ट्रीयता के संकुचित दायरे में फँसे हुए हैं। विजय प्राप्त करने की भावना से प्रेरित होकर युद्ध के समय उन्होंने विषैली गैसों और परमाणुबम का आविष्कार किया। युद्ध का कारण विज्ञान नहीं है; राष्ट्रों के कुत्सित विचार, पारस्परिक द्वेषभाव और स्पर्धा आदि युद्ध के कारण होते हैं। इनके ऊपर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है। हमको निराश नहीं होना चाहिए। सृष्टि बहुत बड़ी है। क्लेश और दुःखों के बाद सुख और शान्ति का राज्य भी होगा। विज्ञान-वेत्ता स्वयम् विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों के काट भविष्य में निकाल लेने में समर्थ होंगे।

विज्ञान की सक्रियता

जगत् के भौतिक क्षेत्र में ही विज्ञान की सक्रियता समाप्त नहीं होती है। आधुनिक विज्ञान ने अन्य युगों की अपेक्षा हमारे जीवन को बिलकुल भिन्न बना दिया है। नये-नये आविष्कारों तथा यन्त्रों के निर्माण से हमारे रहन-सहन के ढंगों में महान् परिवर्तन हो गये हैं, पर इन परिवर्तनों से कहीं अधिक बड़े परिवर्तन हमारे जीवन के अन्य विभागों में हुए हैं। डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व जब आधुनिक विज्ञान की चर्चा आरम्भ हुई, तो सबसे पहिले उसकी मुठभेड़ धर्म (या यों कहिये मज़हब) से हुई। बाइबिल, कुरान तथा अन्य धार्मिक

पुस्तकों में लिखा है कि पृथ्वी चिपटी और सूर्य उसके चारों ओर परिक्रमा करता है; पर विज्ञान की शिक्षा इसके विरुद्ध थी। मज़हबी विचारों के विरुद्ध प्रचार करने के कारण गेलिलियो को कारावास की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं और ब्रूनो की हत्या कर दी गयी। इस्लाम मज़हब के अनुयायियों में से भी कुछ वैज्ञानिकों को अपने वैज्ञानिक विचारों के कारण क्लेश सहन करने पड़े थे।

मज़हबी चमत्कारों तथा अलौकिक घटनाओं की तीव्र आलोचना की जाने लगी। सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने के कारण उनको अग्राह्य बतलाया जाने लगा। विकासवाद ने मज़हबी किले को बिलकुल खोखला कर दिया। सारांश यह है कि विज्ञान धर्म का घोर विरोधी कहा जाने लगा। वैज्ञानिक विचारकों को नास्तिक समझा जाता था। विज्ञान के निरन्तर आन्दोलन के कारण पादरी, मुल्ला तथा पण्डितों ने अपने-अपने सिद्धान्तों को नये रूप में उपस्थित करना आरम्भ कर दिया है।

धर्म तथा विज्ञान में समन्वय स्थापित करने के जो प्रयत्न धर्माधिकारियों की ओर से पल्लवित किये गये और किये जा रहे हैं, उनमें मनोरञ्जकता के साथ अवसरवादिता की मात्रा अधिक है। बाइबिल में लिखा है कि ईश्वर ने सृष्टि की उत्पत्ति छः दिन में की, तदनन्तर सातवें दिन उसने आराम किया। समन्वय करने वालों की ओर से कहा जा रहा है कि यहाँ पर छः दिन का अभिप्राय छः युगों से है। नवीन भाष्य करने में अलंकारों की सहायता ली जा रही है। इस प्रकार वैज्ञानिक विरोध को शान्त किया जा रहा है। धार्मिक मन्तव्यों की भित्ति विश्वास पर अवलम्बित है, अतः विज्ञान के तर्क और प्रत्यक्ष प्रमाण का सामना करने में उनको अलङ्कार का सहारा लेना पड़ता है।

राजनीति के क्षेत्र में भी विज्ञान का प्रभाव दिखलायी पड़ता है। राजनीति में मनुष्यों की समानता का सिद्धान्त बड़े पैमाने पर प्रचलित करने का श्रेय विज्ञान को ही मिलेगा; क्योंकि विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि सब मनुष्यों में एक ही प्रकार का खून बहता है। उनके रक्त का तापक्रम भी लगभग बराबर होता है। इस प्रकार कुलीनता के भाव का निराकरण हो गया है। लोक-संग्रह का आधार मनुष्यों की समानता पर पूर्ण रूप से अवलम्बित हो गया है।

शिक्षा की जटिल समस्याओं के हल करने में भी विज्ञान से पूरी सहा-

यता मिली है। बुनियादी शिक्षा का आधार विज्ञान के ऊपर पूर्ण रूप से अवलम्बित है। इस प्रकार की शिक्षण व्यवस्था में व्यावहारिक विज्ञान का स्थान बड़ा ऊँचा है। उद्योग-धन्धों की पढ़ाई बुनियादी शिक्षा का एक मुख्य अङ्ग है। कौन-कौन फ़सलें किस समय बोई जावें ? उनमें किस प्रकार की खाद दी जावे ? पौदों की जड़ें कैसी होती हैं ? उनके पत्ते, फल तथा फूल किस प्रकार के होते हैं ? इन सब बातों की जानकारी प्राप्त करने में व्यावहारिक विज्ञान की बड़ी आवश्यकता है।

आहारशास्त्र के पुराने विचारों में भी विज्ञान की बदौलत क्रान्ति आ गयी है। प्रकृति के समीप आने की शिक्षा विज्ञान दे रहा है। आहारशास्त्र में विटामिन का ज्ञान रखना बड़ा आवश्यक हो गया है। बिना चोकर निकाले हुए सम्पूर्ण आटे की रोटी बनानी चाहिए—यही स्वास्थ्य-दायक भोजन हो सकता है। चोकर निकालने की प्रथा का जो प्रचार बढ़ रहा था, उसके रोकने का श्रेय विज्ञान को मिलना चाहिए। मैदा के मुकाबिले में आटा अधिक लाभदायक होता है; पर झूठे विचारों के जाल में फँसे हुए लोग (शिक्षित विशेष कर) पीछे से मैदा में चोकर मिला देते हैं। आहार के मुख्य-मुख्य भोज्य पदार्थों में किन-किन तत्त्वों का किस मात्रा में सम्मिश्रण होना चाहिए, इसका पूरा विवरण विज्ञान से हमको मिल गया है। मैदा के बनाने में गेहूँ का जो आवरण और अंश निकाल दिया जाता है, उसमें विटामिन की प्रचुर मात्रा लोहा, चूना आदि तत्त्व पाये जाते हैं जिनका आहार में होना बहुत ही आवश्यक है।

नीतिशास्त्र में सत्यासत्य, कर्तव्याकर्तव्य आदि विषयों की विवेचना की जाती है। व्यापक अर्थ में धर्म का अङ्ग नीतिशास्त्र है, पर यदि नीतिशास्त्र को पृथक् मान लिया जाय जो नास्तिकों को भी स्वीकार है, तो क्या नीतिशास्त्र के ऊपर भी विज्ञान का प्रभाव पड़ा है ? **मजहबी चमत्कारों और अलौकिक घटनाओं की तीव्र आलोचना विज्ञान ने की है।** वे सृष्टिक्रम के विरुद्ध हैं, इसलिए वैज्ञानिक पद्धति के अनुकूल वे त्याज्य हैं। इन चमत्कारों का आधार अन्ध-विश्वास है, अतः विज्ञान विश्वास का ही मूलोच्छेदन कर रहा है। हम विश्वास को आचार में परिणत नहीं कर सकते हैं। ऐसे विश्वासों के प्रति हम उपेक्षा भाव भी रख सकते हैं और निष्क्रिय भी हो सकते हैं। नीतिशास्त्र तो सक्रिय है। कुछ लोग यह समझते रहे हैं कि विज्ञान उदासीन होने के कारण नीतिशास्त्र में हस्तक्षेप नहीं करता है; पर ऐसी स्थिति नहीं है।

विश्लेषणों द्वारा विज्ञान ने यह निश्चित कर दिया है कि मनुष्य के आहार में कर्बोज, प्रोटीन आदि तत्त्व होने चाहिए। प्रोटीन की प्राप्ति पशुओं के मांस, दाल, बादाम, पिश्ता आदि से होती है। मृत्यु के भय से शरीर में 'टाक्सिन' की उत्पत्ति होती है, अतः जानवरों के मांस में यह 'टाक्सिन' वर्तमान रहता है और यह स्वास्थ्य के लिए हानिकर होता है। इस दृष्टि से आहार में मांस को सम्मिलित करना अनुचित मानना चाहिए।

एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए—इसकी विवेचना नीतिशास्त्र में की जाती है। यदि एक मनुष्य एक बालक को पीटता है, तो वह नीतिशास्त्र की दृष्टि से दोषी माना जाता है; पर यदि वही व्यक्ति दूध में गन्दी चीजें मिला देता है और इस मिश्रण को वह शुद्ध दूध के नाम से बेचता है, तो भी वह सर्वसाधारण की दृष्टि में उतना दोषी नहीं ठहराया जाता है जितना दोषी बालक के मारने वाले को समझा जाता है। गन्दे दूध के कारण सैकड़ों शिशुओं की मृत्यु हो सकती है। नीतिशास्त्र ऐसी बातों की ओर उदासीन रहता है; पर विज्ञान ने नीतिशास्त्र के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। अभी तक नीतिशास्त्र व्यक्तियों के आचार-व्यवहार की ओर ध्यान देता आ रहा था; पर विज्ञान के सम्पर्क से नीतिशास्त्र को 'सक्रिय समूह' की ओर बढ़ना पड़ा है।

विज्ञान और धर्म में भेद

यदि धर्म का व्यापक अर्थ लिया जाय तो उसमें लोक कल्याण और सुख-प्राप्ति ही का लक्ष्य होता है—'परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम्'। विज्ञान भी लोक-कल्याण का इच्छुक है। क्लोरोफार्म आदि के आविष्कार से डाक्टरों को 'आपरेशन' करने में बड़ी सुविधा मिल गयी है, अन्यथा डाक्टरों के 'आपरेशन' से रोगी को महान् कष्ट हुआ करता था। जहाँ तक लोक-कल्याण का सम्बन्ध है, धर्म और विज्ञान ऐहिक सुखों की प्राप्ति में समान कार्य कर रहे हैं; पर यह सम्भव हो सकता है कि प्रयोग में लाये गये साधनों में भेद हो जाय।

आधुनिक विज्ञान को गर्व है कि उसने प्रकृति के ऊपर सब प्रकार से विजय प्राप्त कर ली है। रामायण में वर्णन आता है कि रावण के अधीन वरुण, इन्द्र आदि देवता थे।

'रवि ससि पवन वरुन धनधारी।
अगिन काल जम सब अधिकारी'॥ —रामायण

उसी प्रकार विज्ञान का आधिपत्य वरुण, इन्द्र आदि देवताओं ने स्वीकार कर लिया है। सेवक के रूप में विद्युत आप के घर में विराजमान है। पानी की भाप से रेल के इञ्जन चलते हैं और जहाज समुद्र में दौड़ते-फिरते हैं। विज्ञान द्वारा मनुष्य ने प्रकृति को वशीभूत कर लिया। प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने वाले वैज्ञानिक साधन प्रशंसा के पात्र हैं; पर धर्म ने प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने के निमित्त दूसरे प्रकार के साधनों का सहारा लिया है। विज्ञान के साधन बाह्य हैं; पर धर्म के साधन आन्तरिक हैं। भेद केवल इतना ही है। रोगों से मुक्त होने के अभिप्राय से मनुष्य अपने शरीर को ब्रह्मचर्य तथा संयम से इतना कठोर बना सकता है कि उसको वैद्यों तथा डाक्टरों की शरण में जाने की आवश्यकता ही न पड़े। इसके विपरीत मनुष्य अपने शरीर को इतना सुकुमार बना सकता है कि वह रोगों का शिकार होता रहे और डाक्टरों की शरण लेनी पड़े। डाक्टरों को रोगों के निवारण के निमित्त नयी-नयी दवाइयाँ निकालनी पड़ेंगी, सब प्रकार से सुसज्जित अस्पतालों की स्थापना भी सभ्यता का एक मुख्य अंग हो जायगा। मनुष्य अपने शरीर को इतना सुदृढ़ बना सकता है कि शीत से बचने के लिए उसे वस्त्रों की आवश्यकता न मालूम पड़े अथवा कम से कम वस्त्रों की आवश्यकता मालूम हो। ऐसी दशा में वस्त्र के उत्पादन के लिए कल-कारखानों के खोलने की आवश्यकता ही न उत्पन्न हो। आन्तरिक शक्तियों की सबलता मनुष्य को प्रकृतिजन्य शीतोष्ण प्रभावों से बचा सकती है। इस प्रकार मनुष्य प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने का अधिकारी समझा जा सकता है। प्रकृति के ऊपर विजय प्राप्त करने के साधनों के सम्बन्ध में प्राचीन शास्त्रकारों के मत का निचोड़ यह है कि धर्म तो निवृत्ति मार्ग का अनुयायी है और विज्ञान प्रवृत्ति मार्ग पर चलने वाला है।

सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने के कारण चमत्कार तथा अलौकिक विभूतियाँ विज्ञान को मान्य नहीं हैं। उनका आधार विश्वास है; पर विज्ञान में भी चमत्कार उदय हो गये हैं। सम्प्रति इस जगत् में बन्दरों से मनुष्य का विकास बन्द है। हजारों वर्ष पूर्व किसी समय इस पृथ्वी पर ऐसा चमत्कारिक विकास हुआ होगा—ऐसा विज्ञान का मत है। इस समय नदियों, पहाड़ों आदि की उत्पत्ति नहीं हो रही है। वैज्ञानिक चमत्कारों के ये ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन द्वारों से विज्ञान में विश्वास का प्रवेश हो रहा है। विश्वास की दृष्टि से विज्ञान तथा धर्म एक ही धरातल पर हो गये हैं। धर्म में तर्क का क्षेत्र बहुत

ही सीमित है; पर विज्ञान में तर्क को सर्वोपरि स्थान दिया गया है । विज्ञान में तर्क और विश्वास एक दूसरे के सहायक हैं ।

विज्ञान और दर्शन

जिस विज्ञान की चर्चा मैंने अभी तक की है, वह आधुनिक है, तो भी उसके प्रतिपादित सिद्धान्त सार्वभौमिक हैं । इस विज्ञान के द्वारा जीवन में महान् परिवर्तन हुए हैं । उनका उल्लेख यथास्थान पर किया जा चुका है । कुछ परिवर्तन तो मनुष्य के लिए बड़े हितकारी सिद्ध हुए हैं; पर कुछ बड़े भयंकर होते हैं । वैज्ञानिक तो जिज्ञासा-वृत्ति से प्रेरित होकर घोर तपस्या करता है । वह समुद्र को मथ कर अमृत और विष दोनों ही को निकालता है । यदि कुछ आविष्कार समाज के लिए विध्वंसकारी सिद्ध हुए हैं, तो इसमें वैज्ञानिक का दोष नहीं है । वह तो नैतिक मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करना चाहता है; पर मनुष्य की कुत्सित शोषण-प्रवृत्ति, पदलोलुपता, ईर्ष्या तथा द्वेष कुछ अन्वेषकों को बाध्य करते हैं कि वे वैज्ञानिक आविष्कारों का दुरुपयोग करें । सच्चा वैज्ञानिक तो वह है जो सत्य की खोज में निष्पक्ष होकर लगा रहे । वह तो तापसिक जीवन व्यतीत करता है । दूसरे ही मनुष्य उसके आविष्कारों से अनुचित लाभ उठाते हैं । सच्चा वैज्ञानिक तो निष्पक्ष होकर निष्काम भाव से अपने कार्य में संलग्न रहता है ।

कुछ समय पूर्व वैज्ञानिकों की यह धारणा हो रही थी कि वे भौतिकवाद को धर्म के स्थान पर आसीन कर देंगे । तर्क ने ही उनको ऐसा साहसी बना दिया था; पर अब वे ही वैज्ञानिक विश्वास के दामन को पकड़े हुए नज़र आते हैं । पहिले तो वे यह ख्याल करते थे कि विश्वास का जगत् सारहीन होता है । वे तर्क ही की दुहाई दे रहे थे; पर उनका भौतिकवाद उस मंजिल तक पहुँच गया है जहाँ तक तर्क की पहुँच थी । विश्वास की सहायता से विज्ञान को विवश होकर कुछ सिद्धान्त पल्लवित करने पड़े हैं । यहीं पर विज्ञान और दर्शन का संगम हो जाता है और जो भेद अभी तक विज्ञान तथा दर्शन में माना जाता था, वह भी मिट-सा गया है । यद्यपि विज्ञान के सिद्धान्तों में परिवर्त्तनशीलता की गुञ्जाइश हमेशा बनी रहती है—यह ध्रुव सत्य है, तो भी यह निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है कि वैज्ञानिक पद्धति की मर्यादा कहीं न कहीं निश्चित करनी पड़ेगी । विज्ञान पिछले कुछ वर्षों से अन्तिम सत्य के पथ पर अग्रसर हो रहा है । इस प्रकार दर्शन और

विज्ञान को पृथक् करने वाली लकीर मिट-सी गयी है। विज्ञान तथाकथित अन्तिम सत्य की धरोहर को दर्शन के हवाले कर रहा है। विज्ञान अपनी निर्बलता का अनुभव कर रहा है। वह मन और आत्मा के गूढ़तम रहस्यों का पता बिलकुल नहीं लगा सका है। इस दिशा में विज्ञान की पराजय हुई है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में मन और आत्मा की गूढ़तम तथा रहस्य शक्तियों का अनुसन्धान नहीं किया जा सका है।

विज्ञान अभी अन्तिम सत्य तक नहीं पहुँच सका है। विज्ञान के विकास में समय-समय पर सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं; पर कुछ समय के बाद उनकी सराहनीयता प्रकट हो जाने पर वे त्याग दिये जाते थे। कुछ दिनों तक भौतिक विज्ञान के परमाणुवाद का बोलबाला रहा; पर डार्विन, हक्सले आदि वैज्ञानिक विचारकों ने सिद्ध कर दिया कि परमाणुवाद के मानने में बड़े दोष आते हैं। उनकी विचारधारा के अनुकूल गुणविकासवाद ही विज्ञान की चरम सीमा है। सांख्य दर्शन तथा वेदान्त भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। गीता में भी संसारोत्पत्ति का मुख्य कारण गुणविकासवाद ही कहा गया है। जड़ प्रकृति को स्वयंकर्त्री और स्वयंभुवी नहीं माना जा सकता है। परमाणु-वाद के अनुसार प्रकृति को परमाणुओं का पुन्ज माना गया था; पर अब ऐसा नहीं मानते हैं। कुछ दिनों तक तरंगवाद तक कणवाद भी प्रचलित रहे; पर अब इस समय कन्तमवाद की तूती बोल रही है। नवीन कन्तमवाद ने तरंग-वाद तथा कणवाद में मेल कर दिया है। यांत्रिक विज्ञान तथा कन्तमभौतिक-विज्ञान संख्या शास्त्र की विधियों को काम में लाते हैं।

आधुनिक भौतिक विज्ञान के कुछ प्रधान कण ये हैं—इलेक्ट्रान, पोज़ीट्रान, प्रोटान, निउट्रान, आदि। इनसे सब द्रव्य बने हैं। आधुनिक वैज्ञानिक विचार-धारा के अनुसार इलेक्ट्रान और पोज़ीट्रान दोनों ही में शक्ति का समाहार अत्यधिक है। कुछ वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि प्रकृति सम्बन्धी सब समस्याएँ कन्तमवाद और सापेक्षतावाद के सहयोग से सुलझायी जा सकती हैं; किन्तु विज्ञान ने अभी तक इस दिशा में बहुत कम काम किया है क्योंकि विज्ञान को अपनी सीमाओं का ज्ञान हो गया है। वैज्ञानिक जिज्ञासावृत्ति से सब प्राकृतिक घटनाओं को समझना कुछ आसान नहीं मालूम हो रहा है। जिन घटनाओं का निरीक्षण वैज्ञानिक कर सकते हैं, उनके सम्बन्ध में ही वैज्ञानिक चर्चा हो सकती है। शेष घटनाओं का हल दर्शनशास्त्र के तर्क और कल्पना की सहायता से ही निकल सकता है।

भौतिक विज्ञान ने जगत् की सृष्टि के ऊपर अच्छा प्रकाश डाला है। प्रकृति से जगत् की सृष्टि होती है और वह शक्ति का पुञ्ज है। प्रकृति और शक्ति में कोई भेद नहीं रह गया है। प्रकृति और शक्ति अन्त में एक ही हो जाती है। वेदान्त शास्त्र का यही निचोड़ है; पर अभी तक विज्ञान यह नहीं सिद्ध कर सका है कि यह शक्ति चेतन है अथवा जड़। सम्भव है कि कुछ दिनों में इसका रहस्य भी प्रकट हो जाय। इसी कोटि के एक दूसरे वैज्ञानिक सिद्धान्त ने धर्म के गौरव को बढ़ा दिया है। अणुजीव खोजकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवित पदार्थ ही जीवित पदार्थ को उत्पन्न कर सकता है। वैज्ञानिक चमत्कार को दृष्टि में रख कर हम यह सोच सकते हैं कि सृष्टि-विकास के किसी काल में जीवित पदार्थ की उत्पत्ति जड़ पदार्थ से हो गयी हो।

विज्ञान और साहित्य

हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में विज्ञान परिषद् का यह अधिवेशन हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि हम जान लें कि हिन्दी साहित्य के ऊपर विज्ञान का क्या प्रभाव पड़ा है। यह तो सम्भव नहीं है कि विज्ञान के प्रभाव से साहित्य अछूता रह गया होगा, क्योंकि प्रकृति और साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। प्राकृतिक दृश्यों तथा चित्रों का वर्णन करना साहित्य का एक मुख्य अङ्ग होता है। प्रकृति की अभिव्यंजना ही से साहित्य को तृप्ति मिलती है।

विज्ञान बुद्धिवाद का पक्षपाती है; साहित्य हृदयवाद का अनुयायी है। पहिले का सम्बन्ध बुद्धि-वैभव के जगत् से है और दूसरे का जगत् भावना और कल्पना के ऊपर प्रतिष्ठित है। पर इस कथन से यह अभिप्राय न निकालना चाहिए कि विज्ञान में हृदयवाद का प्रवेश नहीं है और न साहित्य में बुद्धिवाद का। विज्ञान में कल्पना तथा भावना से पूरा काम लिया जाता है, साहित्य में तर्क और बुद्धि की भी आवश्यकता पड़ती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस प्रकार विज्ञान और साहित्य में यह समन्वय स्थापित किया जा सकता है, पर वास्तव में यह समन्वय इतना आसान नहीं है। विज्ञान और साहित्य का विरोध कुछ अवश्यम्भावी है। विज्ञान सहित्य की अनर्गल बातों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। जिस विज्ञान ने धर्म जैसे गूढ़तम विषय से लोहा लिया हो वह भला साहित्य की बुद्धि-विरोधिनी बातों को कब छोड़ सकता है?

विज्ञान और साहित्य के विरोध में कुछ सार है, इसमें किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता है। बुद्धि और कल्पना में कुछ विरोध होना स्वाभाविक है। बुद्धि किसी वस्तु को उसी समय ग्रहण करती है, जब वह तर्क की कसौटी पर पूरी उतर जाय।

विज्ञान और साहित्य की चर्चा करने में जो मेरा दृष्टिकोण है, सम्भवत: कुछ साहित्यकारों को वह रुचिकर न प्रतीत हो। मुझे स्वयम् अनुभव हो रहा है कि इस विषय की चर्चा करने का मैं पूर्ण रूप से अधिकारी नहीं हूँ, पर इतना मैं कह सकता हूँ कि मैं विज्ञान और साहित्य दोनों का भक्त हूँ। विज्ञान ने सत्य की खोज में अथक परिश्रम किया है। मानवीय ज्ञान की अधिकांश शाखाओं में उसने नियामकता स्थापित करने की चेष्टा की है। यदि इसी जिज्ञासावृत्ति तथा भावना से प्रवृत्त होकर वह साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो उसका यह प्रयास दुस्साहस तथा अनधिकारजन्य नहीं कहा जा सकता है। साहित्य की सेवा करने में भी वह अग्रसर होना चाहता है। 'कालिदास की निरंकुशता' के ऊपर लेख लिख कर जो सेवा हिन्दी के महारथी स्वर्गीय आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की थी उसी तरह की सेवा, बड़े पैमाने पर, विज्ञान की ओर से हो सकती है। **विज्ञान ही इस बात के कहने का अधिकारी हो सकता है कि जो भी देश-काल आदि के विरुद्ध विषयों का वर्णन करता है, वह लोकशास्त्र का व्यतिक्रम करके दोषी ठहराया जा सकता है। साहित्यकारों को भी निरंकुश नहीं होना चाहिए। 'कवि-समय' तथा 'काव्य-समय' की अनर्गल बातों के प्रचार को रोकना ही अभीष्ट है। आधुनिक वैज्ञानिक युग में उनका कोई स्थान नहीं रह गया है।** कवि प्रसिद्धियों के नाम पर बहुत सी ऊटपटाँग बातों का जो प्रचार हिन्दी साहित्य में हुआ है और अब भी हो रहा है, उसके ऊपर नियन्त्रण होना आवश्यक मालूम होता है। परम्परा की दुहाई देकर आलंकारिकों ने सत्य और वास्तविकता का गला घोंटा है। विज्ञान को यह मर्यादाहीन आचार सह्य नहीं है। संकीर्ण कवि-प्रसिद्धियों के सम्बन्ध में पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी' साहित्य की भूमिका' में लिखते हैं—

''पर्वतमात्र में सुवर्ण रत्न आदि का वर्णन; अन्धकार का मुष्टि-ग्राह्य और सूचीभेद्य होना; ज्योत्सना का घड़े में भर जाना; कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष में ज्योत्सना और अन्धकार की समानता होते हुए भी पहले को तमोमय और दूसरे को चन्द्रिकामय वर्णन करना; शिव और चन्द्रमा का बहुकाल से जन्म

होते हुए भी उन्हें बालरूप में वर्णन करना; समुद्रों की संख्या चार और सात दोनों वर्णन करना; भुवनों की संख्या तीन, सात और चौदह कह कर वर्णन करना; विद्याएँ अट्ठारह भी हैं और चार भी हैं और चौदह भी, यह स्वीकार करना और मकर का वर्णन केवल समुद्र में करना।" इस संकीर्ण कवि-प्रसिद्धियों से बड़ा मनोरञ्जन होता है यदि 'विशाल' कवि प्रसिद्धियों का उल्लेख किया जाय, तो हँसते-हँसते पेट फूल जायगा।

यद्यपि कवियों और साहित्यकारों को प्रकृति का निरीक्षक होना चाहिए (तभी उनका किया गया वर्णन ग्राह्य हो सकता है) तो भी यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि प्रायः वे प्राकृतिक निरीक्षण के 'कायल' नहीं हैं। कवियों को अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि अशोक में फल होते हैं या नहीं। यद्यपि कोकिल वसन्त, ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुओं में बोलते हैं, पर कवियों को यही मान्य है कि वे केवल वसन्त ही में बोलते हैं। 'नायक और नायिका' के वर्णन में मनोविज्ञान शास्त्र का उल्लंघन कवियों ने किया है। शरीर-रचना शास्त्र की शिक्षा से प्रायः सभी साहित्यकार अनभिज्ञ मालूम होते हैं—विशेषकर उर्दू के कवि। 'दिल', हृदय, कलेजा, जिगर आदि एक ही अर्थ प्रयुक्त किये जाते हैं। 'प्रेमानल' कभी शरीर को जला देता है, तो कभी वह शरीर को ठण्डा भी कर देता है।

देशकाल की दृष्टि से अब लोकोक्तियों का निर्माण होना चाहिए। 'चिराग तले अन्धेरा' के स्थान पर अब 'बल्ब के नीचे प्रकाश' (और कभी-कभी अन्धेरा···) की लोकोक्ति होनी चाहिए।

हमारे आधुनिक कवियों तथा साहित्यकारों ने अभी तक वैज्ञानिक विषयों को बहुत कम अपनाया है। वे पुरानी लकीर को पीटते चले जा रहे हैं। मैं यह नहीं कहता हूँ कि मेरे इस कथन में अपवाद नहीं है। श्री 'निराला', पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कुछ कवियों ने हिन्दी साहित्य में इस ओर कुछ कविताएँ लिखी हैं जो वैज्ञानिक विषयों से सम्बन्ध रखती हैं। 'नवीन' जी की कृति—'यह रहस्य-उद्‌घाटन-रतजन'—नवीनता लिये हुए है। इसमें दार्शनिकता के साथ वैज्ञानिकता का पुट है। इसमें भौतिक विज्ञान के नवीनतमवाद का विशद वर्णन है जो सम्भवतः वैज्ञानिक विकास की अन्तिम शृङ्खला भी हो सकती है—ऐसी सम्भावना की जा सकती है। विज्ञान जगत् में जो एक लहर उठ रही है कि विज्ञान को अन्त में दर्शन-शास्त्र की शरण में जाना पड़ेगा, उसको इस कविता में पूर्ण रूप से निबाहा

गया है। मानव के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विकास का इतिहास इसमें बड़ी सुन्दरता के साथ दिया गया है। जो पारिभाषिक शब्द इसमें प्रयुक्त किये गये हैं, वे बड़े ही सार्थक मालूम होते हैं। उन शब्दों का आधार संस्कृत भाषा ही है। ऐसी कविताओं से विज्ञान साहित्य के प्रसार में बड़ी सहायता मिल सकती है।

विज्ञान और शिक्षा

पाश्चात्य देशों और इङ्गलैण्ड में एक समय वह था जब विज्ञान को पाठ्य विषयों में स्थान नहीं दिया जाता था। लोगों की धारणा उस समय यह थी कि विज्ञान से शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है। इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर को यह श्रेय प्राप्त है कि शिक्षणालयों की पाठ्य-प्रणाली में विज्ञान को स्थान दिया गया। स्पेन्सर का यह मत है कि विज्ञान की शिक्षा जीवन में बहुत ही लाभदायिनी है और उसके उपयोग का क्षेत्र बहुत विशाल है। सब पाठ्य विषयों में उसने विज्ञान को अधिक प्रधानता तथा महत्त्व दिया है। अन्त में स्पेन्सर को सफलता प्राप्त हुई और विद्यालयों के पाठ्य विषयों में विज्ञान को सम्मिलित कर दिया गया। अतः भारतवर्ष में विज्ञान के शिक्षण के सम्बन्ध में कोई कठिनता उपस्थिति नहीं हुई; पर यहाँ शिक्षा के माध्यम का प्रश्न बड़ा जटिल बना लिया गया था। छोटी-छोटी कक्षाओं में भी अंग्रेजी भाषा द्वारा सभी विषयों की शिक्षा दी जाती थी; किन्तु अब वह समय आ गया है जब सभी विषयों की शिक्षा मातृ-भाषा के माध्यम द्वारा दी जायगी। भारतवर्ष के कुछ विश्वविद्यालयों ने स्वीकार कर लिया है कि सभी विषयों की पढ़ाई देशी भाषाओं के माध्यम द्वारा होगी। राष्ट्रीयता तथा हिन्दी भाषाभाषियों की संख्या की दृष्टि से देशीय भाषाओं में हिन्दी को प्रथम स्थान प्राप्त है। किन्तु हमारे देश के कुछ शिक्षा विशारदों को हिन्दी के माध्यम होने की क्षमता पर संदेह है। क्या यह संदेह दासत्व मनोवृत्ति का द्योतक नहीं है?

हम देखते हैं कि हिन्दी में जटिल से जटिल दार्शनिक विषयों को व्यक्त किया जा रहा है। अन्य विषयों के ऊपर भी हिन्दी में पुस्तकें लिखी गयी हैं तथा लिखी जा रही हैं। **यदि आधुनिक शिक्षा प्रणाली के प्रवर्त्तनकाल के आरम्भ ही से हमारे अध्यापक सजग रहते, तो शिक्षा के माध्यम का प्रश्न बहुत वर्ष पूर्व ही हल हो गया होता**। इस दिशा में विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर

आदि पथ-प्रदर्शन का कार्य कर सकते थे। विज्ञान विषयक अँग्रेजी पुस्तकों को स्वयम् पढ़कर वे अपने छात्रों की पढ़ाई हिन्दी में कर सकते थे। इस प्रकार की प्रणाली का अवलम्बन जापानियों ने उस समय किया था जब उनके देश में उनकी भाषा में वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव था। जब वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार हो जायँगी, तभी वे अपने छात्रों को विज्ञान की शिक्षा देंगे—ऐसे विचार को उन्होंने अपने पास फटकने नहीं दिया। भारत-वर्ष में विदेशी भाषा के माध्यम की चक्की में शिक्षक तथा छात्र दोनों ही पिस जाते हैं, पर जापान जैसे समृद्धिशाली तथा उन्नतिशील देश में केवल एक शिक्षक को ही विदेशी भाषा के सीखने में समय लगाना पड़ता है। ऐसी पढ़ाई के कुछ वर्षों बाद जापानी भाषा में वैज्ञानिक शब्द संग्रह तैयार कर लिया गया और देशी भाषा के माध्यम द्वारा सब प्रकार की वैज्ञानिक शिक्षा दी जाने लगी। यह प्रणाली 'जापानी प्रणाली' के नाम से विख्यात् हो गयी। यह बड़े खेद की बात है कि हमारे प्रोफ़ेसरों आदि ने ऐसी किसी प्रणाली का आश्रय नहीं लिया, अन्यथा यहाँ भी माध्यम की जटिल समस्या कभी हल हो गयी होती। वैज्ञानिक पुस्तकों का निर्माण भी समय पाकर हो गया होता। यह ध्रुव सत्य है कि कुछ दिनों की पढ़ाई के बाद जो वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार की जायँगी, वे उन पुस्तकों से लाख दर्जे अच्छी होंगी, जो देशी भाषा के माध्यम द्वारा की गयी पढ़ायी के लिख कर रख दी गयी हों। ऐसी पुस्तकों की भाषा पारिमार्जित तथा सार्थक होगी। पढ़ाई के समय अपने अनुभव द्वारा शिक्षक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का संग्रह भी कर सकते हैं। इन वैज्ञानिक शिक्षकों की एक संस्था स्थापित की जाय जिसके अधिवेशन समय-समय पर होते रहें ओर उनके परिश्रम का फल एक सूत्र में बँध जाय। मैं समझता हूँ और मेरा यह विश्वास है कि कुछ वर्षों के ऐसे परिश्रम से वैज्ञानिक ग्रंथों का अभाव दूर हो जायगा।

पञ्चवर्षीय योजना

सम्प्रति भारतवर्ष में चारों तरफ योजनाओं की धूम मची हुई है। राष्ट्रीय कामों के सम्पादन में नये जीवन की स्फूर्ति आ रही है। रूस देश में योजनाओं द्वारा बड़ा काम हुआ है। जो भी आशातीत उन्नति रूस देश ने राष्ट्रीय कामों में की है, वह इन्हीं योजनाओं का फल है। इस सम्बन्ध में **भारतवर्ष को रूस देश से शिक्षा मिल सकती है।** वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार

में निश्चित योजना से बड़ा काम सिद्ध हो सकता है। विज्ञान परिषद् के पूर्व अधिवेशनों में निर्दिष्ट योजना के ऊपर काफी प्रकाश डाला जा चुका है। मैं योजना सम्बन्धी उन्हीं बातों के दुहराने का दोषी होकर भी यहाँ पर उसकी चर्चा करना चाहता हूँ। मन तो चाहता है कि मैं आपके सम्मुख दशवर्षीय योजना रक्खूं; पर समय को दृष्टि में रख कर भारतवर्ष की वर्तमान स्थिति में पञ्चवर्षीय योजना का मैं पक्षपाती हूँ।

(अ) विज्ञान की शिक्षा देने में जापान देश ने जिस प्रणाली का आलम्बन किया है, उसको शिक्षालयों में पल्लवित किया जाय। लगातार दो वर्ष तक उस प्रणाली के अनुसार काम किया जाय। वैज्ञानिक शिक्षक विज्ञान की पढ़ाई में अङ्गरेजी पुस्तकों का सहारा लेंगे और इसके साथ पारिभाषिक शब्दों का संग्रह अपनी जानकारी के लिए वे करते जायँगे।

(आ) तीसरे वर्ष के प्रारम्भ में वैज्ञानिक शिक्षकों का एक वृहद् सम्मेलन किया जाय जिसमें विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं के अध्यापक अपनी-अपनी समिति बना कर विचार-परामर्श करेंगे। एक वर्ष के अन्दर पारिभाषिक शब्दों का संकलन समाप्त किया जा सकता है।

(इ) चौथे वर्ष उपर्युक्त प्रकार से तैयार किये गये पारिभाषिक शब्दों की सहायता से सुबोध ग्रंथों की रचना की जाय। इन ग्रंथों में सौ पृष्ठ से अधिक न हों। इन ग्रंथों का प्रचार सर्वसाधारण में तथा विद्यालयों में किया जाय।

(ई) पाँचवें वर्ष विज्ञान के विद्वान् लेखकों से सरल हिन्दी में प्रामाणिक ग्रंथ लिखवाये जायँ।

हिन्दी प्रान्तों की सरकारें इस योजना के कार्य को अपने ऊपर ले सकती हैं। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को भी इस ओर कार्य करना चाहिए। साहित्य के व्यापक अर्थ में वैज्ञानिक साहित्य का समावेश साहित्य में हो जाता है। वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन के निमित्त सम्मेलन की ओर से एक विद्यालय खोला जाय जिसमें उपर्युक्त योजना के अनुकूल विज्ञान की पढ़ाई हो। यदि पञ्चवर्षीय योजना उपयोग में लायी जाय, तो पाँच वर्ष के बाद हिन्दी में परिमार्जित वैज्ञानिक भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का प्रचार आसानी से हो जायगा।

पारिभाषिक शब्द

वैज्ञानिक साहित्य के संवर्धन में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, काशी नागरी

प्रचारिणी सभा, प्रयाग की हिन्दुस्तानी ऐकडेमी, प्रयाग का विज्ञान परिषद्, बड़ौदा की 'श्री सीयाजी साहित्यमाला, आदि संस्थाएँ काम कर रही हैं। इसी दिशा में प्रयाग विश्वविद्यालय का भारतीय हिन्दी परिषद् तथा लाहौर निवासी डाक्टर रघुवीर लगे हुए हैं; पर इन सब संस्थाओं तथा व्यक्तियों के आगे वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की जटिल समस्या उपस्थित है। ऐसे मूल शब्दों का संग्रह उपर्युक्त योजना में वर्णित विधि के अनुसार आसानी से हो सकता है। इन मूल शब्दों में प्रत्यय आदि लगाने तथा व्याकरणीय परिवर्तन करने से नये रूपान्तर गढ़े जा सकते हैं।

आजकल चारों ओर से यही आवाज आ रही है कि हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों की कमी (या यों कहिये 'अभाव') है। इस कारण विज्ञान की पढ़ाई का क्षेत्र बहुत परिमित तथा संकीर्ण है। इसमें सन्देह नहीं है कि इस कथन में सत्यता का अंश बहुत अधिक है; पर केवल पारिभाषिक शब्दों को ही वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण की कुञ्जी समझना दूरदर्शिता का द्योतक नहीं है। **आरम्भ में सरल वैज्ञानिक भाषा की उत्पत्ति होनी चाहिए।** वैज्ञानिक घटनाओं, प्रयोगों तथा विषयों की रूपरेखा सरल हिन्दी में प्रस्तुत की जा सकती है। कुछ वर्षों के प्रयास के बाद भावबोधक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का संग्रह सम्भव हो जायगा। किसी भाषा के समझने में व्याकरण के ज्ञान की आवश्यकता मालूम होती है और इसी भाषा के व्याकरण के समझने में साहित्य का ज्ञान अपेक्षित होता है। उसी भाँति वैज्ञानिक भाषा तथा पारिभाषिक शब्दों का अन्योन्याश्रय है, किन्तु वैज्ञानिक भाषा का आगमन पहिले होना चाहिए। जब खेत तैयार हो जाता है, तभी उसमें बीज बोये जाते हैं। वैज्ञानिक भाषा के प्रचलित हो जाने पर पारिभाषिक शब्दों से वैज्ञानिक साहित्य को अलंकृत करना चाहिए।

हिन्दी, मराठी, बंगाली, गुजराती आदि भाषाओं का आदि स्रोत संस्कृत है। भावात्मक तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में सबसे पहिले संस्कृत शब्दों को 'तत्सम' तथा 'तद्भव' रूप में अपनाना चाहिए। प्रत्येक शब्द का सांस्कृतिक इतिहास होता है। उस इतिहास को दृष्टि में रखकर हमको पारिभाषिक शब्द गढ़ना चाहिए। हमारे मन में जो भाव 'मन्दिर' शब्द के प्रयोग से आते हैं, 'टेम्पुल' शब्द कहने से उन भावों का प्रकाशन नहीं होता है। भारतवर्ष की संस्कृति की दृष्टि से 'मन्दिर' शब्द का प्रयोग सोलहो आने सार्थक है, चाहे ये दोनों शब्द पर्याय

ही क्यों न हों। इस प्रकार पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का मूल आधार संस्कृत और हिन्दी भाषा होनी चाहिए। इन शब्दों के रूपान्तर तैयार करने में हिन्दी भाषा के व्याकरण से पूरी सहायता लेनी चाहिए। अंग्रेजी के जो वैज्ञानिक शब्द हिन्दी में रूढ़ि हो गये हैं, उनको अपनाने में कोई हानि नहीं है। अंग्रेजी के जो वैज्ञानिक शब्द कार्बोहाइड्रेट, आक्सिजन, नाइट्रोजन आदि हिन्दी में कर्बोज, ओषजन, नत्रजन आदि के रूप में प्रयुक्त किये जा रहे हैं, वे वहुत ही उपयुक्त मालूम होते हैं। इनको तद्भव कहने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

बहुधा लोग कहते हैं कि संस्कृत तथा अङ्गरेजी के तत्सम तथा तद्भवों से निर्मित वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द बड़े क्लिष्ट होते हैं। इस शंका के सम्बन्ध में मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि यदि अङ्गरेज़ी भाषा में लिखी गयी कोई वैज्ञानिक पुस्तक विज्ञान से अनभिज्ञ किसी व्यक्ति को पढ़ने को दी जाय, तो वह भी पारिभाषिक शब्दों को क्लिष्ट ही समझेगा। साधारण नमक के लिए यदि वैज्ञानिक शब्द 'सोडियम क्लोराइड' प्रयुक्त किया जाय, तो विज्ञान से अपरिचित कितने व्यक्ति इस शब्द को समझ सकेंगे ? **वैज्ञानिक विशुद्ध साहित्य में क्लिष्टता अवश्यम्भावी है**। हाँ, प्रचार से ये ही क्लिष्ट शब्द सुबोध हो सकते हैं। गत तीन-चार वर्षों से भारतवर्ष में अन्न संकट के समय अङ्गरेज़ी भाषा के शब्द, कन्ट्रोल, राशन, यूनिट, कोटा आदि का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि अशिक्षित जनता भी इनके अर्थों को हृदयङ्गम कर लेती है। इसी प्रकार करफ्यू, असेम्बली आदि शब्दों का प्रचार भी हो गया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से हमको डरना नहीं चाहिए। इनके अपनाने में हिन्दी भाषा की उदारता प्रकट होगी। पर यदि गलत अर्थ में किसी शब्द का प्रचार हो गया हो, तो उसके छोड़ने में हमको मोह न होना चाहिए। मेरे कहने का तात्पर्य एक उदाहरण से बिलकुल स्पष्ट हो जायगा। हिन्दू विश्वविद्यालय में जब 'आर्ट' कालेज का निर्माण किया जा रहा था, तो अशिक्षित मज़दूर उसको 'आठ' कालेज के नाम से पुकारते थे। जब 'साइन्स' कालेज बनाना आरम्भ हो गया, तो वे ही मज़दूर उसे 'नौ' कालेज कहने लगे, क्योंकि आठ के बाद नौ संख्या होती है। यद्यपि 'नौ' शब्द सरल भी है, छोटा भी है और उसका अधिक प्रचार भी हो गया था, पर तो भी हमें 'साइन्स' का पर्याय 'नौ' को नहीं समझना चाहिए।

'ऐङ्गलो हिन्दुस्तानी' स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली में विज्ञान की पढ़ाई के लिए जो पाठ्यपुस्तकें रक्खी गयी हैं, उनकी शैली बड़ी विचित्र है। वे न तो तीतर हैं और न बटेर हैं। उनकी मिश्रित भाषा बड़ी दूषित है। रोमन अङ्कों का प्रयोग बहुत ही गर्हित है। इस विषय के ऊपर विज्ञान परिषद् के गत अधिवेशनों में काफी कहा जा चुका है। मैं केवल आप लोगों का ध्यान फिर से इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। 'फुट' शब्द का बहुवचन 'फीट' हिन्दी में बहुत खटकता है। इस प्रकार से लिखी गयी पुस्तकों से हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य बहुत कलुषित हो रहा है। पाठ्य-क्रम से ऐसी पुस्तकों को निकाल देना हिन्दी के लिए हितकर होगा। सरकारी शिक्षा-विभाग को इस ओर ध्यान देना चाहिए। जब हिन्दी का माध्यम स्वीकृत किया जा चुका है, तो ऐसी पुस्तकों के चलन को बन्द कर देना ही अभीष्ट है।

प्रान्तीय भाषाओं का सहयोग

मद्रास प्रान्त की कुछ भाषाओं को छोड़कर भारतवर्ष की अन्य भाषाओं का आधार संस्कृत भाषा है—इसके मानने में अब किसी को भी आपत्ति नहीं है। इन भाषाओं ने भी विज्ञान के प्रसार में बहुत काम किया है और अब भी वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण किया जा रहा है। इनमें से कुछ एक भाषाओं का वैज्ञानिक साहित्य उन्नत अवस्था पर पहुँच गया है। प्रायः उनमें पारिभाषिक शब्दों का संकलन भी हो गया है। अखण्ड भारतवर्ष के मानने वालों का सबसे पहिला कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि इन भाषाओं तथा मद्रास प्रान्त की भाषाओं के वैज्ञानिक साहित्य को एक सूत्र में बाँधा जाय। सम्भव है कि ऐसा काम किया जा रहा हो, मुझे उसकी जानकारी न हो। इन भाषाओं तथा हिन्दी के कुछ वैज्ञानिक लेखकों तथा विद्वानों की एक समिति बनायी जाय जो पारिभाषिक शब्दों के संग्रह का कार्य करे। कुछ समय के बाद इस कार्यवाही का परिणाम यह होगा कि समस्त भारतवर्ष के लिए विज्ञान के प्रामाणिक पारिभाषिक शब्द तैयार हो जायँगे। प्रत्येक प्रान्त में वहाँ की भाषा को उन्नतिशील बनाने के लिए संस्थाएँ भी काम कर रही हैं। उन संस्थाओं के परामर्श तथा सहयोग से वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

अन्तिम निवेदन

मैं नहीं कह सकता कि विज्ञान जैसे क्लिष्ट विषय को सुबोध बनाने में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है और कहाँ तक इस प्रकार प्रस्तुत किया गया विषय आप को रुचिकर प्रतीत हुआ है। मुझे **इस बात का कुछ-कुछ आभास है कि विज्ञान परिषद् के इस मञ्च से मैं कोई नयी और मनोरञ्जक सामग्री आप के सम्मुख प्रस्तुत नहीं कर सका हूँ।** जल तो एक ही है, पर उसके रखने के पात्र भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। पर मुझे इस बात का पूरा आभास है कि आपने बड़े धैर्य और सहिष्णुता के साथ मेरे भाषण को सुना है जिसके लिए मैं आपको हृदय-तल से धन्यवाद देता हूँ। त्रुटियों के लिए मैं आप से क्षमा-प्रार्थी हूँ। मुझे पूर्ण आशा है कि आप विज्ञान परिषद् के इस अधिवेशन के निश्चयों तथा मन्तव्यों को पूर्ण रूप से सफलीभूत बनाने की चेष्टा करेंगे !

अभिभाषण*-१३
डॉ० ब्रजमोहन

प्यारे भाइयो और बहिनो,

मैं आज अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ। आप लोगों ने विज्ञान-परिषद् के सभापति के पद पर निर्वाचित करके मुझे अनुगृहीत किया है। मैंने एक क्षण के लिये भी यह कल्पना नहीं की है कि मैं इस आसन के लिए इसलिए चुना गया हूँ कि आधुनिक हिन्दीसेवियों में इस पद के लिए मैं ही सबसे योग्य हूँ। मेरे विचार में मेरे निर्वाचन का यही अर्थ है कि आप एक हिन्दीप्रेमी का उत्साह बढ़ाना चाहते हैं जिससे वह भविष्य में हिन्दी की वास्तविक सेवा का प्रयत्न कर सके। अतएव मैं आप सब सज्जनों का सच्चे हृदय से आभारी हूँ।

विज्ञान-परिषद् के इस अधिवेशन का विशेष महत्त्व है, क्योंकि स्वतंत्र भारत में इस परिषद् का यह पहला ही अधिवेशन है। हम और आप जितने भी सज्जन यहाँ उपस्थित हैं, उनमें से कौन ऐसा होगा जिसके रक्त में नये उत्साह का संचार न हो रहा हो। इस परिषद् के पिछले अधिवेशन तक हम लोग एक परतन्त्र देश के निवासी थे। आज १००० वर्ष के पश्चात् पहली बार हम लोग स्वाधीन भारत में श्वास ले रहे हैं। देश की स्वतन्त्रता से हम सब लोगों का, विशेषकर वैज्ञानिकों का, उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। हमारे वैज्ञानिक कल तक जो अनुसंधान करते थे, वह अधिकतर "स्वान्तः सुखाय" के हेतु ही होता था। हमारे अनुसंधानों का कोई बहिर्मुखी लक्ष्य कदाचित् ही कभी होता हो। परन्तु अब स्थिति बदल गयी है। हममें से प्रत्येक को अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में यह अनुभव करना चाहिए कि हम देश के एक अंग हैं और महत्त्वपूर्ण अंग हैं। यदि हम देश की आध्यात्मिक अथवा भौतिक किसी प्रकार की उन्नति में थोड़ी बहुत सहायता भी दे सकें तो उससे कदापि मुँह न मोड़ें। आज से देश के वैज्ञानिकों का जीवन देश के लिए है। अभी थोड़े ही दिन की बात है, हम देख चुके हैं कि पश्चिमी देशों पर जब

***३५वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन संवत् २००४ बम्बई अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।**

कभी युद्ध के बादल मँडराते हैं तो देश के सारे वैज्ञानिक अपनी निजी गवेषणा छोड़ देते हैं और देश-हित के अनुसंधानों में संलग्न हो जाते हैं। मुझे आशा है—आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि यदि कभी ईश्वर न करे—हमारे देश पर कोई संकट आया और देश को वैज्ञानिकों की सेवा की आवश्यकता हुई तो इस देश के वैज्ञानिक किसी भी देश के वैज्ञानिकों से पीछे नहीं रहेंगे। हम संसार को यह दिखा देंगे कि स्वतन्त्र भारत के वैज्ञानिक यदि सामान्य समय में अपनी प्रयोगशालाओं में शान्तिपूर्वक, निश्चित, अदृश्य रूप से अपना गवेषणा कार्य कर सकते हैं तो संकट काल में देश के लिए प्राण भी दे सकते हैं। यदि हमने संसार के सबसे समृद्धिशाली साम्राज्य को धराशायी करना सीखा है तो अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग और संरक्षण करना भी सीखा है।

विज्ञान का महत्त्व

इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक समय में विज्ञान ने संसार की संस्कृति पर अपना प्रभाव डाला है और उसकी सभ्यता का मार्ग-प्रदर्शन किया है। एक समय था जब हमारे पूर्वज अपवे जीवन के अधिकांश कार्यों में पत्थर से काम लेते थे। एक के ऊपर एक पत्थरों से मकान बनाते थे, पत्थर के उपकरणों से मछलियों का शिकार करते थे और पत्थर से पत्थर रगड़ कर आग उत्पन्न करते थे। प्रस्तर-युग के पश्चात् एक समय आया जब हमारे पूर्वज धातु से काम लेने लगे। वे धातु के बर्तन बनाने लगे, धातु के तीरों से मृगया करने लगे और धातु के सिक्के भी बनाने लगे। इस युग का ही परिष्कृत रूप यंत्र-युग कहलाया, जिसमें हमारे जीवन के छोटे-बड़े सहस्रों कार्य यंत्रों द्वारा होने लगे। अनाज पीसने के लिए यंत्र बने, यातायात के लिए यंत्र बने, युद्ध के लिए यंत्र बने। जब हमारा वैज्ञानिक ज्ञान और विकसित हुआ तो हमने विद्युत्-युग में पदार्पण किया। विद्युत् हमारे दैनिक व्यवहार की वस्तु बन गयी। आज विद्युत् हमारे लिए रोटी पकाती है, पुस्तक छापती है, प्रकाश करती है। हमारी दैनिक आवश्यकताओं में से अधिकांश की पूर्ति विद्युत् द्वारा होती है। परन्तु अब विद्युत्-युग को भी गया ही समझिए। अब परमाणु-युग का आविर्भाव हो रहा है।

कुछ लोग कहते हैं कि विज्ञान का ध्येय ध्वंसात्मक है, विज्ञान हिंसा सिखाता है। यह तो केवल समझ का दोष है। हम किसी वस्तु का उपयोग

कर सकते हैं, दुरुपयोग भी कर सकते हैं। हम उस वस्तु से कैसा काम लेते हैं, यह हमारी बुद्धि पर निर्भर है। शराब बहुत-सी औषधियों में डाली जाती है परन्तु वही मदिरा, अधिक मात्रा में पी कर, मनुष्य नालियों में लोटने लगता है। इसे आप मदिरा का दोष नहीं कहेंगे, यह पीने वाले का दोष है। जिस चाकू से हम शाक बना रहे हैं, उसी से एक कुशल डाक्टर फोड़े में चीरा लगाता है परन्तु कसाई बकरी का गला काटता है और गुण्डा एक निर्दोष व्यक्ति की जान लेता है। चाकू में न बुराई है न भलाई। बुराई और भलाई उसके प्रयोग में है। यदि अत्यल्प मात्रा में उचित मिश्रण में संखिया का सेवन किया जाय तो वह शक्तिवर्द्धक होती है; परन्तु अधिक मात्रा में अथवा नासमझी से खाने में वही संखिया विष का काम करती है। इसमें संदेह नहीं कि परमाणु-शक्ति का पहला प्रत्यक्ष प्रयोग हमने **विनाशात्मक** कार्य में किया है, परन्तु यह भी निश्चित है कि शीघ्र ही हम उसी शक्ति का प्रयोग रचनात्मक कार्य में करेंगे। जिस प्रकार संसार परमाणु की ध्वंसात्मक शक्ति देखकर आतंकित हो गया था, उसी प्रकार उसकी रचनात्मक क्षमता देखकर चकित रह जायगा और कुछ ही वर्षों में वह दिन आयेगा जब परमाणु-शक्ति उसी प्रकार हमारे घरेलू कार्य किया करेगी जैसे आज विद्युत्-शक्ति करती है।

वैज्ञानिक साहित्य

यह बात तो अब प्रायः सभी विद्याविशारदों ने मान ली है कि इस देश में विज्ञान का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक हमारे विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम देशी भाषाएँ न हो जायँ। इस हेतु हमें सबसे पहले देशी भाषाओं में, विशेषकर राष्ट्रभाषा हिन्दी में, वैज्ञानिक साहित्य तैयार करना होगा। अभी तक हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव ही रहा है। इस दिशा में छोटे-मोटे उद्योग तो कई स्थानों पर हुए हैं, परन्तु यदि उन उद्योगों की पश्चिम की किसी भी सम्पन्न भाषा के वैज्ञानिक साहित्य से तुलना की जाय तो वह उद्योग नगण्य ही दिखायी देंगे। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि दोनों की तुलना हो ही नहीं सकती, क्योंकि बाहुल्य और शून्य में कोई समानता नहीं है।

इस परिस्थिति के कई कारण हैं। एक प्रत्यक्ष कारण तो यह है ही कि अभी तक हमारे देश में शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा रही है। जब कभी शिक्षा के माध्यम का प्रश्न उठाया जाता था, हमें यह टकसाली उत्तर

दिया जाता था कि शिक्षा का माध्यम हिन्दी कैसे हो सकती है, जब हिन्दी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक विषयों का साहित्य ही उपलब्ध नहीं है। यह कितना लचर बहाना है। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई यह कहे कि "मैं तब तक नदी में पैर न रखूँगा जब तक मुझे तैरना न आ जायगा।" **वैज्ञानिक अथवा पारिभाषिक विषयों की पुस्तकें आकाश से नहीं टपका करतीं।** प्रकाशक उसी प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित करते हैं जिसकी माँग हो। जब तक हिन्दी, शिक्षा का माध्यम न हो जाये तब तक वैज्ञानिक विषयों की हिन्दी पुस्तकों की माँग ही बाजार में उत्पन्न नहीं होगी। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का सृजन हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने का परिणाम होगा न कि कारण। परन्तु अब तो देश की बागडोर हमारे ही हाथों में आ गयी है। परिणाम-स्वरूप देश की कई प्रान्तीय सरकारों ने इस दिशा में पग बढ़ाया है। इसमें तनिक भी सन्देद नहीं कि आज से कुछ ही वर्षों में हिन्दी में वैज्ञानिक और पारिभाषिक विषयों की पुस्तकें प्रचुर मात्रा में तैयार हो जायेंगी।

वैज्ञानिक शब्दावली

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के अभाव का दूसरा कारण यह है कि अभी तक हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली बन नहीं पायी है। पिछले ६० वर्षों में इस दिशा में थोड़े बहुत छिट-फुट प्रयत्न होते रहे हैं; परन्तु अभी तक हमारी शब्दावली न प्रचुर है, न उपयुक्त न संपूर्ण। मैं यह मानता हूँ कि यह एक वास्तविक कठिनाई है जिसके कारण हमारे वैज्ञानिक साहित्य की गाड़ी रुकी पड़ी है। **शब्दावली निर्माण का कार्य जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही कठिन, दूर से देखने में जितना सुगम है, वास्तव में उतना ही कंटकाकीर्ण।** यह कार्य ऐसा नहीं है जिसे कोई एक-दो या दो-चार व्यक्ति मिलकर एक-दो वर्ष में भी पूरा कर सकें। इस कार्य के लिए एक विस्तृत आयोजन चाहिए। एक सार्वदेशिक प्रामाणिक संस्था बनायी जाय जिसमें प्रत्येक वैज्ञानिक विषय के दो-दो, चार-चार विशेषज्ञ रखे जायँ जो अपना पूर्ण समय इसी कार्य में दें। इस संस्था में प्रचुर संख्या में हिन्दी और संस्कृत के विद्वान् मनोनीत किये जायँ। इसके अतिरिक्त संस्था को पर्याप्त मात्रा में सहायक, लिपिक (क्लर्क)

*मेरी समझ में हमको अंग्रेजी शब्द भी नागरी लिपि में ही लिखने चाहिए; परन्तु इस विशिष्ट प्रसंग में रोमन लिपि में ही लिखना वाञ्छनीय दिखायी देता है। यह बात आगे स्पष्ट की जायेगी।

और अन्य कर्मचारीगण दिए जायँ। संस्था को द्रव्य और अन्य साधनों की कोई कमी न हो। यह कार्य लाख, दो लाख रुपये में नहीं हो सकता। इसके लिए प्रचुर मात्रा में धन चाहिए। जब इस प्रकार की संस्था बने और उसे पूरे साधन उपलब्ध हों, तब यह आशा की जा सकती है कि सारे वैज्ञानिक विषयों की एक प्रामाणिक हिन्दी शब्दावली १० वर्ष में तैयार हो जायगी। यह विषय बड़ा महत्त्वपूर्ण है और मैं स्वयं भी कई वर्ष से इसी दिशा में अपनी तुच्छ क्षमता के अनुसार कार्य कर रहा हूँ। अतएव इसी विषय को अपनी वार्ता का केन्द्रबिन्दु बनाना चाहता हूँ।

शब्दावली की आवश्यकता

कुछ लोगों का मत है कि हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली बनाने की आवश्यकता ही क्या है? इन लोगों के विचार में अँग्रेज़ी की वैज्ञानिक शब्दावली अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करती जा रही है। क्यों न हम उसी को अपना लें। यदि हम अपनी एक नयी शब्दावली बनाने का प्रयास करेंगे तो देश की बहुत-सी शक्ति उस कार्य में लग जायगी। क्यों न इस शक्ति को बचा लिया जाय और रचनात्मक कार्य में लगाया जाय। दूसरी बात यह है कि हमारे विद्यार्थियों और अध्यापकों को, जो अंग्रेजी शब्दावली के अभ्यस्त हैं, एक नयी शब्दावली सीखनी पड़ेगी जो उनके मस्तिष्क पर मृतभार हो जायगी। हिन्दी शब्दावली के निर्माण से तीसरी हानि इन लोगों के विचार में यह होगी कि हम लोग वैज्ञानिक दौड़ में पश्चिम से पीछे रह जायँगे। यदि हम लोग दस-बीस वर्ष शब्दावली के बनाने में लगा देंगे तो आज का विज्ञान दस-बीस वर्ष आगे बढ़ जायगा। जब तक हम विज्ञान की नयी खोजों से सम्बद्ध नये शब्दों के लिए हिन्दी पर्याय निर्माण करेंगे, तब तक वैज्ञानिक विषय दस बीस वर्ष और आगे बढ़ जावेंगे। वैज्ञानिक ज्ञान के साथ-साथ हम कभी चल ही न सकेंगे। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिकों से हमारा सम्पर्क टूट जायगा और हम कूप-मण्डूक बन जायेंगे।

मुझे इस प्रकार के तर्कों में तनिक भी तथ्य दिखायी नहीं देता। मेरी तो निश्चित धारणा है कि ऐसे तर्क अधिकतर वही लोग उपस्थित करते हैं जिन्होंने शब्दावली की समस्या पर तनिक भी समय न लगाया हो। मुझे विश्वास है कि जो कोई व्यक्ति भी व्यावहारिक रूप से इस प्रश्न पर विचार करेगा, वह इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि अँग्रेजी की शब्दावली से हमारा

कार्य एक दिन भी नहीं चल सकता । उदाहरणार्थ, मैं दो एक वाक्य रसायन से लेता हूँ—

Ethyl alcohol occurs naturally in the form of its esters with organic acids in many essential oils and fruits.

यदि इस वाक्य में हम पारिभाषिक शब्दों को ज्यूँ का त्यूँ रहने दें तो, इसका अनुवाद इस प्रकार होगा :—

Ethyl alcohol प्रकृति में esters के रूप में बहुत से essential तेलों और फलों में organic acids के साथ पाया जाता है ।

आप लोग कहेंगे कि मैं कदाचित् वाक्य को जान-बूझ कर बिगाड़ रहा हूँ; परन्तु मैं कहता हूँ कि मैं वाक्य को यथासाध्य सँभालने का उद्योग कर रहा हूँ । इस वाक्य में मैंने केवल उच्च पारिभाषिक शब्दों को ही अँग्रेजी रूप में रखा है । शेष शब्दों में कई ऐसे हैं जो अर्द्धपारिभाषिक कहे जा सकते हैं । यदि उन्हें भी ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय तो अनुवाद इस प्रकार होगा :—

Ethyl alcohol प्रकृति में esters के form में बहुत-से essential oils और fruits में Organic acids के साथ पाया जाता है ।

मैं अपना तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए एक वाक्य और लेता हूँ ।

The *aqueous* layer which still contains *acetone* and other impurities is mixed with powdered *anhydrous calcium chloride* whereby a *crystalline compound* of the composition $Ca\ Cl_2$ $4CH_3OH$ separates out.

इस वाक्य में भी यदि तिरछे लिखे हुए शब्दों को ही ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय तो इसका अनुवाद इस प्रकार होगा—

Aqueous परत में, जिसमें अब भी Acetone और अन्य अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, पिसा हुआ Ahydrous Calcium Chloride मिला दिया जाता है, जिनसे एक Crystalline Compound जिसकी रचना $Ca\ Cl_2 . 4CH_3$-OH है, अलग हो जाता है ।

इस वाक्य में भी कई शब्द और भी ऐसे है जो वास्तव में पारिभाषिक हैं—जैसे—

Layer, impurities, mixed, powdered, composition.

यदि इन शब्दों को भी ज्यूँ का त्यूँ रखा जाय तो हमारा हिन्दी अनुवाद और भी भद्दा हो जायगा ।

अब तनिक इन दोनों वाक्यों के यथाकथित हिन्दी अनुवादों पर विचार कीजिए। क्या इस ढंग की भाषा से कभी भी हमारे वैज्ञानिक साहित्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है? पहला प्रश्न तो मैं इस ढंग की भाषा के समर्थकों से यह करना चाहता हूँ कि—"आप लोग अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द रोमन लिपि में ही अपनाना चाहते हैं या उन्हें नागरी लिपि में लिखेंगे।" यदि रोमन लिपि में ही अपनायेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि हमारे विद्यार्थियों को नागरी लिपि के अतिरिक्त एक अन्य लिपि सदैव सीखनी होगी। तनिक सोचिए कि हमारे भविष्य के विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर कितना अनावश्यक बोझ यह लोग डालना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त हमारे मुद्रणालयों में सदैव रोमन लिपि की मुद्राएँ भी रखनी पड़ेंगी। हिन्दी की छपाई तो यूँ ही कठिन है। एक बड़ी भारी कठिनाई यह और बढ़ जायगी। बहुत से कार्यालयों में हिन्दी मुद्रलिख (टाइपराइटर) के अतिरिक्त अँग्रेजी मुद्रलिख भी रखने पड़ेंगे। प्रेस के कम्पोजिटरों और कार्यालयों के बहुत से क्लर्कों को दोनों लिपियाँ सीखनी पड़ेंगी। इसमें देश के धन, जन, शक्ति का कितना ह्रास होगा, कदाचित् इसका अनुमान इन लोगों ने नहीं लगाया है।

अब मान लीजिए कि हम अँग्रेजी के पारिभाषिक शब्द नागरी लिपि में लिखना स्वीकार कर लें, तो उपरिलिखित दूसरा वाक्य इस प्रकार का हो जायगा—

एक्वियस परत में, जिसमें अब भी ऐसीटोन और अशुद्धियाँ विद्यमान हैं, पिसा हुआ ऐन्हाइड्रस कैलिशयम क्लोराइड मिला दिया जाता है, जिससे एक क्रिस्टैलाइन कम्पाउण्ड, जिसकी रचना सी-ए-सी-एल २ ४ सी एच ३ ओ एच है, अलग हो जाता है।

इस ढङ्ग की भाषा हमारे भविष्य के कितने विद्यार्थियों के गले के नीचे उतर सकेगी? एक ऐसे विद्यार्थी को जो रोमन लिपि और अँग्रेजी भाषा नहीं जानता, हम किस प्रकार समझायेंगे कि सी-ए का क्या अर्थ हुआ और सी-यल का क्या अर्थ हुआ। यदि हम विद्यार्थियों को नागरी लिपि में ही रोमन वर्णमाला का ज्ञान भी करा दें तो भी यह तथ्य उसे कैसे हृदयंगम होगा कि सी ए का अर्थ है 'कैलिशयम' और सी एल २ का अर्थ है 'क्लोरिन'। एक बात और भी है। आज हमारे विद्यार्थी इण्टरमीडिएट तक अँग्रेजी भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके उच्च वैज्ञानिक विषयों में पदार्पण करते हैं, तो

भी वैज्ञानिक विषयों के सहस्रों नहीं, लाखों पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं जिनका मूल वह लोग समझ नहीं पाते । अंग्रेजी की वैज्ञानिक शब्दावली के अधिकांश शब्द लैटिन और ग्रीक से लिए गये हैं । यही कारण है कि ये शब्द अंग्रेजी-भाषियों को भी अपरिचित लगते हैं। अपने परिचितों में से प्राणिकी (जूआलोजी) के किसी एम-एस-सी के विद्यार्थी अथवा किसी अध्यापक को ही पकड़ लीजिए और उससे पूछिये कि कितने प्रकार के प्राणि-परिवारों के पारिभाषिक नाम उनको याद हैं । मुझे विश्वास है कि ऐसे शब्दों की संख्या पाँच प्रतिशत भी न निकलेगी । फिर उससे यह पूछिए कि जो शब्द उसको स्मरण भी हैं, उनमें से कितने ऐसे हैं जिनके मूल उत्पत्ति वह समझता है । ऐसे शब्द और भी कम निकलेंगे । जब आज यह दशा है तो भविष्य में, जब हमारे विद्यार्थी सारी वैज्ञानिक शिक्षा हिन्दी में प्राप्त करेंगे और उनका अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत कम अथवा नगण्य होगा, तब उनके शब्दावली सम्बन्धी ज्ञान की क्या दशा होगी, इसका अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है ।

मैं एक छोटा-सा उदाहरण लेता हूँ । एक कहार, एक नाई और एक धोबी के बच्चे को ले लीजिए, और उन तीनों को निम्नलिखित तीन शब्द बताइए—

ट्रायंगिल, हाइड्रोजन, प्वाइंट

और फिर इन्हीं तीनों के हिन्दी पर्याय

त्रिभुज, उद्जन, बिन्दु

बताइये । अगले दिन देखिये कि उन बच्चों को हिन्दी शब्द अधिक याद हैं या अँग्रेजी शब्द । मुझे पूरा विश्वास है कि उन तीनों को, चाहे वह सर्वथा अशिक्षित हों, हिन्दी शब्द ही अधिक याद होंगे । और जब हमारे विद्यार्थी हिन्दी शिक्षा-प्राप्त होंगे और अंग्रेजी से अपेक्षाकृत अनभिज्ञ होंगे तब तो उनकी हिन्दी और अंग्रेजी शब्द-ग्रहण-शक्ति में आकाश-पाताल का अन्तर पड़ जायगा । एक हिन्दी का विद्यार्थी 'त्रिभुज' का अर्थ जानने से पहले भी 'त्रिभुज' शब्द से सर्वथा अपरिचित नहीं होगा, क्योंकि वह जानता है कि 'त्रि' का क्या अर्थ है और 'भुज' का क्या अर्थ है । यदि उसने 'उद्जन' शब्द पहले न भी सुना हो तो भी 'उद्' और 'जन' के उच्चारण से वह सर्वथा अपरिचित नहीं है । क्योंकि वह हिन्दी के बहुत से शब्दों में इस प्रकार के उच्चारणों का प्रयोग कर चुका है जैसे 'उदास' और 'राजन' में । परन्तु

hydro और gen के उच्चारण से वह सर्वथा अपरिचित है । अतएव अंग्रेजी शब्दों की अपेक्षा हिन्दी शब्द उसे अधिक सुगम, बोधगम्य और ग्राह्य होंगे ।

अब मैं दूसरे तर्क पर आता हूँ । यह कहना तथ्यहीन है कि हमारे विद्यार्थी और अध्यापक अंग्रेजी शब्दावली तो पढ़ ही चुके हैं, उनके ऊपर एक दूसरी शब्दावली का बोझ क्यों डाला जाय ! प्रश्न केवल विद्यार्थियों और अध्यापकों की वर्तमान पीढ़ी का ही नहीं है । **प्रश्न भविष्य की असंख्य पीढ़ियों का है ।** किसी राष्ट्र के इतिहास में एक या दो पीढ़ियों का महत्त्व नगण्य है । यदि हम किसी उपाय से आगामी पीढ़ियों का मार्ग सरल और प्रशस्त कर सकें तो क्यों न कर दें ? यदि इस उद्योग में वर्तमान पीढ़ी को असाधारण भार उठाना पड़े तो कोई चिन्ता नहीं । जो लोग परिवर्तन-काल में रहते हैं, उन्हें तो थोड़ा बहुत असाधारण कष्ट झेलना ही पड़ता है । अतएव इस तर्क को तो मैं यहीं छोड़े देता हूँ ।

अब प्रश्न रह गया अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क का । सारे देश के निवासियों में से कितने ऐसे हैं जो विश्वविद्यालयों की उच्चशिक्षा प्राप्त करते हैं । इन उच्चशिक्षा-प्राप्त मनुष्यों में से भी कितने ऐसे हैं जो उच्चतम उपाधि प्राप्त करके अनुसन्धान कार्य करते हैं । किसी भी देश में ऐसे अनुसंधानकर्त्ताओं की संख्या पूरे देश की जन-संख्या का एक प्रतिशत भाग भी न होगी । इन थोड़े से व्यक्तियों को ही अन्य राष्ट्रों के वैज्ञानिक साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता पड़ती है । **क्या हम इन एक प्रतिशत व्यक्तियों के कारण देश के ९९ प्रतिशत निवासियों पर एक जटिल विदेशी भाषा की दुरूह वैज्ञानिक शब्दावली लाद दें ?** यह कहाँ की बुद्धिमानी होगी । देश की शिक्षा नीति ९९ प्रतिशत जनता की सुविधा पर आधारित होनी चाहिए, न कि १ प्रतिशत की ।

एक बात और ध्यान देने योग्य है । हमारे अनुसन्धान-छात्रों का कार्य आजकल भी केवल अंग्रेजी से नहीं चलता । उनमें से बहुतों को फ्रेंच और जर्मन पढ़नी पड़ती है । और देश के कुछ वैज्ञानिक रशन और इटैलियन का भी अध्ययन करते हैं, और विज्ञान के अनुसन्धान छात्रों के लिए कई यूरोपीय भाषाओं का अध्ययन आवश्यक बताते हैं । भविष्य में इस स्थिति में थोड़ा-सा ही अन्तर पड़ेगा । हमारे गवेषणा-छात्रों को, जैसे आज फ्रेंच और जर्मन पढ़नी पड़ती है, वैसे ही अंग्रेज़ी भी पढ़नी पड़ेगी । इसके अतिरिक्त हम यह तो नहीं कहते कि अंग्रेजी को देश से बोरिया-बँधना के साथ निकाल कर बाहर फेंक दिया जायगा । हमारे देश की उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी का कोई न

कोई स्थान अवश्य ही रहेगा, चाहे अनिवार्य रूप में अथवा वैकल्पिक रूप में। यदि हम चाहें तो यह नियम बना सकते हैं कि **उन्हीं छात्रों को गवेषणा करने की अनुज्ञा दी जायगी जो कालिज की कक्षाएँ अंग्रेजी लेकर पास करेंगे।** इस प्रकार ऐसे छात्रों की आवश्यकता की पूर्ति हो जायेगी और देश की साधारण जनता पर इसके कारण कोई अनावश्यक बोझ भी नहीं पड़ेगा।

शब्दावली का इतिहास

जहाँ तक मुझे पता है, एक भारतीय भाषा में वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण करने का प्रथम प्रयास सन् १८८८ में बड़ौदा में हुआ था। महाराजा सयाजी राव गायकवाड़ ने इस कार्य के लिए ५००००) का दान दिया था। कला-भवन, बड़ौदा के कार्यकर्त्ता प्रो० गज्जर ने कई वर्ष यह कार्य किया और कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित कीं। परन्तु, जैसा उन्होंने कला-भवन के वार्षिक विवरणों में स्वीकार किया है, भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्दों के अभाव के कारण उस संस्था की गाड़ी ठप हो गयी। उन्होंने भारतीय भाषाओं में एक शब्द-कोष बनाने का उद्योग भी किया, परन्तु उसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।

वैज्ञानिक शब्दावली सम्बन्धी दूसरा प्रयोग कलकत्ते के बंगीय साहित्य परिषद् ने किया। इस संस्था ने रसायन, भूगोल और खगोल की शब्द-सूचियाँ प्रकाशित कीं। परन्तु थोड़े ही समय पश्चात् इस संस्था का कार्य मन्द पड़ गया और इस प्रकार शब्दावली सम्बन्धी प्रयास भी समाप्त हो गया।

हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली निर्माण का प्रथम प्रयास काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने किया। उक्त सभा ने सन् १८९८ में एक पारिभाषिक शब्दावली समिति बनायी। इस समिति को पं० सुधाकर द्विवेदी का सहयोग प्राप्त था। द्विवेदी जी इसके पूर्व भी वर्षों से हिन्दी में गणितीय विषयों की पुस्तकें लिख रहे थे। आपने बहुत-से प्राचीन गणितीय शब्दों को खोजकर अपना लिया था और कुछ नये शब्द भी बनाये थे।

इस शब्दावली समिति ने ८ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावली प्रकाशित की जिसमें गणित, दर्शन, भौतिकी (Physics), अर्थशास्त्र, भूगोल और खगोल के विषयों का समावेश था। इस शब्दावली का सम्पादन प्रसिद्ध हिन्दीसेवी स्वर्गीय बा० श्यामसुन्दरदास ने किया था।

सन् १६३० में सभा ने शब्दावली की पुनरावृत्ति के लिए एक समिति बनायी जिसके अधिकांश सदस्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक विषयों के अध्यापक थे। इस समिति ने वैज्ञानिक शब्दावली को परिष्कृत रूप में सन् १६३१ में प्रकाशित किया। यह शब्दावली बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है और अभी तक भारत के हिन्दीभाषी वैज्ञानिकों में प्रामाणिक मानी जाती है।

सन् १६४४ में प्रयाग के 'भारतीय हिन्दी परिषद्' ने विज्ञान के छः मुख्य विषयों की शब्दावली के निर्माण में हाथ लगाया—गणित, भौतिकी; रसायन, खगोल, औद्भिगी (Botany) और प्राणिकी। यह शब्दावली हस्त-लिपि रूप में तैयार हो गई है और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

इस दिशा में **प्रयाग के विज्ञान-परिषद्** का कार्य भी उल्लेखनीय है। इस परिषद ने पिछले ३४ वर्षों में हिन्दी की बड़ी सेवा की है। इसने इस अवधि में सरल विज्ञान और उद्योग-धन्धों पर ३० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित की हैं और एक रसायन शब्दसूची का भी निर्माण किया है।

परन्तु इस दिशा में पिछले पाँच-छः वर्षों में जो कार्य सरस्वती विहार, लाहौर के अधिष्ठाता डा० रघुवीर (जो आजकल नागपुर में हैं) ने किया है, विशेषरूप से प्रशंसनीय है। उक्त डाक्टर जी ने 'आंग्ल भारतीय महाकोष' का निर्माण किया है। आपका उद्देश्य है ज्ञान के समस्त विषयों—लगभग ६००—में एक सम्पूर्ण पारिभाषिक कोष का निर्माण करना। अभी तक आपने उसके दो ही भाग प्रकाशित किये हैं—भाग १ 'अप्रांगारिक रसायन' (Inorganic Chemistry) का, और भाग ३ 'रासायनिक साधित्र' (Chemical Appavatus) का। इस महाकोष की दो विशेषताएँ हैं :—

१—इसमें केवल मौलिक शब्दों के ही पर्याय नहीं दिये गये हैं, वरन् ऐसे शब्दों से उत्पन्न समस्त शब्दों के पर्यायों का भी समावेश है।

२—इस प्रयास का उद्देश्य है भारत की समस्त भाषाओं के लिए एक ही शब्दावली का निर्माण करना। और इस हेतु इस महाकोष में समस्त शब्द शुद्ध संस्कृत से लिये गये हैं।

यह महाकोष अपने ढंग का अनूठा है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में यह प्रथम पद्धतिशील, विस्तृत और आत्म सम्पूर्ण प्रयास है तो इसमें तनिक भी अत्युक्ति न होगी। देखना है, वैज्ञानिक जगत् इसका कहाँ तक स्वागत करता है।

मेरा सुझाव

शब्दावली का विषय बहुत ही विस्तृत है। समय के अभाव के कारण मैं इस विषय के बहुत ही थोड़े अंगों पर अपने विचार व्यक्त कर पाया हूँ। अन्त में, मैं केवल एक सुझाव देकर इस वार्ता को समाप्त करता हूँ। मेरा विचार है कि इस सम्मेलन के **विज्ञान, परिषद् की ओर से एक वैज्ञानिक शब्दावली समिति बनायी जाय।** इस समिति में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का सहयोग भी प्राप्त करने का उद्योग किया जाय। यह समिति देश की समस्त वर्तमान हिन्दी वैज्ञानिक शब्दावलियों का अध्ययन करे और इस बात पर अपना निश्चित मत दे कि उनमें से किसी भी शब्दावली की पद्धति वैज्ञानिक, सम्पूर्ण और पर्याप्त है या नहीं। यदि समिति के विचार में ऐसी कोई शब्दावली हो तो सम्मेलन उसी को आधिकारिक रूप से प्रामाणिक घोषित कर दे। यदि कोई भी शब्दावली इस परीक्षा में उत्तीर्ण न निकले तो एक नयी शब्दावली के निर्माण का प्रयास किया जाय। ऐसी दशा में हमें इस कार्य के लिए एक विशाल सामूहिक योजना बनानी होगी, जिसका संकेत मैंने अपने भाषण के मध्य में किया है।

अन्त में, मैं आप सब उपस्थित देवियों और सज्जनों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरा व्याख्यान धैर्यपूर्वक सुनकर मेरा उत्साहवर्धन किया है।

अभिभाषण*—१४

आयुर्वेदाचार्य श्री भास्कर गोविन्द घाणेकर

उपस्थित सज्जनो तथा देवियो !

आप लोगों ने विज्ञान-परिषद् के सभापति के पद पर मेरा चुनाव करके मुझ पर जो अनुग्रह किया है, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त ऋणी हूँ। इसका कारण यह है कि चुनाव में सफल होने के लिए इच्छुक व्यक्तियों द्वारा मतदाताओं की दृष्टि से जो विविध प्रयास किये जाते हैं उनमें से किसी प्रकार का प्रयास मेरी ओर से इस चुनाव में नहीं हुआ, आप लोगों ने केवल कर्तव्य-बुद्धि से मुझे इस पद पर निर्वाचित करने का सौजन्य दिखाया है। यह एकपक्षीय व्यवहार चुनाव-सम्बन्धी मेरे परिणत विचारों का फल है। आजकल चुनाव में सफल होने के लिए प्रार्थना, आग्रह, दबाव, बलात्कार इत्यादि अनेक सूक्ष्मासूक्ष्म उपायों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु इनसे जो फल निकलता है, वह मतदाताओं की इच्छा का वास्तविक प्रतिबिम्ब नहीं होता। इसलिए मैंने अपनी ओर से कुछ भी नहीं किया। आशा है कि आप लोग इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

इस प्रसंग में मैं सम्मेलन के सभापतियों के चुनाव के सम्बन्ध में एक छोटा-सा सुझाव उपस्थित करना चाहता हूँ। वह यह कि जिस समय सम्मेलन की कार्यकारिणी समिति प्रत्येक पद के लिए तीन-चार व्यक्तियों के नाम चुनकर स्वीकृति के लिए उन व्यक्तियों के पास भेजती है; उसी समय सम्मेलन को उन व्यक्तियों के पास यह भी लिखना चाहिए कि वे अपना संक्षिप्त परिचय भेज देने की कृपा करें। सबका परिचय प्राप्त होने पर सम्मेलन अपनी ओर से परिचय-पत्र छपवाकर मतदाताओं के पास भेजे। विभिन्न पदों के लिए चुने गये व्यक्ति मत पाने के लिए किसी प्रकार का प्रयत्न न करें। इससे मतदाता पूर्ण स्वतंत्र रहकर निःसंकोच वृत्ति से मतदान का काम कर सकेंगे और जो फल निकलेगा, वह मतदताओं की इच्छाओं का शुद्ध प्रतिबिम्ब

---

*३६ वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन संवत् २००५ के मेरठ अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

होगा । इस विषयान्तर के बाद अब मैं अपने भाषण के मुख्य विषय की ओर चलता हूँ ।

स्वभाषा का महत्त्व

गत वर्ष अंग्रेजों की राजकीय पराधीनता नष्ट होने पर यद्यपि भारतवर्ष की गणना आप से आप संसार के स्वतन्त्र देशों में होने लगी तथापि केवल इसी कारण से संसार के उन्नत देशों में उसकी गणना नहीं की जा सकती । देश उन्नत है या नहीं, इसका निदान करने के अनेक साधन होते हैं । उनमें देश की भाषा और तद्गत वाङ्मय महत्त्वपूर्ण साधन हैं । देश की उन्नति के निदान में भाषा का समावेश करने का कारण यह है कि प्रत्येक देश की भाषा तथा उसके वाङ्मय में उस देश की उन्नति या अवनति का प्रतिबिम्ब मिलता है । भारतवर्ष प्राचीन काल में उन्नत था, इस बात का पता उस समय की संस्कृत भाषा की प्रगलभता तथा उसके विशाल वाङ्मय से लग जाता है । वर्तमान-काल में इङ्गलैण्ड, अमेरिका, जर्मनी (इस समय का विचार न कीजिएगा), रशिया अत्यन्त उन्नत देशों में हैं और इस बात का पता अंग्रेजी, जर्मन और रशियन भाषाओं की प्रगलभता तथा उनके विशाल वाङ्मय से लग जाता है। यद्यपि ये सब भाषाएँ बहुत उन्नत हैं, तथापि अंग्रेज, जर्मन या रशियन को छोड़कर अन्य देशों के लोग उन पर गर्व नहीं कर सकते । न इस प्रकार दूसरों की भाषा पर गर्व करना किसी को शोभा देता है ।

यहाँ पर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जी की एक कथा मुझे याद आ रही है । श्रीरामचन्द्रजी रावण का वध करके लङ्का में पहुँचे । लङ्का की सम्पत्ति अयोध्या से अधिक थी। एक सामान्य मनुष्य को उसका मोह होना स्वाभाविक था । लक्ष्मणजी ने श्रीरामचन्द्रजी से केवल यही कहा कि—मैं चाहता हूँ कि हम लोग कुछ दिन इस सुन्दर नगरी में ही रहें । उस पर श्रीरामचन्द्रजी ने कहा—

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण ! रोचते ।
जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

मैं प्रभु श्रीरामचन्द्रजी का वचन स्वभाषा की दृष्टि से इस प्रकार कहूँगा—"अपि स्वर्णमयी भाषा परेषां मे न रोचते । जननी च स्वभाषा च स्वर्गादपि गरीयसी" कहने का मतलब यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के

पश्चात् अँग्रेजी भाषा उन्नत है, इसीलिए उसका मुखापेक्षी रहना भारतीयों को किसी प्रकार से शोभा नहीं देगा । अब उनकी प्रतिष्ठा इस बात में है कि वे अपनी भाषा को अपनाकर तपस्या से उसको संसार की उन्नत भाषाओं की पंक्ति में बिठाने की महत्त्वाकांक्षा रक्खें । यह कार्य तभी हो सकता है जब प्रत्येक भारतीय केवल अपनी ही भाषा में भाषण-लेखनादि अपना सब व्यवहार करने का प्रण करे । युद्धों के द्वारा मुगलों की परतन्त्रता नष्ट करके श्री शिवाजी महाराज ने राजकीय स्वतन्त्रता प्राप्त की, परन्तु उससे भाषिक स्वतन्त्रता प्राप्त न हो सकी । इसके लिए उन्हें विदेशियों की भाषा के साथ युद्ध प्रारम्भ करना पड़ा । इसमें लिखे-पढ़े लोगों को विदेशी भाषा बोलने से विमुख करने का प्रयत्न किया गया, जिसके फलस्वरूप 'न वदेद्यावनी भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि' यह सुभाषित लोगों में प्रचलित हुआ । दूसरी ओर विदेशी शब्दों के लिए अपने शब्द बनाने का प्रयास किया गया, जिसके फलस्वरूप 'राज-व्यवहार-कोश' बन गया । इस समय भारत की स्थिति श्री शिवा जी महाराज के समय की-सी है । 'इतिहास अपने को दोहराता रहता है' इतिहासज्ञों के इस कथन में कुछ तथ्य अवश्य है ।

ऊपर जिस प्रण का मैंने निर्देश किया है, वह केवल स्वदेशी का प्रण है। उसमें बहिष्कार की जरा-सी भी गन्ध नहीं है । जिस समय भारत अपनी उन्नति के शिखर पर था, उस समय भी भारतीयों ने बाहर की अच्छी वस्तुओं या बातों का बहिष्कार नहीं किया । भगवान् मनु ने अपनी स्मृति में केवल विद्या ही नहीं, अन्य उत्तम वस्तुओं को, चाहे जहाँ से मिल जाय, ग्रहण करने का उपदेश दिया है—

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि ।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ।।
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ।
अमित्रादपि सदवृत्तममेध्यादपि काञ्चनम् ।।
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ।।

इसके अतिरिक्त ज्योतिष वैद्यक में 'म्लेच्छा हि यवनास्तेषु, सम्यक् शास्त्रमिदं स्थितम् । ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते, 'कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः' इत्यादि वचन मिलते हैं । इस समय भारत की स्थिति चिरकालानुबन्धी रोग से निर्मुक्त दुर्बल मनुष्य के समान है । उसको बाहर तथा भीतर से सब प्रकार

की सहायता की आवश्यकता है । इसलिए केवल अँग्रेजी और जर्मन भाषा से ही नहीं; अपितु अँग्रेज और जर्मन मनुष्यों से भी यदि सहायता लेने की आवश्यकता हो तो लेनी चाहिए; परन्तु सबका उद्देश्य भारत की उन्नति होना चाहिए। यदि कोई मनुष्य पहले अपनी भाषा में प्रवीणता प्राप्त करके एक या अनेक अन्य भाषाओं को सीखकर उनसे मिलने वाले ज्ञान से अपनी भाषाओं को समृद्ध करने का प्रयत्न करे तो अन्य भाषाओं का बहिष्कार करने वाले स्वभाषा-प्रेमी मनुष्य की अपेक्षा उस मनुष्य के लिए मेरे मन में अधिक आदर रहेगा।

भारत की राष्ट्रभाषा

संस्कृत भारत की अपनी भाषा है । यह भाषा अत्यन्त कर्ण-मधुर, सुललित, जितनी कठिन उतनी ही सरल और अत्यन्त अर्थवाही है । संक्षेप में, यह 'यथा नाम तथा गुणः' है । प्राचीन काल में यह बोलचाल तथा व्यवहार की भाषा रही । मध्यकाल में बोलचाल में दूसरी अपभ्रष्ट भाषाएँ आगयीं, परन्तु धार्मिक एवं राजकीय कार्यों में इसका ही उपयोग होता रहा । उत्तर-काल में भारत परतन्त्र हुआ तब इसका राजकीय महत्त्व चला गया, परन्तु धार्मिक तथा अन्य व्यवहारों में यही भाषा रही । इस कारण से अत्यन्त प्राचीन काल से आज तक इस भाषा की परम्परा अखण्डित रही और इसमें अखिल भारतीय स्वरूप के ग्रन्थ बराबर बनते रहे हैं । संस्कृत भाषा देववाणी या अमरवाणी है, यह कभी मरी नहीं, न मरेगी । यह संसार की अति उन्नत भाषा है और इसका प्रभाव अन्य अनेक देशों की भाषाओं पर पड़ा है । भारत की वर्तमानकालीन अनेक प्रान्तिक भाषाओं की भी यह जननी है तथा उनका बराबर पोषण करती आयी है । इन सब बातों का विचार करके कुछ लोग संस्कृत को फिर से भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के पक्ष में हैं । संस्कृत पर अत्यन्त अनुराग होने के कारण इस पक्ष का विरोध मैं नहीं कर सकता । परन्तु सामान्य जनता में शिक्षा के द्वारा ज्ञान-प्रसार करने की दृष्टि से संस्कृत की अपेक्षा प्रान्तिक भाषाएँ अधिक उपयुक्त हैं । इस समय भारत में आठ-दस प्रमुख प्रान्तीय भाषाएँ हैं । इनमें हिन्दी भाषा न्यूनाधिक अन्तर से आधे भारत में प्रचलित है और चौथाई भारत उसको अल्पायास या अनायास ही बोल या समझ सकता है । इसलिए हिन्दी ही भारत की राष्ट्र-भाषा होने योग्य है, और उसको जितनी शीघ्रता से इस स्थान पर आरूढ़

किया जाय, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार यद्यपि व्यावहारिक दृष्टियों से हिन्दी राष्ट्रभाषा होती तथापि उससे संस्कृत का महत्त्व कम नहीं होता। प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति के लिए तथा अखिल भारतीय एकता कायम रखने के लिए विद्यालयों में संस्कृत का अनिवार्य होना बहुत आवश्यक है।

हिन्दी के कालखण्ड

यद्यपि हिन्दी आठ सौ वर्ष की पुरानी कही जाती है तथापि जो हिन्दी राष्ट्रभाषा होने जा रही है वह केवल १५० वर्ष की है। यह काल मनुष्य-जीवन की दृष्टि से यद्यपि बहुत अधिक प्रतीत होता है तथापि भाषा के विकास की दृष्टि से कुछ भी नहीं है। मेरी दृष्टि से इस काल के दो खण्ड होते हैं। प्रथम खण्ड को मैं **शैशवावस्था** कहता हूँ। इसमें हिन्दी मातापिता-हीन अनाथ बालक के समान थी, क्योंकि उसको न जनता का कोई विशेष आधार था, न राजा का। दूसरे कालखण्ड को मैं **विवर्धमानावस्था** (अडोलेसन्स) कहता हूँ। शरीरशास्त्र में विवर्धमानावस्था उस कालखण्ड को कहते हैं जिसमें शरीर के सब अंग धीरे-धीरे बढ़कर पूर्ण प्रगल्भ होते हैं। पुरुषों में इस काल की मर्यादा १४-२५ और स्त्रियों में १२-२० होती है। जब बालक स्वस्थ होता है तब उसके सब अंग यथाप्रमाण होते हैं तथा अवस्था वृद्धि के साथ-साथ यथा-प्रमाण बनते हैं। जब बालक अस्वस्थ होता है तब उसका शरीर कृश और दुर्बल रहता है, उसके अंग-प्रत्यंग न यथाप्रमाण होते हैं, न यथाप्रमाण बढ़ते हैं, कहीं धड़ की अपेक्षा सिर बड़ा होता है तो कहीं सिर की अपेक्षा धड़ बड़ा होता है। प्रथम काल में **हिन्दी की स्थिति अस्वस्थ बालक के समान थी**। इसका अर्थ यह है कि यदि भाषा को मूर्त्त स्वरूप दिया जाय तो उसका ग्रन्थ-भण्डार-रूप शरीर बहुत ही दुर्बल तथा सिर और धड़ के समान साहित्य एवं विज्ञान के ग्रन्थों की उत्पत्ति विषम प्रमाण में होती थी। इस काल में भाषा की इस दुरवस्था की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हुआ और उसको दूर करने का प्रयत्न किया गया। इस प्रयत्न में अनेक विद्वान् लोगों ने व्यक्तिगत रूप से अपनी बुद्धि और लेखनी भाषा की उन्नति के लिए लगाकर अनेक उत्तमोत्तम ग्रन्थ लिखे। अनेक लोगों ने आपस में मिलकर भाषा की उन्नति के लिए अनेक सार्वजनिक संस्थाएँ खोलीं, काशी में नागरी-प्रचारिणी-सभा स्थापित हुई और उसके द्वारा अनेक मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिनमें विज्ञान की शब्दावालियाँ भी थीं। प्रयाग में 'विज्ञान-परिषद्' स्थापित होकर 'विज्ञान'

मासिक तथा विज्ञान के अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन स्थापित हुआ। उस समय विज्ञानादि अंग बिल्कुल सिकुड़े हुए थे। **अतएव विज्ञान की उन्नति के लिए सम्मेलन को विज्ञान-परिषद् की भी स्थापना करनी पड़ी**। यदि सम्मेलन में ये विभाग न रक्खे जाते तो वे वैसे ही सूखे रहते। इस आपत्ति को टालने के लिए सम्मेलन के संस्थापकों ने इन विभागों को सम्मेलन के भीतर रखने में बहुत दूरदर्शिता दिखलायी। इससे हिन्दी के लेखकों का ध्यान केवल साहित्य पर केन्द्रित न होकर भाषा के अन्य अंगों पर भी आकर्षित हुआ और उन अंगों के ग्रन्थ बनने लगे। इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप हिन्दी के जो अंग अपरिणत थे, वे परिणत होने लगे और हिन्दी 'प्रतिपच्चन्द्र खेव वर्धिष्णु' हो गयी। इसी वर्धिष्णुता को देख कर इसके प्रेमियों के मन में इस काल में इसको राष्ट्रभाषा बनाने की अभिलाषा प्रादुर्भूत हुई।

स्वराज्य-प्राप्ति के समय से हिन्दी का तीसरा और महत्त्व का काल प्रारम्भ होता है। इस काल को मैं उसकी **यौवनावस्था** मानता हूँ। इस काल के प्रथम वर्ष में ही हिन्दी अपने क्षेत्र के प्रान्तों में राजभाषा की गद्दी पर आरूढ़ हो गई और अब अल्पकाल में वह निखिल भारत की राजभाषा की गद्दी पर आरूढ़ होकर वस्तुतः गृहिणी बनने वाली है। आप जानते हैं कि जहाँ पर यह अभिजात आर्य वंश की सुरूप लड़की गृहिणी होने जा रही है वहाँ पर अनार्य संकर जाति की एक कुरूपा कन्या बड़े-बड़े लोगों के वसीले पर गृहिणी बनने की महत्वाकांक्षा रखती है, परन्तु भगवान् काल की कृपा से यह आपत्ति टलने वाली है और जहाँ पर भारतीयों ने पहले से इसको गृहिणी बनाने की महत्त्वाकांक्षा रक्खी थी, अब यह वहीं पर विराजमान होने वाली है। जब यह महत्त्वाकांक्षा पूर्ण होगी तब प्रत्येक भारतीय नितान्त प्रसन्न होकर अन्तरात्मा की अपनी प्रसन्नता 'जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा' काश्यप महामुनि के इस वचन से प्रकट किये बिना नहीं रह सकेगा।

गृहिणी होने पर यौवनावस्था में स्त्रियों को 'उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्। प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं' ये कार्य करने पड़ते हैं। हिन्दी को भी अब 'उत्पादनं पुस्तकानां जातानां परिपालनम्। प्रत्यहं राज्ययात्रायाः प्रत्यक्षं' ये सब कार्य करने पड़ेंगे। और जैसे नवविवाहिता स्त्रियों को प्रारंभ में इन कार्यों को करने के लिए बहुत कुछ सहायता और मार्ग-दर्शन की

आवश्यकता होती है, वैसे ही हिन्दी को भी अपने कार्यों का बोझ सँभालने के लिए अनेक प्रकार की सहायता तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी। इस सहायता की सुविधा के लिए मैंने तीन विभाग किये हैं। (१) भौतिक सहायता—इसमें मैंने कागज और मुद्रण का समावेश किया है। (२) बौद्धिक सहायता—इसमें लेखक, अध्यापक आदि से ग्रन्थों के लेखन में किस प्रकार सहायता मिलती है इसका विचार किया है। (३) पारिभाषिक सहायता—इसमें परिभाषा के जटिल प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

भौतिक सहायता

मुद्रण—मुद्रण-कला से ग्रन्थों के सृजन में बड़ी भारी क्रांति हो गयी है। आजकल मुद्रण-कला की इतनी उन्नति हो गई है कि एक-एक घंटे में सहस्रावधि कागज छापनेवाले और अल्पकाल में मुद्रसंग्रथन (कम्पोजिग) करनेवाले यन्त्र बन चुके हैं। इन यन्त्रों की सहायता से मुद्रणकार्य शीघ्र, स्वच्छतर, सुन्दर और शुद्ध होता है। परन्तु ये यन्त्र रोमन लिपि के लिए बनाये गये हैं। नागरी लिपि का अक्षर-विन्यास रोमन लिपि से अधिक जटिल होने के कारण इन यन्त्रों का उपयोग नागरी के लिए नहीं किया जा सकता, इसलिये नागरी के मुद्रणालय अभी तक पुराने ढङ्ग से ही चल रहे हैं। परन्तु भविष्य में पुराने ढङ्ग से काम नहीं चलेगा। यदि हिन्दी को संसार की उन्नत भाषाओं में स्थान प्राप्त करना है तो नागरी लिपि के लिए रोमनलिपि के समान शीघ्र मुद्रण और मुद्रसंग्रथन यन्त्रों का आविष्कार करना पड़ेगा। कुछ विद्वान लोगों का ध्यान इस कठिनाई की ओर बहुत पहले गया था और उन्होंने इस दृष्टि से प्रयास करना भी प्रारम्भ किया। परन्तु उनकी बुद्धि उलटी दिशा में चली। मैं उलटी दिशा में इसलिए कहता हूँ कि उन्होंने लिपि के लिए यन्त्र बनवाने में बुद्धि का उपयोग करने के बदले नागरी लिपि को रोमन लिपि के यन्त्रों के अनुरूप बनवाने में बुद्धि व्यय की। इसके लिये उन्हें नागरी अक्षर-विन्यासों में काफी काट-छाँट करनी पड़ी। इसका परिणाम 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्' के समान देवनागरी रोमन नागरी बन गई और उसको पहचानना कठिन हो गया। यह कर्म उस बुद्धिमान मनुष्य के कर्म के समान हुआ जिसे बाजार की बनी बनाई सोने की सुन्दर चूड़ियों को लड़की के हाथ में पहनाने के लिए उसके हाथों पर ही रंदा करना पड़ा। वास्तव में वर्तमान नागरी लिपि में विशेष अन्तर न करके यन्त्र बनवाने में बुद्धि का व्यय होना

चाहिये। यह कार्य अध्यापकों या पंडितों का नहीं है। 'शूरश्च कृतविद्यश्च दर्शनीयोसि पुत्रक। यस्मिन् कुले त्वमुत्पन्नो गजस्तत्र न हन्यते ॥' यह कार्य कुशलयन्त्र-विशारदों का है। यदि ये लोग नागरी लिपि के लिये यन्त्र बनवाने की ओर ध्यान दें और सरकार एवं धनिक इसमें आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता दें तो मैं समझता हूँ यन्त्र बनने में विलम्ब न लगेगा।

ये यमर्थं चिन्तयते तदर्थं यतते तथा।
सोऽवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥

कागज—मुद्रण का कार्य कागजों पर होता है। कागज के लिए हम स्वयं पूर्ण नहीं हैं। अन्न के समान इस समय कागज की बहुत कमी है और शरीर के लिए अन्न का जो महत्त्व है, ग्रन्थों के लिए कागज का वही महत्त्व है। इसलिए अन्न-वितरण में जो दक्षता आवश्यक है, वही कागज के वितरण में आवश्यक है। परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इसमें बहुत अव्यवस्था है जिसके कारण कूड़ा-करकट ग्रन्थों के लिए कागज मिलता है परन्तु अच्छे-अच्छे ग्रन्थों के लिए नहीं मिलता। कागज की यह कठिनाई अनेक वर्षों तक चलेगी। इसलिए उपलब्ध राशि से यदि अधिक लाभ उठाना हो तो मेरी समझ में कागज का नियन्त्रण निम्न प्रकार से होना चाहिये। कागज का नियन्त्रण किसी एक अधिकारी के हाथ में न होकर एक प्रान्तीय समिति के में हो। इसमें विद्यालय, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय इत्यादि वर्गीकृत शिक्षण संस्थाओं के एक-एक तथा साहित्य-सम्मेलन एवं शिक्षा विभाग के भी एक-एक प्रतिनिधि हों। प्रकाशकों को कागज न दिया जाय। प्रत्येक पुस्तक का परीक्षण करने के पश्चात् उसके लिए स्वतंत्र कागज दिया जाय। विद्यालय, पाठशाला, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय की पाठ्य-पुस्तकों तथा संशोधनात्मक लेख-ग्रन्थ, निबन्ध आदि को कागज पहले दिया जाय। साहित्य के ग्रन्थों की अपेक्षा विज्ञान के ग्रन्थों को अधिक कागज मिलना आवश्यक है क्योंकि साहित्य की अपेक्षा विज्ञान का क्षेत्र अधिक विस्तृत है तथा हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थों की कमी है। वैसे ही अंग्रेजी ग्रन्थों की अपेक्षा हिन्दी ग्रन्थों को अधिक कागज मिलना चाहिये। मैं तो चाहता हूँ कि केवल उन अंग्रेजी ग्रन्थों के लिए कागज दिया जाय जो संशोधनात्मक हों तथा भारत की दृष्टि से कुछ विशेषता रखते हों। जिन पुस्तकों का काम बाहर छपी हुई पुस्तकों से चल सकता है—ऐसी ही पुस्तकें

पाठ्यक्रम में अधिक होती हैं—उन अंग्रेजी पुस्तकों को कुछ भी कागज न दिया जाय ।

बौद्धिक सहायता

संसार की अन्य उन्नत भाषाओं की ग्रन्थ-सम्पत्ति की तुलना में हिन्दी की ग्रन्थसम्पत्ति 'सर्वोऽप्ययं नन्वणु' है । परन्तु आश्चर्य या दुःख की कोई बात नहीं । यह दुरव्यवस्था अनेक स्वायत्त तथा परायत्त कारणों से उत्पन्न हुई है जिनमें निम्न दो कारण प्रमुख हैं । (१) कालावधि—अन्य उन्नत भाषाओं का प्रपञ्च अनेक शताब्दियों का है, हिन्दी का एक शताब्दी का भी नहीं है और यदि वस्तुतः देखा जाय तो अब प्रारम्भ हो रहा है इसके लिए कोई दवा नहीं (२) शिक्षा का माध्यम—आधुनिक हिन्दी का जन्म पारतंत्र्य में हुआ है और जन्म से अब तक उस पर अंग्रेजों का राज्य रहा । उसके अधिराज्य में राज्यव्यवहार और शिक्षा के लिए माध्यक अंग्रेजी रही । संक्षेप में पिछले १५० वर्षों तक भारत की राज्यभाषा और राष्ट्रभाषा अंग्रेजी थी । इससे लिखे-पढ़े लोग अपना व्यवहार तथा लेखन अंग्रेजी में करते रहे हैं । फिर भी इस काल में कुछ महानुभाव ऐसे थे जिन्होंने अपनी लेखनी अपनी भाषा की सेवा में चलायी । कुछ लोग यहाँ तक एकांतिक थे कि उन्होंने अंग्रेजी में लिखना पाप समझा । इस समय हिन्दी की जो ग्रन्थसम्पत्ति है वह ऐसे ही लोगों के कारण है । हिन्दी भाषा इनका सदैव ऋणी रहेगी । इनके ऋण की कल्पना जगन्नाथ पण्डित के निम्न श्लोक से आपके सामने रखता हूँ ।

तोयैरल्पैरपि करुणया भीमभानौ निदाघे,
मालाकार ! व्यरचि भवता या तरोरस्य पुष्टिः ।
सा किं शक्या जनयितुमिह प्रावृषेण्येन वारां,
धारासारानपि विकिरता विश्वतो वारिदेन ।।

अंग्रेजों के अधिराज्य के समय से ही हमारे बड़े-बड़े नेताओं ने अंग्रेजी (क्विट इंग्लिश) का आंदोलन प्रारम्भ करके अंग्रेजी से भारतीयों का पिण्ड छुड़ाने का प्रयास शुरू किया था । अब तो अंग्रेजों का राज्य भी चला गया । इसलिए राजभाषा, राष्ट्रभाषा या शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी रखने में कुछ भी अर्थ नहीं । उसका स्थान हिन्दी को देना चाहिये । यहाँ पर मैं एक बात का स्पष्टीकरण करना चाहता हूँ । **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होनी चाहिए**

यह मेरा मत है । फिर भी जिन प्रान्तों की भाषा हिन्दी नहीं है उन प्रान्तों में औद्योगिक, आभियान्त्रिक, व्यावसायिक विषयों की उच्च शिक्षा यदि हिन्दी में ही दी जाय तो अच्छा है । इसका कारण यह है कि इन विषयों के विशारदों का क्षेत्र केवल प्रान्तिक न रहकर अखिल भारतीय होता है ।

अब भविष्य में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई-लिखाई का काम हिन्दी में होना आवश्यक है । किसी भी भाषा की ग्रन्थसम्पत्ति इन संस्थाओं में काम करने वाले बुद्धिमान अध्यापकों से बढ़ती है । हिन्दी भाषा को यदि संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के समान उन्नत करना हो तो **भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को लिखने का काम केवल हिन्दी में करना आवश्यक है** । मैं जानता हूँ कि वर्तमानकालीन बुद्धिजीवीवर्ग को जो अब तक अंग्रेजी का अभ्यस्त है, हिन्दी में पठन-पाठन एवं लेखन में बहुत कष्ट होंगे । परन्तु अब उनकी दूरदर्शिता इस कार्य के लिए तत्पर हो जाने में ही है ।

मैं भी उक्त बुद्धि-जीवीवर्ग का ही हूँ । मैं आज बीस-बाईस वर्ष से हिन्दी में अध्यापन और लेखन का काम कर रहा हूँ । इसलिए इन विषयों के सम्बन्ध में मैं अपने कुछ अनुभव तथा विचार आपके सामने रखना चाहता हूँ ।

संसार की अन्य उन्नत भाषाओं के ग्रंथों में जो विविध विषय और विचार वर्णित होते हैं उनको भलीभाँति व्यक्त करने में हिन्दी असमर्थ-सी है फिर भी तरतम भेद से यह कह सकते हैं कि साहित्य, दर्शन, इतिहास इत्यादि कुछ विषय ऐसे हैं कि जिनसे वह यथेष्ट परिचित है । इसलिए यदि अध्यापक अपने विषय के पठन के साथ हिन्दी और संस्कृत का भी अभ्यास जारी रक्खें तो अपने विषय की पढ़ाई और लिखाई अच्छी तरह कर सकते हैं । परन्तु विज्ञान के प्रायः सभी विषय ऐसे हैं जिनसे हिन्दी भाषा पूर्णतया अपरिचित है, जिसके कारण उनको हिन्दी में विचार प्रकट करना महान् कठिन काम होता है । इसलिए नौसिखियों को हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों का अध्यापन नाक में दम कर देता है, लेखन का तो पूछना ही क्या ? अंग्रेजी में किसी विषय का अध्ययन और लेखन सरल होता है । उसमें एक विषय के अनेक ग्रन्थ मिलते हैं । उनको पढ़कर यदि टिप्पणियाँ लिख लीं तो पढ़ाई का काम हो गया और यदि उन्हीं को विस्तार दे दिया तो पुस्तक प्रस्तुत हो गई । मैंने ऐसे कई अंग्रेजी ग्रन्थ देखे हैं जिनमें दूसरे ग्रन्थों के पन्ने के पन्ने अक्षरशः उद्धृत किये गये हैं । मेरा यह कथन विशेषतया भारतीय वैद्यक ग्रन्थों

के सम्बन्ध में हैं, अन्य विषयों के सम्बन्ध में क्या स्थिति होगी यह मैं नहीं जानता। हिन्दी में यदि किसी वैज्ञानिक विषय पर पुस्तक लिखना हो तो उसके लिए एक अन्य हिन्दी पुस्तक का भी मिलना कठिन होता है, फिर दस-पाँच पुस्तकों की आशा व्यर्थ है। इसलिए कोई भी अध्यापक इधर-उधर से सामग्री एकत्र करके हिन्दी में पुस्तक नहीं लिख सकता। उसको स्वयं अभ्यास और मनन करके अपना मार्ग निकालना पड़ता है। मैं आज बीस-बाईस वर्षों से यद्यपि पढ़ाई और लिखाई का काम कर रहा हूँ तथापि नये-नये विषयों और विचारों को प्रकट करते समय कठिनाइयाँ सदा सामने खड़ी हो जाती हैं। कदाचित् मेरी मन्दबुद्धि का यह फल होगा। मैं जानता हूँ. मेरे जैसे मन्दबुद्धि लोग ही अधिक होते हैं। अतः उनके लिए मेरी यह सूचना है कि वे प्रथम परिश्रम के साथ अपने विषयों की हिन्दी में पढ़ाई प्रारम्भ करें और उसमें योग्यता प्राप्त करने के पश्चात् उन पर पुस्तक लिखने में उद्यत हों। इससे वैज्ञानिक ग्रन्थसम्पत्ति जल्दी नहीं बढ़ेगी, परन्तु कोई चिन्ता नहीं 'जल्दी की घानी आधा तेल आधा पानी' इस प्रकार का अधकचरा काम करने की अपेक्षा धीर होकर गम्भीर काम करना अनेक दृष्टियों से हितकर है। उत्साहातिरेक मे यदि जल्दी-जल्दी पुस्तकें लिखने का काम किया जाय तो जो पुस्तकें बनेंगी वे भाषा की दृष्टि से बेढब और विषय समझने की दृष्टि से दुर्गम होने के कारण विद्यार्थियों की दृष्टि से व्यर्थ होंगी।

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में विज्ञान की पढ़ाई हिन्दी के द्वारा कब से प्रारम्भ की जाय यह एक बहुत महत्त्व का और उत्तरदायी प्रश्न है। इसका उत्तर देना मेरे अधिकार-क्षेत्र के बाहर है, परन्तु मैं यह समझता हूँ कि जितनी जल्दी प्रारम्भ किया जाय उतना ही अच्छा है, क्योंकि जब कोई काम करना होता है तब उसमें विलम्ब करने मे हानि होती है। केवल **वैद्यक-विज्ञान के लिए मैं यह कह सकता हूँ कि उसमें हिन्दी के द्वारा पढ़ाई प्रारम्भ करने में एक दिन की भी देरी करने की आवश्यकता नहीं है।** इसका एक कारण यह है कि इस विषय की पुरानी नींव काफी मजबूत है, पुराने ढंग से इस विषय का अध्ययन और लेखन प्राचीनकाल से अब तक अखण्डित रहा है और नये ढंग का कार्य पच्चीस वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ है। इसके परिणाम-स्वरूप आधुनिक पाश्चात्य वैद्यक विषयों पर अनेक छोटे-मोटे ग्रन्थ हिन्दी तथा संस्कृत में प्रकाशित हो चुके हैं। इस काम में काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय से प्रावीण्य के साथ उत्तीर्ण हुए वैद्य बहुत

कुछ सहायता कर सकते हैं । इसलिए यदि आज वैद्यक महाविद्यालयों में हिन्दी द्वारा वैद्यक शिक्षा प्रारम्भ की जाय तो उसके पाँच वर्षों के अभ्यास-क्रम के साथ-साथ लगभग सब पाठ्य-पुस्तकें बनायी जा सकती हैं । यदि वैद्यक महाविद्यालयों में अंग्रेजी जाननेवाले विद्यार्थियों की भरती की जाय तो हिन्दी में पढ़ाई होते हुए भी कार्य-निष्पत्ति और संशोधन में कोई अन्तर नहीं पड़ सकता । इसके अतिरिक्त हिन्दी में पढ़ाई करने का सबसे बड़ा राष्ट्रीय लाभ यह होगा कि इससे वैद्यों और डाक्टरों के बीच में बननेवाली खाई अत्यन्त संकुचित हो जायगी और एक दूसरे के समीप आ जायँगे एवं सहकार्य से पीड़ित जनता की सेवा कर सकेंगे । उपर्युक्त कारणों से अभी हाल के केन्द्रीय वैद्य-परिषद् ने वैद्यकीय महाविद्यालयों में हिन्दी द्वारा पढ़ाई आरम्भ करने के विरुद्ध जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है वह मुझे अनुचित और अदूरदर्शी मालूम होता है । इस विषय का कुछ अधिक विवरण आगे दिया गया है ।

पारिभाषिक सहायता

वैज्ञानिक ग्रन्थों के लेखन में और विषयों के अध्यापन में सबसे बड़ी आवश्यकता परिभाषा की होती है, क्योंकि उसके बिना विज्ञान की भाषा में संदिग्धता आ जाती है । पिछली शताब्दी में पाश्चात्य देशों में विज्ञान की बहुत उन्नति हुई और उसके साथ उसकी परिभाषा भी यथेष्ट बढ़ गयी । इस समय भी वैज्ञानिक परिभाषा वस्तुतः हिमालय के समान उत्तुङ्ग और महासागर के समान विस्तीर्ण है और वर्ष-प्रति-वर्ष उसकी उत्तुङ्गता और विस्तीर्णता बढ़ती जा रही है । परिभाषा की इस कठिनाई के कारण हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थ लेखन का काम चींटी की गति से हो रहा है और अध्यापन का काम करने के लिए प्रायः कोई तैयार नहीं होता । इसलिए परिभाषा-समस्या की पूर्ति किये बिना हिन्दी भाषा में विज्ञान की उन्नति नहीं हो सकती ।

दो पक्ष—परिभाषा के प्रश्न पर विद्वानों में दो पक्ष हैं । एक पक्ष का मत यह है कि हिन्दी में अंग्रेजी की ही परिभाषा ग्रहण की जाय; दूसरे पक्ष का मत है कि हिन्दी की अपनी नयी परिभाषा बनायी जाय । प्रथम पक्ष का कहना है कि अंग्रेजी परिभाषा के बिना विज्ञान में संशोधन का काम हम नहीं कर सकेंगे और उसके बिना हम कूपमण्डूक बनकर वैज्ञानिक दौड़ में संसार के पीछे रह जायँगे । यह कथन सोलहो आने सत्य है, परन्तु इससे हिन्दी के

लिए अंग्रेजी की ही परिभाषा ग्रहण की जाय यह अर्थ नहीं निकलता। इससे केवल यही निर्दाशित होता है कि अनुसन्धान और संशोधन करनेवालों को अंग्रेजी परिभाषा का और उसके साथ अंग्रेजी का ज्ञान आवश्यक है। परन्तु सारे देश में इनकी संख्या जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान् ने भगवद्भक्तों के सम्बन्ध में कहा है—'मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। यततानामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः' वैसे बहुत कम होती है। वे लोग अंग्रेजी परिभाषा का ज्ञान प्राप्त करके अपना अनुसन्धान का काम कर लें। वास्तव में देखा जाय तो अनुसन्धानकर्ताओं का कार्य केवल अंग्रेजी भाषा से नहीं चल सकता। यदि केवल अंग्रेजी से ही काम चल जाता तो अंग्रेजी अनुसन्धान-कर्ताओं को जर्मन, फ्रेञ्च तथा अन्य भाषाओं का मुखापेक्षी न होना पड़ता। परन्तु वे भी अन्य भाषाओं के बिना अनुसन्धान का काम नहीं कर सकते। इसका तात्पर्य यह है कि **अनुसन्धानकर्ता, चाहे जिस देश का हो केवल अपनी अपनी भाषा के ज्ञान पर अपना काम नहीं कर सकता, उसे अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके संसार के सभी देशों के अद्ययावत् वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी रखनी पड़ती है।** इन असामान्य थोड़े से लोगों के लिए सर्वसामान्य जनता पर दुर्गम और दुरूह अंग्रेजी परिभाषा लादना किसी दृष्टि से भी हित-कर नहीं है।

अंग्रेजी परिभाषा की दुर्बोधता—अब अंग्रेजी परिभाषा की दुर्बोधता के सम्बन्ध में मैं कुछ अनुभव आपके सामने रखता हूँ। अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी परिभाषा पढ़कर यद्यपि मैं एम्० बी० बी० एस्० परीक्षा उत्तीर्ण हुआ तथापि अधिकसंख्य वैद्यकीय पारिभाषिक शब्दों के योगार्थ मैं नहीं जानता था और जानता भी कैसे? अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द अधिकतर ग्रीक और लैटिन भाषा के होते हैं, अंग्रेजी के नहीं। इसलिए जब तक कोई मनुष्य इन भाषाओं की जानकारी नहीं रखता तब तक उसे उनके योगार्थों का पता नहीं चल सकता। भारतीय वैज्ञानिकों में ग्रीक और लैटिन भाषा की जानकारी रखनेवाले बहुत कम होते हैं। इसलिए अधिकसंख्य भारतीय वैज्ञानिक इन शब्दों के अर्थ के सम्बन्ध में अनभिज्ञ ही रहते हैं। जब तक पढ़ाई और लिखाई अंग्रेजी में होती है तब तक इनका अज्ञान इन कार्यों में बाधा नहीं डालता, परन्तु जब अपनी भाषा में पढ़ाई करने का प्रसंग आता है तब वह आपत्ति-सी मालूम होती है। अतः **हिन्दी के लिए अंग्रेजी परिभाषा को ग्रहण करना वस्तुतः उसको ग्रहण लगने के समान होता है।** इसके बदले यदि संस्कृत से बनायी

गयी परिभाषा ग्रहण की जाय तो उसका ग्रहण छूटने के समान है। इसका कारण यह है कि आधे से अधिक संस्कृतोत्पन्न पारिभाषिक शब्दों के अर्थ अनायास, चौथाई अल्पायास से या पूर्वापर सम्बन्ध से और उर्वरित अनति-मात्र आयास से मालूम होते हैं। अपने कथन के पुष्टचर्थ मैं नीचे कुछ अंग्रेजी वैद्यकीय पारिभाषिक शब्द और उनके संस्कृत प्रतिशब्द देता हूँ। मुझे विश्वास है कि हिन्दी जानने वाले अवैद्य लोग भी हिन्दी वैद्यकीय पारिभाषिक शब्दों को अच्छी तरह समझ सकेंगे, परन्तु अंग्रेजी जाननेवाले अडाक्टर लाख बार सिर पटकने पर भी उनको बहुत कम समझ पाएँगे। अतः उपस्थित अवैद्य और अडाक्टरों से प्रार्थना है कि वे इन शब्दों का अर्थ जानने का प्रयत्न करके मेरे कथन की सत्यता देखें।

अंग्रेजी	हिन्दी
आर्थोप्निआ	ऊर्ध्वश्वास
एक्बोलिक	गर्भपातकर
कामेन्सल	सहभोजी
स्ट्रेप्टकोकाय	मालागोलाणु
पायकिलोसाइट	प्रविधकायाणु
आलिगयूरिया	अल्पमूत्रमेह
एनकिफलायटीज	मस्तिष्कशोथ
एन्टीपार्टम	प्रसवपूर्व
हेड्रोपेरिटोनिअम	जलोदर
स्टोमाटायटीज	मुखपाक
आस्टिओम लेसिआ	अस्थिमृदुता
रिक्रूडेसन्स	प्रत्यावृत्ति
स्यूडोपोडिया	कूटपाद
हेलमिन्थ	कृमि

परिभाषा के सम्बन्ध में जो अनुभव है वही अनुभव सर्वसाधारण डाक्टरी विषयों की पढ़ाई के सम्बन्ध में है। यह देखा गया है कि अंग्रेजी के द्वारा की गयी पढ़ाई की अपेक्षा हिन्दी के द्वारा की गई पढ़ाई से विद्यार्थियों को विषय का ज्ञान अधिक सुलभता से होता है। मेरे इस कथन की पुष्टि आयुर्वेद विद्यालयों में, विशेषतः काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद महाविद्यालय में,

पढ़नेवाले विद्यार्थियों से हो सकती है। इसी अनुभव के आधार पर मैंने पहले ही कह दिया है कि और कहीं हो या न हो वैद्यक महाविद्यालयों की पढ़ाई तुरन्त हिन्दी में होनी चाहिये।

परिभाषा निर्माण—ग्रीक और लैटिन से बनी हुई अंग्रेजी परिभाषा की अपेक्षा संस्कृत से बनाई हुई परिभाषा सुबोध होने के कारण हिन्दी के लिए बनी-बनायी अंग्रेजी परिभाषा को ग्रहण करने की अपेक्षा संस्कृत से नई परिभाषा बनाना अधिक श्रेयस्कर है। इससे प्रथम लाभ तो यह होगा कि यह परिभाषा केवल हिन्दी के लिए नहीं परन्तु भारत की सम्पूर्ण प्रान्तिक भाषाओं के लिए उपयोगी होगी। द्वितीय लाभ यह होगा कि हिन्दी ग्रीक और लैटिन के संकर से अर्थात् बेढब और भद्दी होने से बचकर सुसंस्कृत, शुद्ध, सुसम्पन्न, सुबोध, ओघवती और ओजस्वी होगी। परन्तु परिभाषा बनाना कोई ऐसा साधारण कार्य नहीं है। पिछले ६०-७० वर्षों में अनेक विद्वानों ने वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से इसको बनाने की चेष्टा की। इनका इतिहास मैं आपके सामने इस समय नहीं रखना चाहता। इनके कारण हिन्दी में अनेक सुन्दर-सुन्दर पारिभाषिक शब्द बने, उतने अंश में हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली समृद्ध हुई और वैज्ञानिक ग्रन्थों के लेखन का कार्य चींटी की गति से ही सही परन्तु चलता रहा, बन्द नहीं हुआ। इस प्रकार के प्रयत्न अन्य प्रान्तों में भी हुए। हिन्दी भाषा इनकी सदैव ऋणी रहेगी। परन्तु इन प्रयत्नों से परिभाषा का प्रश्न जैसा का तैसा असिद्ध रहा। परिभाषा अत्यन्त विस्तीर्ण और उत्तुंग है, इसका उल्लेख पहले मैंने किया है। निर्माण की दृष्टि से उसको एक विस्तीर्ण और उत्तुङ्ग मन्दिर समझ सकते हैं। जैसे मन्दिर में नींव, चबूतरा, गर्भागार, सभा मण्डप, शिखर, गोपुर, प्राकार इत्यादि अनेक अङ्ग होते हैं और निर्माण के समय विशिष्ट क्रम से उनको निर्माण करना पड़ता है, वैसे ही रसायन, भौतिक, गणित, इत्यादि विज्ञान के अनेक अङ्ग और उनके असंख्य शब्द परिभाषा में होते हैं और निर्माण के समय उनको विशिष्ट क्रम से निर्माण करना पड़ता है। संक्षेप में वास्तु-विद्या की दृष्टि से उनका पूरा मानचित्र मनश्चक्षु के सामने होने की आवश्यकता होती है। सारी आवश्यकता मसालों की है। मन्दिर-निर्माण में जिस प्रकार चूना, वज्रणचूर्ण (सीमेन्ट), सुर्खी, राखो, ईंटें, पत्थर, लकड़ी, लोहार इत्यादि अनेक प्रकार के मसालों की आवश्यकता होती है, वैसे ही परिभाषा निर्माण में संस्कृत भाषा, उसका व्याकरण, प्राचीन संस्कृत साहित्य, ग्रीक, लैटिन, जर्मन इत्यादि संसार की

अन्य अनेक भाषाएँ, उनका घनिष्ट परिचय इत्यादि अनेक प्रकार के मसालों की आवश्यकता होती है। इन दोनों की सहायता से ही हिन्दी-परिभाषा-मन्दिर का निर्माण हो सकता है। परिभाषा निर्माण के पिछले प्रयत्न असिद्ध क्यों रहे। इसके जो अनेक कारण हैं उनमें 'यादृशश्चित्रकारस्तादृशी चित्रकर्म-रूपरेखा, यादृशः कविस्तादृशी काव्यबन्धच्छाया' यह भी एक महत्त्व का कारण है।

डॉ० रघुबीर की परिभाषा—वास्तुशास्त्र के समान परिभाषा-शास्त्र का पूरा अध्ययन करके तथा उसके लिए आवश्यक सब साधन सामग्री से सन्नद्ध होकर उसके निर्माण का प्रयत्न भारतवर्ष में यदि किसी एक व्यक्ति ने किया है तो वे सरस्वती बिहार के अधिष्ठाता डॉ० रघुबीर हैं। आपके द्वारा बनायी गयी परिभाषा आंग्लभारतीय महाकोष के नाम से प्रकाशित होती है। आज तक इस कोष के जितने भाग प्रकाशित हो चुके हैं उनका परिशीलन कर चुकने पर कहना पड़ता है कि **यह महाकोष अपने ढङ्ग का अनूठा है** और यदि कहा जाय कि परिभाषा-निर्माण के आज तक जितने भी प्रयत्न हुए हैं उनमें यही सर्वप्रथम पद्धतिशील, शास्त्रोक्त, सर्वव्यापी परिभाषा निर्माण का प्रयत्न रहा तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। इसके अभी अनेक भाग निकलने शेष हैं, परन्तु जिस प्रबल आत्मविश्वास, दुर्दम्य उत्साह, निरतिशय प्रेम और भागीरथ प्रयत्न से आपने परिभाषा-निर्माण का काम प्रारम्भ किया और जारी रखा है, उसे देखकर मुझे केवल आशा ही नहीं, पूर्णविश्वास हो गया है कि अल्पकाल में ही परिभाषा का भव्य और उतुङ्ग मन्दिर बन जायगा और हिन्दी भाषा समृद्ध होकर ससार में गौरव प्राप्त करेगी। इस राष्ट्रकार्य में डाक्टर महाशय बुद्धिमानों से बौद्धिक सहायता की, अर्थवानों से आर्थिक सहायता की और लेखकों से परिभाषा प्रचार की अपेक्षा करते हैं। मुझे विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत के लोग इस महान् राष्ट्रकार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए तन, मन और धन से सहायता करने में कोई कोर-कसर न रखेंगे।

यहाँ पर डाक्टर महाशय के सम्बन्ध में मैंने जो कुछ कहा उससे आप यह न समझिएगा कि मैं डाक्टर महाशय के प्रत्येक शब्द को वेदाक्षर मानता हूँ और आप भी मान लीजिएगा। स्वयं डाक्टर महाशय भी अपनी परिभाषा को वेदवाक्य नहीं मानते। इसलिए यदि आप उनके किसी एक या अनेक शब्द के लिए दूसरे अच्छे प्रतिशब्द बना सकें तो अवश्य बनाकर उनको अपने

लेखों और ग्रन्थों में प्रयुक्त कीजिएगा और साथ साथ अंग्रेजी प्रतिशब्द भी दीजिएगा। मेरा भी डाक्टर महाशय के अनेक वैद्यकीय शब्दों के सम्बन्ध में मतभेद रहा, जिसे मैंने उनके लिए दूसरे प्रतिशब्द बनाकर और ग्रन्थों में प्रयुक्त करके प्रकट किया है। अभी हाल में जो बहुत छोटा-सा उपर्युक्त प्रारम्भिक परिभाषा कोष डाक्टर महाशय ने प्रकाशित किया है उसमें उन्होंने स्वयं अनेक पुराने शब्दों में परिवर्तन किया है। यदि नया बना हुआ शब्द पहले की अपेक्षा अधिक अर्थबोधक हो तो परिवर्तन करने में कोई अपत्ति न होनी चाहिए। अंग्रेजी परिभाषा में भी समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं और अनेक वैज्ञानिक अनेक पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में अपनी अस्वीकृति प्रकट करते हैं। परन्तु स्मरण रहे कि आप और हम चाहे जितने छोटे-मोटे परिवर्तन करते रहें, गोवर्धन पर्वत उठाने में श्री कृष्ण जी का जो स्थान और महत्त्व रहा वह स्थान और महत्त्व परिभाषा निर्माण में डॉ० रघुबीर जी का होगा और आप और हम असंख्य गोप-गोपिकाओं के समान रहेंगे।

परिभाषा-समिति—इस प्रकार वैयक्तिक या सामूहिक रूप से बनने वाली परिभाषा का परीक्षण करने के लिए एक अधिकृत अखिल भारतीय स्वरूप की परिभाषा-समिति का होना जरूरी है। उसमें हिन्दी और संस्कृत जानने-वाले विज्ञान की विविध शाखोपशाखाओं के प्रगाढ़ विद्वान हों। इसकी वार्षिक बैठक में इस अवधि के भीतर वैयक्तिक या सामुदायिक रूप से बनाये हुए पारिभाषिक शब्दों का परीक्षण हो और अच्छे शब्दों पर समिति अपनी स्वीकृति की मुद्रा लगा दे। इससे परिभाषा-निर्माण में जो सहायता दे सकते हैं उन सबों का सहयोग मिलेगा और बनी हुई परिभाषा में गांभीर्य और स्थैर्य पैदा होगा।

साहित्य और विज्ञान

साहित्य और विज्ञान इन दोनों का स्वरूप और कार्य-क्षेत्र भिन्न-भिन्न होता है। इसलिए साधारण जनता इनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं मानती और इनके पक्षपाती बिल्कुल पृथक् रहकर कई बार एक दूसरे का उपहास किया करते हैं। अतः दोनों में सम्बन्ध है या नहीं और यदि हो तो कैसा होना चाहिए, इसके सम्बन्ध में कुछ विचार मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ।

मनुष्य के शरीर में अनेक अङ्ग होते हैं जो स्वरूप और कार्य में एक

दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते हैं। परन्तु इनका आपस में सम्बन्ध नहीं, यह प्रश्न कदापि नहीं उठता। केवल यही नहीं, कार्य-भिन्नता, स्वरूप-भिन्नता और उच्च-नीचता होते हुए भी सम्बन्धित रहकर एक दूसरे का उपकार करना और सब मिलकर एक उच्च उद्देश्य को सिद्ध करना शरीर की विशेषता मानी जाती है और इसका उदाहरण भिन्न मतावलम्बियों और परस्पर विरोधियों में समन्वय या मिलन करने के लिए लोगों के सामने रक्खा जाता है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहु राजन्य कृतः। उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽजायत ॥' इस वेद वचन में समाज धारणार्थ यही कल्पना प्रकट की गई है। इसी कल्पना के आधार पर वाङ्मय के विविध अंग-प्रत्यंगों का विरोध न करके उनमें सहयोग उत्पन्न करने की दृष्टि से भाषा को मूर्त्त मानता हूँ। इस वाङ्मय मूर्ति में मेरी कल्पना के अनुसार साहित्य सिर होता है और विज्ञान अवशिष्ट शरीर। शरीर में छोटा होता है तथा उसमें सारासार विचार, मार्गदर्शन और शरीर के प्रत्येक कार्य का नियन्त्रण करने का गुण होता है, परन्तु वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता अर्थात् पंगु होता है। धड़ की स्थिति इसके विपरीत होती है। वह सिर की अपेक्षा कई गुना बड़ा एवं सब प्रकार का कार्यकर्ता होता है परन्तु उसमें कार्य-दर्शन का गुण न होने से वह अन्धे के समान होता है। सिर और अवशिष्ट शरीर के परस्पर सम्बन्ध को अन्य रीति से स्पष्ट करना हो तो सांख्योक्त पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध से, श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन के सम्बन्ध से तथा सारथि और रथ के सम्बन्ध से स्पष्ट कर सकते हैं। इसी दृष्टि से साहित्यविहीन मनुष्य 'साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः' माना गया है। यदि वाङ्मय से राष्ट्र को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाना हो तो साहित्य और विज्ञान का सम्बन्ध और समन्वय सिर और शरीर, पुरुष और प्रकृति, श्रीकृष्ण भगवान् और अर्जुन तथा सारथि और रथ इनके समान होना आवश्यक है।

इसका अर्थ यह है कि साहित्य का वाङ्मय बहुत अधिक न हो परन्तु ठोस हो और उसकी लेखन-शैली ऐसी रहे कि उसमें अपने विषयों के प्रतिपादनार्थ उपमादृष्टान्तादि अलंकारों के समान वैज्ञानिक बातों का भी उपयोग किया जाय। इससे लोगों में विज्ञान का प्रसार होने में सहायता मिलेगी। परन्तु उसके साथ-साथ ऐसे उच्च विचार किये जायँ कि जो विज्ञान की उच्छृङ्खल वृत्ति को नियन्त्रित कर सकें। वैसे ही विज्ञान का वाङ्मय बहुत

विशाल रहे और उसकी लेखनशैली इस प्रकार की हो कि उसमें भी विषय प्रतिपादार्थ उपमा-दृष्टन्तादि का उपयोग किया जाय जिससे उसका रूखा-सूखापन नष्ट हो और बीच-बीच में प्रसंगानुरूप साहित्यिक और दार्शनिक उच्च विचार प्रकट किये जायँ जिससे वह प्रभावित होकर रहे। आप जानते हैं कि विज्ञान से मनुष्य में अमानुष शक्ति आ जाती है और उसके कारण उसमें हिंसात्मक या ध्वंसात्मक प्रेरणाएँ उत्पन्न होकर अनर्थ होते हैं। अमानुष शक्ति चाहे प्राचीन काल के मन्त्र-तन्त्र-सिद्धि द्वारा प्राप्त हुई हो, चाहे आधुनिक विज्ञान द्वारा प्राप्त हुई हो, सदैव अनर्थ करने में अग्रसर रही है—'गर्भेस्वर-त्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपकत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीवानर्थपरम्परा।' इस अमानुष शक्ति का उपयोग मनुष्यता की दृष्टि से करने की लोगों में प्रवृत्ति उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए। यदि साहित्य और विज्ञान का सम्बन्ध इस प्रकार का रहा तो जैसा कि भगवद्गीता में कहा है— यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूति-ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम' वैसे जंगल में मंगल होगा। अन्यथा जैसे हो रहा है मंगल में जंगल निश्चित है।

आदर्श वाङ्मय—संस्कृत संसार की एक अत्युन्नत भाषा है। उपमा-दृष्टान्तादि से विषय प्रतिपादन की उसकी शैली 'एकमेवाद्वितीय' है। केवल यही नहीं, साहित्य और विज्ञान का समुचित संगम उसमें दिखायी देता है। कोई भी साहित्य का ग्रन्थ देखियेगा, उसमें उपमा-दृष्टान्त अलंकार और उच्च विचारों के अतिरिक्त विज्ञान की अनेक उपयोगी बातें यथाप्रसंग मिलेंगी। वैसे विज्ञान का कोई ग्रन्थ उठाइए, उसमें विज्ञान के सिद्धान्त उपमा-दृष्टान्तादि से चित्रित किये हुए मिलेंगे। मैं अपने कथन के पुष्टचर्थ प्रथम साहित्य में विज्ञान के कुछ उदाहरण देता हूँ। मैं वैद्यक का विद्यार्थी हूँ अतएव ये उदाहरण वैद्यक के हैं—

विकारं खलु परमार्थतोऽज्ञात्वा नारम्भ प्रतीकारस्य। (शाकुन्तल)
उचित बेलातिक्रमे चिकित्सका दोषामुदांहरन्ति। (मालविकाग्निमित्र)
अचिन्त्योहि मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः। (रत्नावलि)
निद्राहि प्राणिनां प्रथममिदं शरीरधारणनिमित्तम्। (चण्डकौशिकम्)
विषस्यविषमौषधम्। (प्रसन्नराघव)
द्वेष्योऽपि समतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम्॥ त्याज्यो दुष्टः प्रियोप्यासी-द्दृष्ठोंगुष्ठ इवाहिना। (रघुवंश)।

भ्रमयति भवपित्तम् चेद्भुजभजनर मूतशेखरं कृष्णम् ।
सद्गोरसेन सहसितभनुत्रुटिकं सर्वथात्यजस्नेहम् । (सुश्लोक राघव) ।

अब वैद्यक में साहित्य देखिए। वैद्यक को ही आयुर्वेद कहते हैं। आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक वैद्यक है। इसमें व्याधि विज्ञान, व्याधि निराकरण, स्वास्थ्यरक्षा इत्यादि वैद्यक के अनेक अंगों का विवरण-साहित्यिक और दार्शनिक-पद्धति से किया गया है और उनके सम्बन्ध में जो नियम प्रतिपादित किये गये हैं वे पूर्ण त्रिकालाबाधित हैं। मैं समझता हूँ कि जहाँ तक स्वास्थ्य-रक्षा और व्याधि-परिमोक्ष के सिद्धान्तों का सम्बन्ध है। आयुर्वेद अब भी संसार के सब वैद्यक शास्त्रों का गुरु है और भविष्य में भी रहेगा। इसके इन सत्यं, शिवं और सुन्दरं, सिद्धान्तों को देखकर मुझे ग्रन्थ-लेखन की स्फूर्ति हुई और 'स्वास्थ्य-शिक्षा पाठावली' में इन आरोग्य सुभाषितों का संग्रह करके मैंने ग्रन्थ-लेखन का श्रीगणेश किया।

इनके कुछ उदाहरण देखिए—

चक्षुः प्रधानं सर्वेषामिन्द्रियाणां विदुर्बुधाः ।
घननीहारयुक्तानां ज्योतिषामिवभास्करः ॥
नाभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नातिभोजनात् ।
यथा निरिन्धनोवह्निरल्पोवातीन्धनावृतः ॥
हिताभिर्जुहुयान्नित्यमन्तराग्निं समाहितः ।
अन्नापानसमिद्भिर्ना मात्राकालौविचारयन् ॥
भुक्त्वोपविशतस्तन्द्राशयानस्य तु पुष्टता ।
आयुश्चंक्रमणमाणस्य मृत्युर्धावतिधावतः ॥
स्नेहाभ्यङ्गाद्यथाकुम्भश्चर्मस्नेह विमर्दनात् ।
तथाशरीरमभ्याङ्गद्दृढंसुत्वक्च जायते ॥
देहवाक्चेतसांचेष्टाप्राक्श्रमाद्विनिवर्तयेत् ।
अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषुमध्यमाम ॥
मरणंप्राणिनां दृष्टमायुःपुण्योभयक्षयात् ।
तयोरप्यक्षयाद्दृष्टं विषमापरिहारिणाम ॥

नरो हिताहारविहार सेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दातासमः सत्यपरः क्षमावान्
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥

मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्धि
सत्त्वं विधेयं विशदा च बुद्धिः ।
ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे
यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगः ।।

ऐसे असंख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु 'नखल्व खिलमपि निघृष्यते सुवर्णखण्डं वर्णनिष्कर्षाय'। इसलिए इससे अधिक उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है, न यहाँ पर उसके लिए स्थान या समय है।

विज्ञान परिषद् का भविष्य

मैं पहले कह चुका हूँ कि विवर्धमानावस्था में विज्ञान-परिषद् का साहित्य सम्मेलन के भीतर रहना आवश्यक था। परन्तु **अधिक काल तक उसको सम्मेलन में रहना उन्नति में पोषक नहीं होगा। इसका वास्तविक स्थान निखिल भारतवर्षीय विज्ञान परिषद् है।** इस परिषद् का काम-काज अंग्रेजी में होता है और भविष्य में भी अनेक वर्षों तक अंग्रेजी में ही चलता रहेगा। फिर भी भविष्य में उसके भीतर हिन्दी का एक विभाग स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। उसमें हिन्दी पारिभाषिक शब्दों का परीक्षण, हिन्दी में व्याख्यान तथा तद्विद् संभाषाण (सिम्पोजिअम) इत्यादि कार्य प्रारम्भ किये जा सकते हैं और भाषा की उन्नति के साथ-साथ ये कार्य बढ़ाये जा सकते हैं। जिस परिभाषा समिति का उल्लेख मैंने पीछे किया है उसकी बैठक इसके साथ करने से वह अधिक प्रातिनिधिक स्वरूप की भी हो सकती है। जब इस प्रकार भारतीय विज्ञान-परिषद् में हिन्दी का प्रवेश हो जाय तब सम्मेलन से इस विज्ञान-परिषद् को हटाया जा सकता है। मैं जानता हूँ कि विज्ञान-परिषद् का यह संक्रमण भारतीय वैज्ञानिकों के हिन्दी-प्रेम पर निर्भर है। परन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत के विज्ञानवेत्ता विदेशी भाषाओं की सहायता से अपने देश की सेवा करते हुए अपनी भाषा की ओर विमुख नहीं रह सकते।

बस, मेरा वक्तव्य समाप्त हुआ। इसीलिए अन्त में मैं फिर से उन सब सज्जनों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे इस पद पर स्थापित करके अपने अल्प-स्वल्प विचारों के द्वारा राष्ट्रभाषा की सेवा करने

का सुअवसर प्रदान किया, तथा आप सब उपस्थित सज्जनों और देवियों को भी मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मेरा भाषण धैर्य तथा शान्तिपूर्वक श्रवण किया।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम् ।
आवृणुध्वमतो दोषान्विवृणुध्वं गुणान्बुधाः ।।

जय हिन्दी

अभिभाषण*—१५

डॉ० आरञ्जन

समुपस्थित सज्जन-वृन्द !

मुझे इस बात का गर्व है कि मेरा सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य सम्मेलन नामक इस लोक-सम्मानित संस्था से बराबर ही रहा है। यह सम्मेलन एक साधारण संस्था के रूप से प्रारम्भ होकर एक महान देशव्यापी संस्था के रूप में उसी प्रकार आ गया है जैसे एक विशाल वट वृक्ष केवल एक लघु बीज से प्रकट हो कर विशदोन्नत हो जाता है।

संसार की कोई भी आत्म-सम्मान रखने वाली स्वतन्त्र जाति (राष्ट्र) किसी विदेशी भाषा के द्वारा न तो अपने राज्य का ही कार्य चलाती है और न अपनी शिक्षा का ही। इसलिए भारत की शासन-विधायिनी (Constituent assembly) (संबिधान सभा) ने देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी भाषा को देश की राजभाषा (राष्ट्रभाषा) बनाने का प्रशस्त प्रस्ताव स्वीकृत कर देशकाल की स्थिति के सर्वथा समनुकूल ही किया है।

इंगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री विन्स्टन चर्चिल महोदय ने एक बार यह कहा था और ठीक ही कि इंगलैण्ड और संयुक्त राज्य अमेरिका को परस्पर सम्बद्ध करने का एक प्रधान कारण दोनों देशों में राज-भाषा का एक होना है। अतः हमें पूर्ण आशा है कि हमारी व्यवस्थापिका सभा का यह महत्वपूर्ण निर्णय भाषा को एक व्यापक सूत्र से सारे देश को बाँध देगा। यह अब तक के विस्तृत भारतीय इतिहास के लिए अभूतपूर्व उदाहरण है, किन्तु प्रस्ताव का स्वीकृत हो जाना तो एक बात है और देश की बहुसंख्यक सुपठित जनता का उसे मान लेना एक दूसरी बात है। मनुष्य स्वभावतः परम्परानुयायी होता है और बड़ी कठिनाई के साथ परम्रागत रूढ़ियों को छोड़ पाता है। इसीलिए अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी विचारधारा से परम्परागत पुरानी शैली में शिक्षित लोग इतने समय के उपरान्त अपने दृढ़ीभूत स्वभाव को एक नयी भाषा और एक नयी विचारधारा के साथ परिवर्तित नहीं करना चाहते, किन्तु

* ३७वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संवत् २००६, हैदराबाद अधिवेशन में विज्ञान परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

यदि हम अपने देश को एकता-बद्ध और सशक्त करना चाहते हैं तो इसके अतिरिक्त और कोई भी अन्य उपाय हमारे लिए नहीं कि हम अब परस्पर कन्धे से कन्धा मिलाकर इस व्यापक राष्ट्रभाषा को सर्वथा लोकव्यापी और सम्पन्न बनाने का संयुक्त प्रयत्न करें। इस कार्य में सर्वतः कठिनाइयाँ हैं अवश्य, किन्तु इन कठिनाइयों को हमें किसी न किसी प्रकार दूर ही हटाना होगा। अन्य क्षेत्रों की चर्चा न करते हुए मैं यदि प्रथम विज्ञान के ही क्षेत्र को देखता हूँ तो ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में सबसे बड़ी कठिनाई, मेरे विचार से, पारिभाषिक शब्दावली की है।

पाश्चात्य पारिभाषिक शब्दावली लैटिन भाषा पर ही आधारित है और वह सरलतापूर्वक पाश्चात्य देशों में समझी जाती है, यद्यपि उन विभिन्न देशों में विभिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं, किन्तु उन भाषाओं का मूल वही लैटिन भाषा ही है। उदाहरणार्थ लीजिए लेटिन का—कैपिलस (Capillus) शब्द, इसी शब्द से अंग्रेजी के कैपिलरी (Capillary) और फ्रेंच के कैपिलेर (Capillaire) शब्द निकले हैं। इसी प्रकार:—

लैटिन भाषा के—फॉसिलियम (fossilium = खोदना) से अंग्रेजी के फॉसिल (fossil) और फ्रेंच तथा जर्मन भाषाओं के फासीले (fossile) शब्द बने हैं। यों ही लैटिन भाषा की डेहिस्को (Dehisco खुलना) धातु से अंग्रेजी का पुष्पार्थ में डेहिसेन्स (Dehisence) शब्द बना है, साथ ही इन्फ्लोरेसेन्स (inflorescence) अथवा एक विशेष प्रकार के पुष्पार्थ में लैटिन के कोरिम्बस (Corymbus, पुष्प-स्तबक) शब्द से अंग्रेजी भाषा का कॉरिम्ब (Corymb) शब्द बना है।

इस प्रकार लैटिन-भिज्ञ व्यक्ति लैटिन से रूपान्तरित होने वाले अंग्रेजी भाषा के शब्द को सरलतया समझ सकता है, किन्तु लैटिन अनभिज्ञ अन्य व्यक्तियों के लिए वे शब्द केवल अस्पष्ट-ध्वनि-समूह से ही रहते हैं।

भारत में इस शब्दावली के लिए संस्कृत भाषा को ही आधार बनाना पड़ेगा, क्योंकि बंगाली, गुजराती, हिन्दी, पंजाबी, मराठी प्रभृति अनेक प्रान्तीयभाषाएँ इसी भाषा से प्रस्फुटित हुई हैं। हाँ तमिल, मलयालम, कोकंणी आदि दक्षिण प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में अवश्यमेव बड़ी कठिनाई होगी, क्योंकि ये भाषाएँ सीधे संस्कृत से उद्भूत न होकर उससे सम्बन्ध भी नहीं रखती हैं। इसलिए दक्षिण प्रान्तीय भाषा-भाषियों को इस संस्कृतोद्भूत पारिभाषिक शब्दावली को समझने के लिए प्रथम संस्कृत से परिचय प्राप्त

करना अनिवार्य होगा और यह उनके लिए बहुत कठिन कार्य होगा, किन्तु देशभक्ति की भावना से भरे हुए भावुक व्यक्ति के लिए यह कठिनाई कुछ भी नहीं है, क्योंकि इसके ही द्वारा भाषा के एकीकरण और गौरवीकरण का प्रश्न बहुत कुछ हल हो जाता है।

अब तक हमारी सरकार की ओर से सर्वमान्य व्यापक पारिभाषिक शब्दावली के निर्माणार्थ एक विद्वद्-वर्ग के बनाने का यथेष्ट प्रयत्न नहीं किया गया। सुतरां अधुना अनेक लेखकों ने विविध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है, फलतः भाषा में कुछ गड़बड़ी-सी हो गयी है। **इसीलिए मेरा सुझाव यह है कि या तो केन्द्रीय सरकार ही, या तत्प्रेरणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन ही पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए एक उपसमिति या कई उपसमितियों की योजना करे, जिससे यह कार्य सुचारु रूप से हो सके।**

इसी के साथ मेरा एक सुझाव यह भी है कि पेंसिल, सीमेंट, राशन, मैच, अलमोनियम जैसे शब्द, जो अब चिर प्रचलित हो गये हैं, हिन्दी भाषा में ऐसे ही खपा लिये जाएँ क्योंकि संसार की प्रत्येक जीवित भाषा प्रगतिशील होने के लिए साधारण प्रयोग में प्रचलित शब्दों को इसी प्रकार खपा ही लेती है। पेंसिल को पंकिनी और कागज जैसे साधारण शब्द को पत्र कहना, मस्तिष्क में एक प्रकार से उलझन पैदा करना है।

भारतीय वैज्ञानिक की भय-भावना की जटिलता एक दूसरी कठिनाई में और भी है। उसे कुछ दूर तक यह भय है कि कहीं वह पाश्चात्य वैज्ञानिक विचारधारा से सर्वथा वहिष्कृत न हो जाए, क्योंकि पाश्चात्य लोगों को अभी एक पीढ़ी का समय हमारे प्रकाशित ग्रन्थों की भाषा को यथेष्ट रूप से समझने में लग जाएगा। किन्तु इस कठिनाई के कारण हमें अपने कार्य से विचलित न होना चाहिए। हम उन जापान और रूस के उदाहरण ले सकते हैं, जिनकी भाषायें शेष संसार में सरलता से नहीं समझी जातीं। इन देशों में सुयोग्य अनुवादक विभिन्न भाषाओं में लिखे गये मौलिक ग्रन्थों अथवा लेखों को अनुवादित करने के लिए रहते हैं। बहुधा एक ही पत्र में एक लेख जापानी, अंग्रेजी और जर्मनी भाषा में इसलिए प्रकाशित किया जाता है, जिससे वह देश के बाहर और भीतर समानतया समझा जा सके। रूसवासियों ने अपने कितने ही प्रकाशनों के अनुवाद अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में इसीलिए कराये हैं, जिससे उनके वैज्ञानिक कार्य विश्व में पूर्णतया प्रसारित हो सकें।

इस संक्षिप्त कथन के उपरान्त मुझे आपका ध्यान उस विषय की ओर आकर्षित करना अभीष्ट है, जिस विषय का सम्बन्ध मुझसे सीधा और सर्वथा अधिक है । यह विषय विज्ञान अथवा **भौतिक विज्ञान** है । आधुनिक समय में यद्यपि इस विषय की कतिपय शाखाओं के क्षेत्रों में विशेष वृद्धि और प्रगति हुई है, किन्तु भौतिक विज्ञान के क्षेत्र की प्रगति अपेक्षाकृत विशेष उल्लेखनीय है। सैद्धान्तिक गवेषणा से चल कर अणुओं, कणों और परमाणुओं तथा इनके द्वारा बने हुए ध्वंसकास्त्रों और उनके गुणों की अभूतभूर्व गवेषणा हुई है। इधर की ओर ऐसे-ऐसे महत्त्वपूर्ण नये-नये आविष्कार हुए हैं जो सारे संसार को चकित करने वाले हैं ।

एक शताब्दी पूर्व तक विज्ञान-त्रिशारद जिन सम्भावनाओं के स्वप्नों तक के देखने का साहस न कर सकते थे, उनका ज्ञान अब दैनिक व्यवहार-जगत् में व्यापक हो चुका है । इस दिशा में हम भारतीयों का भी लोकमान्य भाग है । हमारे देश में भी लोक-विश्रुत विज्ञान-विशारदों का एक अच्छा वर्ग है। उदाहरणार्थ श्री सर चन्द्रशेखर वेंकट रमन महोदय के अभूतपूर्व और अद्वितीय आविष्कार तथा उनके सहयोगी श्री सरकरिया-माणिक्या कृष्णन के रवों में चुम्बक शक्ति के प्रयोग तथा आचार्य मेघनाद साहा की खगोल-ज्ञानात्मक गवेषणाएँ, श्री भाभा महोदय की **खगांश** (cosmic rays) ज्ञान के क्षेत्र में नयी देनें संसार में बहुत ही उत्कृष्ट महत्त्व, मूल्य और गौरवपूर्ण स्थान रखती हैं ।

यद्यपि इस प्रकार सैद्धान्तिक क्षेत्र में इन भारतीय प्रशस्त विज्ञानवेत्ताओं ने विश्व-विस्मयकारक आर्य कार्य कर दिखाये हैं अवश्य, किन्तु कहना न होगा कि **प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र में हमारा देश अभी इतना अग्रसर नहीं हुआ।** इसका मूल कारण प्रयोगशालाओं को आधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रों से सुसज्जित करने और उनके लिए उपयुक्त साधनों को उनमें उपस्थित करने के लिए आवश्यक धन का अभाव ही है, किन्तु आशा है कि अब राष्ट्र के नवजन्म से ऐसी न्यूनताएँ शीघ्र ही दूर हो जायेंगी ।

देश को सरकार एतदर्थ विशेष धन सहायता के रूप में दे रही है। युक्तप्रांतीय सरकार ने वैज्ञानिक गवेषणा-समिति के द्वारा जिसका कार्य सहायता देने योग्य आयोजनाओं का चुनना है इस कार्य में अब अपना पैर आगे बढ़ाया है, किन्तु आर्थिक संकट के प्रभाव से उसका कार्य अभी सुचारु रूप से नहीं चल सका । फिर भी **राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की जो सम्भवतः**

प्राच्य संसार की सर्वश्रेष्ठ प्रयोगशाला होगी, **दिल्ली नगर में स्थापना के हो जाने से एक बहुत बड़ा कार्य हुआ है।** इसमें अब नाप-तौल इत्यादि के निश्चिती-करण का विभाग कार्य भी करने लगा है और आशा है कि अन्य विभाग भी शीघ्र ही कार्य करने लगेंगे। ऐसी ही स्थिति के आ जाने पर सैद्धान्तिक प्रायोगिक भौतिक विज्ञान के क्षेत्र सहयोग के साथ सराहनीय कार्य कर सकेंगे।

विज्ञान के आधुनिक विकास का सबसे **अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य परमाणु शक्ति** (atomic energy) **की खोज है,** जिसके कारण जापान के हीरोशीमा नगर का अस्तित्व ही विलीन हो गया और इसीलिए इस शक्ति का अनुमान करके आज समस्त संसार त्रास-त्रासित और भय-कम्पित हो रहा है। प्रश्न अब यह है कि क्या ये नवजात परमाणु-अस्त्र नियंत्रित कर दिये जायँ, अथवा सदा के लिए प्रयोग-वहिष्कृत ही कर दिये जायँ, यदि उत्तर हाँ में ही हो तो प्रश्न यह है कि यह कार्य यदि हों तो कैसे हों। इन्हीं प्रश्नों के उत्तर परमाणु शक्ति-समिति आज सुलझाने का प्रयत्न कर रही है। किन्तु भौतिक विज्ञानार्थ प्रदत्त नोबेल पुरस्कार विजेता आचार्य श्री पी० एम० एस० ब्लैकेट महोदय की यह धारणा है कि परमाणु बम के सैनिक प्रयोग उतने भयावह नहीं हैं क्योंकि परमाणु बम वायु-सेना के द्वारा ही प्रयुक्त होंगे। उनके एतत् सम्बन्धी निबंध का विषय भी यही है कि "वायु सेना अकेले ही युद्ध नहीं जीत सकती"। अस्तु हम भारतीय वैज्ञानिक परमाणुशक्ति के शान्ति-पूर्ण प्रयोगों के लिए शीघ्र ही एक विशाल यन्त्रालय की स्थापना करने जा रहे हैं।

भौतिक वैज्ञानिकों का एक ऐसा विभाग और भी है जिसकी ओर हमारे देश ने वैमुखी वृत्ति-सी ही रखी है। यह विभाग औद्योगिक विज्ञान-विभाग है। इसी विभाग को वस्तुतः उत्पन्न करना चाहिए मुख्य यन्त्र-सामग्री, एक्स-रे सामग्री, वाल्व आदि, जिनकी महती आवश्यकता है। भौतिक विज्ञान केवल अपने ही क्षेत्र में इस औद्योगिक विभाग की सहायता कर सकता है। एक्स-रे के प्रयोग और ऋणाणु कृत वितरण विधि को, जिसका उपयोग धातु-पटलगत दोषों के ज्ञात करने में होना है, पाश्चात्य संसार में अधिकाधिक प्राधान्य दिया जा रहा है, किन्तु अभी भारत इस दिशा में कुछ अधिक आगे नहीं बढ़ पाया।

गत महायुद्ध के कारण भी विज्ञान का बहुत विशेष विकास हुआ है। राडर नामक अस्त्र, **तदर्शक** दीप (इंफ्रा-रेड लैम्प) आदि के नव प्रयोग इस

सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं। हम भारतीय वैज्ञानिक ऐसे अस्त्रों की निर्माण कला में अभी पिछड़े हुए तो हैं ही, किन्तु फिर भी हताश होने का यह विषय नहीं। सूक्ष्म-दर्शक प्रखर बुद्धि वाले वैज्ञानिक हमारे देश में भी हैं जो बहुत कुछ अभूतपूर्व कार्य कर सकते हैं। कमी केवल पुष्कल धन की ही है। यदि यथेष्ट धन और विज्ञानाचार्य दोनों मिल जायँ तो भारत इस वैज्ञानिक दौड़ में दूसरों को अवश्यमेव शीघ्र ही पकड़ लेगा। इसी के साथ एक आवश्यकता यह और भी है कि हमारे देश की जनता में विज्ञान के प्रति चेतना, सद्भावना और सुरुचि की भी पूरी जाग्रति हो जाय, जिससे वह विज्ञान के उद्देश्यों को चाहने और सराहने लगे और विज्ञान के क्षेत्र में अपनी जान पर खेलने वाले वैज्ञानिकों के सम्मुख उपस्थित होने वाले विघ्नों पर विजय पाने के लिए सब प्रकार सहायक हो सके।

आधुनिक काल में भौतिक विज्ञान के साथ ही साथ **रसायन शास्त्र** की भी अप्रतिम उन्नति हुई है। आज भौतिक विज्ञान अथवा रसायन शास्त्र के मध्य में किसी भी प्रकार की सीमा-रेखा को निश्चित रूप से खींचना असम्भव-सा ही हो गया है। भौतिक शास्त्र की आधुनिकतम देन परमाणुक शक्ति की गवेषणा में भी रसायन शास्त्र ने बहुत बड़ा प्रमुख भाग लिया है। विज्ञान के अन्य क्षेत्रों के ही समाजगत महायुद्ध के समय में रसायन शास्त्र के विभिन्न विषयों का बड़ा ही गूढ़ और गम्भीर अध्ययन किया गया है। उनका यदि एक ओर मानव-विनाशकारी उपयोग किया गया है तो साथ ही दूसरी ओर उनका मानव-जीवन रक्षक प्रयोग भी किया गया है। दुर्भाग्य की बात यह है कि भारतवर्ष ने इन गवेषणाओं में कोई भी उल्लेखनीय भाग नहीं लिया।

सत्य स्थिति तो यह है कि भारतवर्ष में आधुनिक काल में रसायन शास्त्र की उन्नति उस गति से तो नहीं हो पायी, जिस गति से उन्नति भौतिक विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं में हुई है। इसके कतिपय मुख्य कारण कहे जा सकते हैं। प्रथम और प्रधान कारण तो यह है कि रसायन शास्त्र मुख्यतः एक प्रायोगिक विज्ञान है और हमारे यहाँ प्रयोगशालाओं के साधनों का नितान्त अभाव-सा ही है। इस अभाव के होते हुए भी कुछ रसायनाचार्यों के महत् कार्य बहुत ही सराहनीय हुए हैं। ऐसे प्रशस्ताचार्यों में से आचार्य श्री प्रफुल्ल-चन्द्र जी राय, श्री शान्तिस्वरूप भटनागर, श्री आचार्य ज्ञानेन्द्रचन्द्र घोष के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रसायन शास्त्र के इन विद्वानों ने प्रति-कूल अवस्थाओं में भी जो स्तुत्य कार्य किया है वह बहुत ही उच्चकोटि का है।

आचार्य श्री प्रफुल्लचन्द्र राय ने तो एक दृष्टि से भारतवर्ष में रसायन शास्त्रीय गवेषणा की नींव ही डाली है और इस शास्त्र की कई दिशाओं में बड़ी ही महत्वपूर्ण गवेषणाएँ की हैं। उनके अध्यवसायकृत कार्यों में से दो कार्य विशेष मूल्य और महत्व रखते हैं। प्रथम तो है 'बंगाल केमिकल व फारमास्यूटिकल वर्क्स' की स्थापना का कार्य और द्वितीय है भारतीय नवयुवकों में रसायन शास्त्र के प्रति अभिरुचि के उत्पन्न करने का कार्य। श्री राय महोदय के कतिपय शिष्य भी उनका अनुसरण करते हुए रसायन विभाग में कार्य कर रहे हैं और कुछ ने सुन्दर भौतिक रासायनिक गवेषणाएँ भी की हैं। फिर भी एक यह बात मुझे बहुत समय से बराबर खटकती रही है कि आचार्य राय के समान उनके अनुयायी शिष्यों ने उनसे रासायनिक गवेषणा के लिए यथेष्ट प्रेरणा प्राप्त करके भी देश की अब तक कोई बहुत बड़ी ऐसी उपयोगी सेवा नहीं की, जिससे देश का आर्थिक और व्यावहारिक हित हो सका हो।

आज रसायन शास्त्र की औद्योगिक उपयोगिता भी बहुत ही बढ़ गयी है। लगभग कोई भी आधुनिक ऐसा उद्योग-धंधा नहीं है, जो रसायन शास्त्र की सहायता के बिना भलीभाँति इस नये युग में चल सके। भारतवर्ष में, इसलिए कहना चाहिए, इस ओर अभी नगण्य-सा ही कार्य हुआ है। श्री सर शांतिस्वरूप भटनागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप में इधर के १० वर्षों से "कौंसिल आफ साइन्टिफिक ऐन्ड इंडस्ट्रियल रिसर्च" नामक संस्था इस ओर कुछ कार्य अवश्यमेव करती रही है। इसके अतिरिक्त हर्ष की बात यह है कि पूना में एक नई "आधुनिक रसायन प्रयोगशाला" सरकार की संरक्षता में स्थापित हो गयी है। अतएव अब आशा है कि यह प्रयोगशाला देश में रसायन शास्त्रीय गवेषणा में नवीन वृद्धि और समृद्धि उत्पन्न कर सकेगी और साथ ही साथ देश की औद्योगिक समस्याओं को भी सुविधा के साथ सुलझा कर भारतीय उद्योगों में सहायक सिद्ध हो सकेगी।

विज्ञान के इन दो प्रमुख विभागों पर इस प्रकार साधारण दृष्टिपात करके अब मैं तनिक आपको **कृषि विज्ञान** की ओर भी आने के लिए आमन्त्रित करता हूँ। हमारे देश के लिए कृषि का बहुत बड़ा महत्त्व है। इस पर दो मत नहीं हो सकते। भारत सदैव से कृषि-प्रधान देश ही रहा और इसीलिए कृषि-व्यापार को एक सुदृढ़ नींव पर स्थापित करना इसके लिए अतीव आवश्यक है। १६३५ ई० से पहले इस देश की जन-संख्या और उपज का

अनुपात अपेक्षाकृत बहुत ही कम था, किन्तु ३५ से ३६ तक में इन दोनों में बहुत अधिक निकटतम अनुपात आ गया है। १९३९ ई० से अब तक में यहाँ की जनसंख्या उपज की अपेक्षा अधिक बढ़ गयी है। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं, क्योंकि भारतीय जनसंख्या अनुपातत: प्रतिवर्ष ५० लाख के लगभग बढ़ती है।

राज्य के विभाजन के पश्चात् भारत जैसे महादेश में जनसंख्या का घनत्व और भी अधिक बढ़ गया है। इसका कारण पाकिस्तान का भारत से विच्छिन्न होना और दोनों राज्यों में जनसंख्या का आदान-प्रदान होना है। भारतीय यूनियन की जन-संख्या अविभक्त मूल भारत की जन-संख्या से ७८% ही है, फिर भी कृषि के लिए उपयुक्त भूमि ६८ से ७०% ही रह गयी है। इस प्रकार जनसंख्या का घनत्व प्रति वर्ग मील बहुत बढ़ गया है और उपज प्रति एकड़ अनुमानत: वही बनी हुई है।

परिणाम इसका यह हुआ है कि प्रति वर्ष भारत को १०० करोड़ रुपयों से अधिक के खाद्य पदार्थ बाहर से मँगाने पड़े हैं। गत वर्ष यही आँकड़े १५० करोड़ की वृहत् धन-राशि तक पहुँच गये। यदि ऐसी ही दशा बनी रही तो बहुत ही शीघ्र भारत दिवालिया हो जाएगा। मुद्रा के अवमूल्यन ने इस दशा को और भी अधिक बिगाड़ दिया है। इसकी ओषधि केवल यही है कि भारत सब प्रकार से खाद्य पदार्थों के लिए आत्म-निर्भर बनने का ही पूर्ण प्रयत्न करे।

हमारी सरकार इस जटिल समस्या के प्रति निस्सन्देह सचेत है और उसने श्री पाटिल को देश में व्यापक रूप से अधिक उपज करने के लिए नियुक्त भी किया है। भारतीय सरकार का भारत को १९५१ ई० तक सर्वथा आत्मनिर्भर बनने का विचार केवल एक आदर्श विचार ही नहीं है, जो कभी पूर्ण ही न होगा। स्थूल हिसाब से देश की उपज ४ करोड़ २५ लाख टन है और विशेषज्ञों का विचार यह है कि इस उपज के साथ भारत में केवल ४० लाख टन खाद्य पदार्थ की ही न्यूनता रहेगी। यदि १०% अथवा ७ मन के स्थान पर ७ मन २८ सेर अथवा १० मन के स्थान पर ११ मन प्रति एकड़ उपज बढ़ जाय, यह वृद्धि एक प्रकार से नगण्य ही है, तो भारत आत्मनिर्भर हो सकता है।

साथ ही इसके ६२ लाख एकड़ ऐसी भूमि परती भी पड़ी हुई है जो जोती-बोई जा सकती है—जैसे हिमालय की तराई। और इसी प्रकार बहुत

सी अर्ध उर्वर भूमि भी पड़ी है जो कृषि-कार्य में आ सकती है। अधिक दशाओं में ऐसे भू-भाग बड़े-बड़े क्षेत्रों के रूपों में फैले हुए हैं और यान्त्रिक-कृषि के योग्य हैं। इतनी भूमि का इस प्रकार व्यर्थ ही पड़ा रहना हमारे जैसे बहुसंख्यक जनता के देश के लिए विचित्र-सा ही है, किन्तु इसका मुख्य कारण नगर और ग्राम के क्षेत्रों में श्रमिकों की संकीर्णता है।

उक्त भू भागों को कृषि-क्षेत्रों में रूपान्तरित करने के लिए परिश्रम की आवश्यकता है और श्रमिकों की कमी में उसकी पूर्ति के लिए यान्त्रिक-कृषि-विधान का क्रमिक वर्धन ही एकमात्र उपाय है। मैं वह व्यक्ति नहीं, जो यह मानते हैं कि पूर्ण-यान्त्रिक-कृषि व्यवस्था ही इस देश के लिए उपयोगी और समीचीन है, क्योंकि भारत न तो ट्रैक्टर ही बनाता है, न उसके पास उनके संचालनार्थ पर्याप्त ईंधन ही है और न उसकी आर्थिक दशा ही ऐसी है अथवा न उसकी कृषि-क्षेत्र-विभाजन-व्यवस्था ही ऐसी है कि ट्रैक्टरों का वृहत् रूप में प्रयोग किया जा सके। फिर भी यान्त्रिक उन्नति की प्रगति का युग आ ही गया है।

स्थूल रूप से यदि ६० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि यांत्रिक कृषि-व्यवस्था में आ जाय तो अनुमानतः २० लाख टन अधिक अन्न की उपज होने लगेगी और शेष २० लाख टन की कमी सिंचाई आदि के द्वारा पूरी हो जायेगी, जहाँ कहीं भी इस प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हो सकती हैं और फर्टिलाइज़र का उपयोग किया जा सकता है, किन्तु यह भगीरथ प्रयत्न है। क्योंकि ६० लाख एकड़ की अतिरिक्त भूमि के लिए ४० हजार ट्रैक्टरों की आवश्यकता है और इतने ट्रैक्टर कुछ वर्षों में ही प्राप्त हो सकते हैं। साथ ही यांत्रिक-कृषि-व्यवस्था भी धीरे ही धीरे चलायी जा सकती है, फिर भी इससे भी अधिक कठिनाई यह है कि इसी भूमि के लिए १२ लाख अधिक बैलों की आवश्यकता होगी, जिनका प्राप्त करना अब एक प्रकार से असम्भव ही है।

इस कठिनाई की अपेक्षा यान्त्रिक-कृषि-व्यवस्था में ट्रैक्टरों का उपयोग आदि एक प्रकार से अधिक लाभप्रद है। यहाँ बैलों के द्वारा जोते गये, और ट्रैक्टरों के द्वारा बनाये गये ४५ हजार एकड़ की तुलनात्मक उपज नीचे दिखलायी गयी है। ट्रैक्टरों के प्रयोग के साथ आधुनिक नवसिंचन-रीति का उपयोग नहीं भी किया गया। जुताई के लिए बैलों की अपेक्षा ट्रैक्टरों का उपयोग अधिक लाभदायक है, क्योंकि मिट्टी का उलटना, खाद देना और निराने का कार्य करना, ट्रैक्टरों के द्वारा अधिक अच्छा हो सकता है, यद्यपि

इस सम्बन्ध के कोई आँकड़े प्राप्त नहीं हैं फिर भी यह अनुमान किया जा सकता है कि बैलों की अपेक्षा ट्रैक्टरों से जोते हुए खेतों की उपज अधिक ही होगी।

बैलों के द्वारा जोती हुई भूमि के एक एकड़ में ८ मन अन्न और १६ मन भूसे की प्राप्ति यदि मानी जाय और ट्रैक्टरों के द्वारा जोते हुए एक एकड़ में ९ मन अन्न और १८ मन भूसे की प्राप्ति मान ली जाय तो प्रथम वर्ष में उपज इस प्रकार हो सकेगी—

	उपज	लागत खर्च	मूल लाभ
बैलों से	५०४०००० रु०	२०२५००० रु०	३०१५००० रु०
ट्रैक्टरों से	८१००००० रु०	७८२८००० रु०	२७२००० रु०

उक्त आँकड़ों में बैलों की शक्ति से प्राप्त होने वाले लाभ में भूसे की बिक्री से होने वाला लाभ सम्मिलित नहीं, क्योंकि जब विस्तृत जोताई होगी तब चरागाह न बचेंगे और सारा भूसा बैलों के ही खर्च में आ जाएगा।

उक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि प्रथम वर्ष में तो ट्रैक्टरों के उपयोग से कम लाभ होगा, किन्तु आगे के वर्षों में लागत खर्च चूँकि कम हो जाएगा इसलिए यांत्रिक कृषि आगे अधिक लाभप्रद सिद्ध होगी। प्रथम पाँच वर्षों का अनुमान-पत्र इस प्रकार होगा—

बैलों के द्वारा

	लागत	लाभ (प्राप्ति)	लाभ
१ वर्ष	२०२५००० रु०	५०४०००० रु०	३०१५०००
२ ,,	११२५००० रु०	५०४०००० रु०	३९१५०००
३ ,,	,,	,,	,,
४ ,,	,,	,,	,,
५ ,,	,,	,,	,,

कुल प्राप्ति (लाभ) १८६७५००० रु०

ट्रैक्टरों के द्वारा

लागत	प्राप्ति	लाभ
७८२८००० रु०	८१००००० रु०	२७२७०० रु०
२८४१००० ,,	,,	५२५८३०० ,,
२६६५५७० ,,	,,	५४३४४३० ,,
२५१५८६० ,,	,,	५५८४१४० ,,
२३८८४०० ,,	,,	५७११६०० ,,

कुल प्राप्ति (लाभ) २२२६०४७० रु०

इस प्रकार से ट्रैक्टरों के प्रयोग से बैलों और श्रमिकों की ही समस्या नहीं हल होती, वरन मूल लाभ भी बैलों से की गयी कृषि की अपेक्षा अधिक होता है। आधुनिक सिंचन की विधियों के उपयोग से भी उपज हो जाती है, चाहे ट्रैक्टरों का उपयोग किया जाय अथवा बैलों का। ३०० पम्पों का लागत खर्च, जो भूमि के लिए आवश्यक होंगे, उनके लगाने, चलाने आदि के खर्च को काट देने पर भी एक करोड़ रुपये का लाभ देश को पाँच वर्षों में और अधिक होगा, चाहे उपयोग ट्रैक्टरों का हो अथवा बैलों का।

आंशिक रूप से यांत्रिक-कृषि-व्यवस्था और आधुनिक सिंचन विधियों के देश में चला देने के साथ ही बीजों के उत्कृष्ट करने की भी महती आवश्यकता है, क्योंकि ये उत्कृष्ट बीज देशी बीजों की अपेक्षा अधिक उपजकारी, शीघ्र पकने वाले, ईति-भीति के भय रहित और अच्छे अन्न के देने में उपयुक्त होते हैं, जब इन्हें समान सुविधाएँ भी दे दी जायें।

बीजों की उत्कृष्ट जातियों के उत्पन्न करने के लिए वैज्ञानिकों का दायित्व आता है। पाश्चात्य देशों में इस प्रकार का बहुत-सा कार्य अब तक किया जा चुका है। रूस के विस्तृत कृषि-क्षेत्रों में गेहूँ की ३०००० जातियाँ तक उपस्थित हैं। इसके प्रमुख वैज्ञानिक श्री वेविलोफ महोदय ने और कृषि सम्बन्धी असंख्य प्रकार के गेहुँओं के दाने अफगानिस्तान और दूसरे स्थानों में, जो गेहूँ के मातृ-भू-भाग कहे जाते हैं, भ्रमण करते हुए एकत्रित किये और उन्हें वे रूस ले आये, जहाँ उनसे नये-नये बीजों के उत्पन्न करने के प्रयोगों का क्रम चल रहा है।

इस रोचक विषय पर कुछ और भी कहने की इच्छा मैं रखता था, यदि समय का लाघव न होता, किन्तु यहाँ अब इतना ही कहना पर्याप्त है कि आज गेहूँ का सबसे अधिक उत्पादन रूस में ही होता है। उसने सायबेरिया के दुर्गम क्षेत्रों में भी, जहाँ लगभग वर्ष के दस महीनों तक बर्फ जमी रहती है, गेहूँ उत्पन्न किया है। भारत में तो बीजों की उन्नति के लिए बहुत थोड़ा ही कार्य हुआ है। मैं कुछ उल्लेख ऐसे कार्यों का आपके सम्मुख यहाँ करता हूँ जो मेरी कृषि-प्रयोगशाला में हुआ है।

यह हमें ज्ञात ही है कि गेहूँ की बालों के रेशों से गेहूँ की विविध जातियाँ बहुत कुछ पहचानी जा सकती हैं। कुछ रेशे तो कटीले होते हैं और कुछ नहीं। कृषक कटीले रेशों के गेहूँ को अधिक अच्छा मानते हैं क्योंकि यह कटीले रेशे दाने को चिड़ियों से बचाते हैं, जिस समय खेत में फसल तैयार

रहती है । इसी प्रकार कुछ रेशे और बीज भी बहुत कुछ लाल होते हैं और कुछ दूसरे प्रकार के सफेद होते हैं । गेहूँ की ऐसी कतिपय जातियों के नाम उनके उत्पादक अनुसन्धानशालाओं के नामों के आधार पर रखे गये हैं, जैसे कानपुर १३ एक जाति का नाम है । इस जाति के गेहूँ के रेशे कटीले और सफेद होते हैं। कुछ वर्ष पूर्व आई० पी० ५२ जाति के गेहूँ के बीजों से एक नयी और अच्छी जाति के बीजों के उत्पन्न करने का प्रयास करते हुए उन्हें मेरी प्रयोगशाला में एक्स-रे के समक्ष रक्खा गया था और वे बीज प्रौढ़ होकर दूसरे ग्यारह प्रकार के नयी जाति के बीज उत्पन्न कर सके । इनमें से कुछ के रेशे तो कटीले थे और कुछ के न थे ।

इनके वर्ण भी कुछ श्वेतता से रक्तता की ओर चलते थे । इनमें से कुछ बीज तो आगे के वर्षों में नयी-नयी जातियों के बीज प्रकट करते गये, किन्तु कुछ अन्य बीज अपने उसी रूप में बने रहे । तब से बराबर इन **नई जातियों का प्रयोग प्रति वर्ष हमारी प्रयोगशाला में किया जा रहा है** । अब तो न केवल हमारे ही कृषि क्षेत्र में, वरन् नैनी कृषि-क्षेत्र और दूसरे कृषि-क्षेत्रों में भी इनका उपयोग हो रहा है । परिणाम यह देखा गया है कि यह उपजातियाँ गुणों के विचार से बहुत आगे बढ़ गयी हैं । इनके बीज अधिक दाने देते हैं, शीघ्र पक जाते हैं और रोटी बनाने के लिए अच्छे होते हैं ।

इन उपजातियों में से दो के नाम श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित और श्रीमती सरोजनी नायडू के नामों पर 'विजया' और 'सरोजनी' रक्खे गये हैं । ये दोनों प्रकार के बीज सभी कृषि-क्षेत्रों की प्रयोगशालाओं में अति उत्तम सिद्ध हुए हैं । कृषकों में इन बीजों के प्रचार के लिए हम सरकार की सहायता पर ही निर्भर करते हैं । इस प्रकार का प्रयोग-कार्य अब भी हमारे यहाँ बराबर चल रहा है ।

उपर्युक्त 'एक्सरे'-उपचार के परिणामस्वरूप तथा विजातीय सम्मिश्रण (Cross breeding) सम्बन्धी प्रयोगों के द्वारा लगभग २०० प्रकार के गेहूँ हमारे कृषि-क्षेत्र में सुरक्षित हैं । राष्ट्र के हित में हम भारतीय वैज्ञानिकों के लिए यह अनिवार्य है कि अपने देश में गेहुँओं की अधिक और अच्छी उपज के लिए पूरा कार्य करे, और दूसरे व्यक्ति हमारे सिद्ध प्रयोगों का सदुपयोग भी करें ।

इस प्रकार विज्ञान और उसके विविध क्षेत्रों पर विहंगम दृष्टि डाल चुकने पर मैं आपका ध्यान अब उस ओर आकृष्ट करता हूँ जिसकी ओर ध्यान देना तात्कालिक आवश्यकता के रूप में है। इसमें तो संदेह ही नहीं कि वैज्ञानिक लोग सैद्धान्तिक और प्रायोगिक क्षेत्रों में सरकार और जनता से सहायता और सहानुभूति पाकर प्रोत्साहन के साथ कार्य करेंगे ही, किन्तु सम्मेलन जैसी संस्थाओं के लिए भी उनके साथ ही बहुत कुछ करणीय है।

सम्मेलन ने अपनी इस थोड़ी अवस्था में हिन्दी भाषा और हिन्दी-साहित्य के प्रवर्धन और प्रसारण का कार्य तो सराहनीय सफलता के साथ किया है, किन्तु **अपनी परीक्षाओं पाठ्यक्रम में विज्ञान के विषय को स्थान देते हुए भी भौतिक विज्ञान-साहित्य के विकास का अनिवार्य कार्य अभी तक यथेष्ट रूप में कदाचित कुछ भी नहीं किया**। सम्भवतः इस कार्य की अपेक्षा उसके लिए प्रथम कार्य ही देश-काल की परिस्थितियों को देखते हुए अधिक आवश्यक और वांच्छनीय था। किन्तु अब समय आ गया है जब उसे इस कार्य में भी हाथ बँटाना चाहिए।

इस क्षेत्र में सम्मेलन का कर्तव्य होगा कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी संरक्षिता में देश के **विज्ञान-विशारदों तथा भाषा-विशारदों की एक सुयोग्य समिति बना कर वैज्ञानिक शब्दावली कोष का व्यापक और सर्वमान्य कार्य करे और विविध प्रकार के विज्ञानों के सुन्दर-सुन्दर ग्रन्थों का प्रकाशन भी बढ़ा दे**। अन्य प्रकाशक यह कार्य इसलिए नहीं कर सकते, क्योंकि उनका दृष्टि-कोण व्यापारिक रहता है और महत्वपूर्ण वैज्ञानिक ग्रन्थ हिन्दी भाषा में प्रकाशित होकर इतनी संख्या में अभी नहीं खप सकते कि उससे प्रकाशकों को लागत के निकल आने पर कुछ लाभ ही हो सके।

सम्मेलन एक औद्योगिक विज्ञान की प्रयोगशाला भी स्थापित कर सकता है जहाँ दैनिक व्यवहार की वस्तुओं के सम्बन्ध में नये आविष्कार किये जा सकें और स्वल्प मूल्य के साथ अधिक मात्रा में दैनिक जीवन-सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएँ बनायी जा सकें।

जहाँ तक मुझे ज्ञात है इन कार्यों के प्रारम्भ के लिए सम्मेलन के पास पर्याप्त धन है अथवा उसे मिल सकता है। वैज्ञानिकों का सहयोग भी उसे सरलता से प्राप्त हो सकता है। आवश्यकता केवल उसे सचेष्ट होकर कार्य के प्रारम्भ करने की ही है। मुझे आशा है कि सम्मेलन में और आप सभी

महानुभाव एतदर्थ प्रयत्नशील होने का श्रेय लेने के लिए सन्नद्ध होंगे। अन्त में अब मैं आप सब सज्जनों का हार्दिक धन्यवाद आपकी इस कृपा के लिए देकर अपना भाषण समाप्त करता हूँ, जिस कृपा से आपने मुझे इस गौरवपूर्ण आसन पर आसीन होने तथा अपने कुछ विचारों को व्यक्त करने का अवसर दिया है। भगवान शीघ्र वह दिन लाये जब सम्मेलन के द्वारा भी ज्ञान-विज्ञान का विश्व-विस्मयकारी विकास हो सके।

अभिभाषण*–१६
कविराज प्रतापसिंह

समागत सभ्यवृन्द;

आज मुझे आपके समक्ष उपस्थित होने में परम आनन्द हो रहा है। भारत की इस स्वतन्त्र भूमि में विज्ञान की चर्चा अपनी मातृभाषा में करना विज्ञ मात्र का कर्तव्य है। आपने इस कर्तव्य-यज्ञ में सहयोग देने के लिए जो यह सम्मान प्रदान किया है उसके लिए साहित्य संसार का मैं आभारी हूँ।

भारतीय स्वतन्त्रता के पुजारियों में सदा से विज्ञान का बड़ा सम्मान रहा है। मुनि आत्रेय ने शताब्दियों पूर्व सांसारिक सफल जीवन के लिए लिखा है कि निम्न छः गुण प्रदान करने से कोई कार्य संसार में असाध्य नहीं हो सकता; उसमें विज्ञान की भी गणना की है—

"विद्या वितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया।
यस्यैते षड्गुणास्तस्य नासाध्यमतिवर्तते॥"

विद्या, वितर्क, विज्ञान, स्मृति, तत्पता, क्रिया इन गुणों पर आप ध्यान दें तो स्पष्ट हो जावे कि इससे सुन्दर और महत्त्व का सूत्र जीवन-साफल्य के लिए मिलना असम्भव नहीं तो दुष्प्राप्य अवश्य है। मैंने इस सूत्र को यों समझा है कि योग्य विद्या में पारंगतता प्राप्त कर उसके सत्यासत्य पर वितर्क करे। तर्क-वितर्क के बाद वैज्ञानिक रीति से उसका समन्वय कर स्मृति में स्थापित कर उस निर्णय को पूर्ण करने के लिए तत्पर हो जाय और फिर उसे कार्य में परिणत कर असाध्य को साध्य बना दे। यदि हमारा विज्ञ समाज इस सूत्र को बालकों के मस्तिष्क में भर दे और नीचे लिखे कृतप्रतिज्ञ वीरत्व का निम्नाङ्कित पद्य उक्त रीति से उत्साह भर दे तो भारत की वर्तमान दशा में अद्भुत क्रान्ति उत्पन्न की जा सकती है—

अङ्गणवेदी वसुधा कुल्या जलधिः, स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रतिज्ञस्य वीरस्य॥

---

*३८ वें अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन संवत् २००७ कोटा अधिवेशन में विज्ञान-परिषद् के सभापति पद से दिया गया भाषण।

कृतप्रतिज्ञ वीर के लिए समस्त पृथ्वी भवनाङ्गण के समान है, अगाध समुद्र क्यारी-सा छोटा है, उसके लिए पाताल स्थल है एवं सुमेरु पर्वत वामी-सा छोटा है इसी प्रकार हमारे प्रत्येक नवयुवक को जीवनारंभ में प्रतिज्ञा करना चाहिए जिससे वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सके। यह वसुन्धरा वीरभोग्या है, वीर पुरुष ही इस संसार के विषयों का आस्वादन ले सकता है। किसी ने कहा है—

सुवर्ण पुष्पितां पृथ्वीं विचिन्वन्ति नरास्त्रयः।
शूराश्च कृतविद्याश्च ये च जानन्ति सेवितुम् ।।

वसुन्धरा प्रफुल्लित सुवर्ण के पुष्पों-सी है। उसका तीन ही पुरुष लाभ उठा सकते हैं—जो शूरवीर हैं और या जिन्होंने विद्या में पारङ्गत होकर कृतकृत्यता प्राप्त कर ली है या जो सेवा करना जानते हैं। मनुष्य जीवन में इन तीन मार्गों में से एक चुन लेने से जीवन साफल्य हो सकता है। इस अवतरणिका का उल्लेख करने का अभिप्राय यह है कि **विज्ञान के पुजारी को जीवन का हवन करना पड़ता है,** उसका जीवन हथेली पर रहता है, वह आत्मा को अमर मान कर जीवन-संग्राम में प्रवृत्त होता है, वह संसार के प्रत्येक द्रव्य को अनन्त का अङ्ग मान कर ज्ञान के समुद्र में गोता लगाता है और वहाँ गहरे पहुँच कर ज्ञानमुक्तता को प्राप्त कर संसारी जीवों का उपकार करता है, इसलिए यह परमावश्यक है कि जीवनारंभ से वैज्ञानिक शिक्षण से बालक का जीवन संगठित किया जावे ताकि वह भविष्य का नागरिक विज्ञानाभिरुचि वाला बने।

इसको संपादित करने के लिए आर्य जगत् के आचार्यों ने जीवन विज्ञान (आयुर्वेद) का आविष्कार किया और प्राणियों के हिताहित का सूक्ष्म अध्ययन कर जीवन-रक्षा के सिद्ध प्रयोगों की एक कोटि बना दी और यह स्थिर नियम बना दिया कि आरोग्यता बिना संसार का कोई कार्य सुसंपादित नहीं हो सकता—

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।

इस आरोग्यता प्राप्ति के लिए दिनचर्या, रात्रिचर्या आदि अनेक प्रकार की विधियों का विधान कर स्वास्थ्य-रक्षण और रोग-मोक्षण के सूत्र निर्धारित किये।

प्राणियों को बताया कि सारे रोग मिथ्याहार-विहार से उत्पन्न होते हैं। ज्वर सबसे परिचित है, उसके लिए आजकल बैक्टिरियालोजी (सूक्ष्म जीवाणु-

विज्ञान) के विज्ञजन अनेक प्रकार के जीवाणुओं की कल्पना करते हैं, पर प्राचीनों ने निर्देश किया कि—

"मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
व्यहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि ज्वरदाः स्युः रसानुगाः ।।"

मिथ्याहार से आमाशय के आश्रित दोषों कोष्ठाग्नि को बाहर निकाल कर रस के द्वारा सारे शरीर में ज्वर उत्पन्न करते हैं ।

जरा ध्यान दीजिए संसार बैक्टिरिया से व्याप्त है । उसकी निवृत्ति का कोई उपाय आज तक आविष्कृत नहीं हुआ पर सारे संसार के प्राणी तो ज्वरपीड़ित नहीं होते, क्योंकि उनकी जीवनी शक्ति (इम्युनिटी) सशक्त है, उनके शरीर में त्रिविध गतियाँ ठीक हैं, उसके शरीर की उष्मा (पित्त) उनकी आन्तरिक और बाह्य गति प्रवर्तक शक्ति (वायु) और आश्लेपण शक्ति (श्लेष्मा) ठीक-ठीक कार्य कर रही हैं, इस शक्ति का ठीक स्वरूप निश्चय कर नियम बना दिया—

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषासाम्यमरोगता ।"

यह वैषम्य क्यों होता है, इसका भी निर्णय कर दिया कि सांसारिक कार्यों में अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग करने से यह विकृति होती है । इसी को स्पष्ट करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में उपदेश दिया कि—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।

यदि आज हम इस उपदेश का अक्षरशः पालन करें तो क्या रोग हम पर आक्रमण कर सकते हैं ? कदापि नहीं । योग शब्द को भी भाष्यकारों ने स्पष्ट कर दिया है—योगः कर्मसु कौशलम् । यहाँ योग शब्द का अर्थ है कर्म में कुशल होना न कि अन्य योगमुद्रादि पातञ्जल योग सूत्र लिखित क्रिया-कलाप ।

आज का संसार दुःखी है, युद्ध में प्रवृत्त है, एक दूसरे को हड़प जाना चाहता है । इसका कारण है मानसिक अस्वास्थ्य, मन के अन्दर उदारता, समानता, सत्यता, क्षमा और आप्त वाक्यों का आदर नहीं है । इसका परिणाम—शरीर और मानसिक कष्ट का सामना संसार को करना पड़ रहा है । इससे बचने के लिए "आयुर्वेदोपदेशेषु विधियः परमादरः" का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया जाय और नीचे लिखे पद्य के अनुसार शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य रक्षा की जाय तो संसार सुखी हो सकता है—

नित्यं हिताहारविहारसेवी
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यसः क्षिमावान् ।
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ।।

(वाग्भट)

यदि देशान्तरीय जीवन विज्ञान वाले आयुर्वेद के सिद्धान्तों की लोकोपकारक दृष्टि से परीक्षा करें तो आज जो तीक्ष्ण विषात्मक औषधियों का परीक्षण मनुष्य जीवन के साथ किया जा रहा है वह बन्द हो जावे और संसार की मृत्यु संख्या घट जावे ।

आर्य चिकित्सकों ने केवल स्वास्थ्य रक्षा के नियम नहीं बनाये किन्तु रोग निवृत्ति के सहस्रशः उपाय सोच निकाले । वनस्पतियों का वर्गीकरण किया, शरीर पर उनका प्रभाव देखा और उनके अनेक योग तैयार किये जिनका ठीक शास्त्रीय रीति से व्यवहार व्यापक रूप से किया जावे तो आज भारत का औषधि व्यय अत्यल्प रह जावे और देश की सम्पत्ति देश में सुरक्षित रह सके ।

आर्य रसशास्त्रियों ने अनेक खनिजों की रोग नाशक शक्ति का पता लगाया और उचित रीति से मानव शरीर में रोगनाशक प्राकृतिक शक्ति को बल देने के उपयोगी रस, भस्म, रसायन तैयार किये जिनका आज भी शताब्दियों के बाद सफल प्रयोग किया जा रहा है और राज्याश्रय के बिना भी अपने बल वैद्य समाज को खड़ा कर रखा है । यही नहीं उन्होंने खनिजों से धातुओं को निकाला, उनकी मात्रा स्थिर की और उनके अन्य धातुओं के योगिकों का पृथक्करण किया । मूल धातुओं का धात्वन्तर निर्माण किया एवम् पारद और ताम्र से स्वर्ण बनाया व नागबङ्ग से रजत निर्माण किया, खेचरी गुटिका तैयार कर मनुष्य को आकाश में विचरण शक्ति प्रदान की पर हा हन्त ! विदेशियों के आक्रमण ने और गोप्यं गोप्यं प्रयत्नतः की विचारधारा ने हमारी सब उपादेय विद्याओं का तिरोभाव कर दिया और आज हम विदेशियों के मुखापेक्षी हो गये । अब भी समय है कि यदि देश के वैज्ञानिक इधर खोज कर कार्य करें तो बहुत-सा लुप्तप्राय गुप्त ज्ञान प्रकाश में लाया जा सकता है और उसका प्रचार मानव समाज के कल्याण के लिए किया जा सकता है । उदाहरणार्थ—

आज का पाश्चात्य चिकित्सक मंडल शमन चिकित्सा का पुजारी है, उसका ध्यान रेजिमेन्टल ट्रीटमेन्ट की तरफ है, वह रोग देखता है, रोगी की

अवस्था, उसकी मानसिक और शारीरिक स्थिति की परवाह नहीं करता है। इधर आर्य चिकित्सक रोगी की प्रकृति का अध्ययन करता है, उसके शरीर की उष्ण, अवयव गति और आश्लेषण क्रिया का ज्ञान प्राप्त कर शोधन और शमन विधान का प्रयोग करता है और सिद्धान्त निर्माण करता है कि—

दोषाः कदाचिद् कुप्यन्ति जिताः लङ्घनपाचनैः।
ये तु संशोधनैः शुद्धाः न तेषां पुनरुद्भवः॥

इस सिद्धान्त को कार्य में परिणत करने के लिए आचार्य ने पञ्चकर्म का विधान किया जिससे शरीर के सारे सञ्चित विकार बाहर निकाल दिये जावें और शुद्ध शरीर को क्षेत्रीकरण कर औषधि का पूर्ण लाभ प्रत्येक विकृत अंग पर पहुँचा कर, रोग का निराकरण कर, शरीर को बलिष्ठ बना दे। इधर आज का पाश्चात्य चिकित्सक रोग के कीटाणुओं को नाश करने वाली शक्तिशाली औषधियों का प्रयोग कर रोग का शमन करता है पर यह नहीं सोचता कि जो प्रबल विषात्मक प्रयोग कीटाणुओं के नाश का कारण है वह शरीरस्थ कोषों (सेलों) को भी हानि पहुँचाता है और मनुष्य शरीर पूर्वापेक्षा भी निर्बल और अन्य रोगोत्पादक कीटाणुओं के आकर्षण और उत्पत्ति का क्षेत्र बन जाता है। वह इस मानसिक वृत्ति से काम करता है कि युद्ध क्षेत्र में जैसे बने वैसे शत्रु का नाश करना चाहिए, चाहे एटम बम का प्रयोग करना पड़े पर उससे होने वाली भविष्य की हानि की ओर वह तनिक भी ध्यान नहीं देता। उसका परिणाम जो आज संसार भोग रहा है वही मनुष्य का शरीर भोगता है और इतना धन व्यय होने पर भी देश में रोगों की वृद्धि हो रही है और मृत्यु संख्या बढ़ रही है। यदि सरकार इधर सत्यतापूर्वक प्राचीन आर्य चिकित्सा के अष्टाङ्ग की शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था कर अपने देश की दवादारू की व्यवस्था करे तो अरबों रुपयों की बचत हो और पूज्य महामना मालवीय जी महाराज के शब्दों में धर्म और धन की रक्षा हो—

धर्म बचे और धन रहे रोग समूल नसाय।
ऐसे लाभ उठाइये देशी औषधि खाय॥

प्रिय बन्धुओं, यह तो हुई औषधि की बात। अब आप थोड़ा रसायन क्षेत्र में विचरण करें।

मनुष्य दीर्घायु होना चाहता है, स्वस्थ रहना चाहता है पर आज भोजन सामग्री के उपयुक्त द्रव्यों के अभाव से वह बरबस क्षीण और अल्पायु

होता जा रहा है । यह दशा हमारे पौराणिक समय में भी उपस्थित रही होगी ऐसा अनुमान किया जा सकता है ।

हमारा देश सदा देवासुर संग्राम में प्रवृत्त रहा है, इस वीरभूमि में युद्धकला प्रत्येक नागरिक की जीवन कला का अङ्ग रहा है, यहाँ की क्षत्रिय माताएँ बालक को पैदा ही करती थीं मातृभूमि की रक्षा के लिए । महाभारत के एक प्रसङ्ग में देवी कुन्ती ने एक स्थान पर विदुर से कहा है कि मेरे पुत्र अर्जुन और भीम से कहो कि जिस लिए क्षत्राणियाँ सन्तान पैदा करती हैं वह समय आ गया है अर्थात् युद्ध के लिए तैयार हो जावें—

"गत्वा धनञ्जयं ब्रूहि भीमसेनं वृकोदरम् ।
यदर्थं क्षत्रिया सूते, सैष कालोऽयमागतः ॥"

ऐसे भारत में युद्ध के पश्चाद्भावि संकट उपस्थित होना सदा सम्भव रहा है । यहाँ ऐसी दशा में आर्य वैद्यों ने चिन्ता करके अल्प व्ययसाध्य अनेक योग तैयार किये जिसके सेवन से मनुष्य शतायु सुखपूर्वक पूर्ण कर सकता है ।

आज भी पाश्चात्य चिकित्सक विटामिन, ईस्ट विटा और कैल्सियम की टिकिया बना कर हमारे देश के बालकों को सबल बनाने के लिए भेज रहे हैं और बम्बई की सरकार इसका विद्यार्थियों में प्रचार भी कर रही है पर क्या हमारी देशी सरकार इस देश की आर्य विद्या द्वारा खोज कराने का यत्न कर रही है ? क्या यह पारतंत्र्य को मिटाने की मनोवृत्ति है ? पर क्या कहा जाय गुलामी चली गयी पर गुलाम अभी गुमराह बना हुआ इस देश का संचालन कर रहा है ।

अस्तु मैं आपके सम्मुख **वे योग** उपस्थित करना चाहता हूँ कि जिसके सेवन से मनुष्य शरीर को सबल रख कर स्वस्थ रह सकता है ।

आर्य वैद्यक के प्रवर्त्तकों ने मनुष्य को प्रधान चार प्रकृति में विभक्त किया है—(१) वात प्रकृति (२) पित्त प्रकृति (३) श्लेष्म प्रकृति और इनके मिश्रित लक्षणों से (४) सम प्रकृति । मनुष्य अपना निर्णय कर ले या किसी विज्ञ वैद्य से अपनी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त कर ले ।

साधारण प्रकृति वाला पुरुष—

मुलेठी १० तोला
घृत १० तोला
मधु १० तोला } मिला कर ३० मात्रा

ऐसी मात्रा एक वर्ष तक एक तोला के हिसाब से प्रातः सेवन करे, देखे कि शक्ति का कितना संचार होता है और जीवन शक्ति की कितनी वृद्धि होती है।

इसी प्रकार पित्त प्रकृति वाला—

गुडुची
आमलकी
गोखुरु छोटा

समान भाग ले चूर्ण बना घृत और मधु के साथ में ३ माशा की मात्रा सेवन करे।

वात प्रकृति वाला—

उष्ण दुग्ध ऽ=
शक्कर १ तोला
पिप्पली चूर्ण २ रत्ती
मधु ६ माशा
घृत ३ माशा

मिला कर सेवन करे।

श्लेष्मा प्रकृति वाला पुरुष—

चित्रक का चूर्ण १ माशा
आमलकी का चूर्ण २ माशा
हरीतकी का चूर्ण ३ माशा

सेंधा नमक यथारुचि मिला कर जल से रात्रि में सेवन करे। और अनुभव करे कि शरीर शक्ति की अभिवृद्धि किस प्रकार होती है। ऐसा वार्षिक कल्प करने से मनुष्य स्वस्थ और सबल रह सकता है।

क्या हमारे चिकित्सक इन कल्पों का प्रचार कर इस संकटावस्था में जन-समुदाय की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे ? ऐसे अनेक वातातपिक रसायनों के कल्प आयुर्वेदीय ग्रन्थों में सुरक्षित लिखे पड़े हैं पर राज्याश्रय के अभाव से इनका प्रचार करने की शक्ति दुर्बल वैद्य समाज में नहीं है। आशा है 'फूड मिनिस्ट्री' इस तरफ ध्यान देगी।

अब मैं आपका ध्यान **साहित्य सेवा** की तरफ आकृष्ट करना चाहता हूँ।

आज साहित्य में देश की प्रत्येक आवश्यकता को ध्यान में रख कर सेवा करने का अवसर है, पर इस समय अधिकारी वर्ग की मनोवृत्ति यह हो रही

है कि अंग्रेजी भाषा, भाव और भूषा सुरक्षित रख कर साहित्य को आगे बढ़ाया जावे, मेरी अल्पमति में यह घातक मनोवृत्ति है, ऐसी मनोवृत्ति से देश में प्रगति नहीं हो सकती। मनुष्य की प्रवृत्ति आलस्य की तरफ झुकी रहती है, बनी बनायी सामग्री मिलती रहने से वह उद्योग नहीं करता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने खाद्य सामग्री का है, विदेश से आते रहने के कारण कृषक अपने चलते काम से आगे बढ़ने के लिए बार-बार राज की तरफ से अनुरोध होने पर भी अभी इस दशा में उन्नति नहीं कर सका है। यही दशा हमारे मानसिक खाद्य की है। विलायत का चतुर वैज्ञानिक आपकी आवश्यकता पूरी करता रहेगा, फिर आप में वह शक्ति कैसे पैदा होगी ? आप तो अनुवादक रहेंगे, या टूटी-फूटी भाषा में पढ़ाने वाले अध्यापक, स्वयं उत्तम ग्रन्थ रचना की न आप में प्रवृत्ति होगी, न आप सामान-सामग्री संग्रह करने की आयोजना करेंगे। अतः मेरी सम्मति है कि प्रारंभिक शिक्षा केवल देवनागरी अक्षरों के द्वारा प्रान्तीय भाषा में दी जावे और सब विषय मातृ-भाषा द्वारा पढ़ाने का यत्न किया जावे। इस क्रान्ति के बिना देश ऊपर नहीं उठेगा न स्वतन्त्र प्रवृत्ति का प्रचार होगा। विश्वविद्यालयों की शिक्षा में भी इस प्रकार की क्रान्ति आवश्यक है। विशेषकर चिकित्सा, कृषि (एग्रीकल्चर), स्थापत्य (ऐंजिनियरिंग) एवं शिल्प (पोलिटेकनिकल) विषयों को शीघ्रातिशीघ्र हिन्दी द्वारा बढ़ाया जावे चाहे टेकनिकल शब्दावली किसी भाषा की रहे। पर यह ध्यान रहे कि नवीन शब्द-कल्पना करने में सावधानी की आवश्यकता है। शब्द अर्थवाचक या गुणवाचक होने चाहिए। उदाहरणार्थ पैथेलोजी शब्द का अनुवाद पथालोची होना चाहिए क्योंकि यह शास्त्र रोग प्राप्ति मार्ग की आलोचना करता है। इसी प्रकार जियोलोजी के लिए ज्या लोची शब्द की कल्पना करना चाहिए। ज्या पृथ्वी उसकी आलोचना। जियो का अर्थ भी भूमि ही है जियो ज्या का अपभ्रंश है। इसी तरह जू ओलोजी का जीवालोची शब्द व्यवहार में आना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो ऐसे ही शब्द संस्कृत के शब्द भंडार से संग्रह किये जावेंगे तो भविष्य की संतान को सरलता रहेगी।

अन्त में मुझे यह निवेदन करने का अवसर आपने प्रदान किया है उसका लाभ उठाना चाहता हूँ कि **साहित्य सम्मेलन अपना एक प्रयाग में आयुर्वेदिक शिक्षणालय अष्टाङ्ग आयुर्वेद शिक्षा के लिए निर्माण करे,** केन्द्रीय सरकार से पूर्ण धनराशि प्राप्त करे और पौर्वात्य पाश्चात्य सम्पूर्ण जीवन विज्ञान की शिक्षा हिन्दी भाषा द्वारा देकर देश के सामने एक ऐसा उदाहरण उपस्थित

करे कि जिससे अन्य शास्त्रों के हिमायती भी बरबस देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में सम्पूर्ण वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा देने के लिए विवश किये जा सकें।

श्री राजर्षि टण्डन जी, जो साहित्य सम्मेलन के प्राणस्वरूप हैं, इस दिशा में यत्न करें, तो यह मेरा परामर्श शीघ्र और सरलता से व्यवहार में लाया जा सकता है।

केन्द्रीय स्वास्थ्य विभाग ने अभी पिछले महीने में एक अधिवेशन प्रान्तीय स्वास्थ्य मन्त्रियों का किया था, उसमें सौभाग्य से मैं भी उपस्थित था। वहाँ इस प्रकार के प्रस्ताव स्वीकृत हो चुके हैं, केवल सरकार को प्रोत्साहन देकर उनको काम में लाना शेष है।

क्या मेरी प्रार्थना इस विज्ञान परिषद् के सदस्य, श्री टण्डन जी तक पहुँचाने की कृपा करेंगे। मैं इस विषय में सर्व प्रकार से सेवा करने के लिए तैयार हूँ।

मेरा चिकित्साशास्त्र का अनुभव यू० पी०, बिहार और राजस्थान का ३८ वर्ष का है। मैं इसको साहित्य सम्मेलन के प्रबन्धकों के हाथ में देकर, देश की सच्ची आदर्श सेवा करना चाहता हूँ, ताकि भविष्य उज्ज्वल बन सके और साहित्य के विज्ञान भाग में जो संकीर्ण मनोवृत्ति है, वह दूर की जा सके।

इस देश में आज का वैज्ञानिक सम्पूर्ण रीति से विदेशी है—उसके भाव, उसकी भाषा और भूषा सब पाश्चात्य ढंग में ढली हुई है। वह बड़ी-बड़ी विज्ञानशालाओं में शिक्षा प्राप्त कर, इस गरीब देश की दशा को भूल जाता है। वह बड़ी-बड़ी विज्ञानशालाओं का स्वप्न देखता है और अन्त में वह राजा और प्रजा से पूर्ण सहायता प्राप्त न करने से हताश होकर दैन्य मनोवृत्ति से अध्यापकी या गुलामी करता है। इसी कारण देश में अँगुलियों पर गिने जाने वालों को छोड़कर, शेष विज्ञानशालाओं पर करोड़ों-अरबों का धन खर्च करने पर भी राज-काज के लिए विदेशियों का आह्वान करना पड़ता है और देश की सारी सम्पत्ति विदेश में दौड़ी चली जा रही है।

इस क्षय की निवृत्ति का एकमा॰ उपाय है देशी भाषा, देशी भाव और देशी भूषा के साथ प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृति का संमिश्रण। यह तभी सम्भव हो सकता है, जब हम सब केवल देश ही की उन्नति को एक लक्ष्य बनाकर, प्रान्तीयता को भुलाकर, भाषा और भावों की उन्नति तन-मन-धन से करें।

आशा है विज्ञ समाज मेरी इस प्रार्थना को ध्यान से सोचे और समझेगा एवं कार्य में परिणत करने का यत्न करेगा ।

अन्त में मैं आप सबको हार्दिक धन्यवाद समर्पित करता हूँ कि आपने धैर्यपूर्वक मेरा यह भाषण सुना और मुझे यह आसन व सम्मान प्रदान कर अनुगृहीत किया ।

जय भारती भाषा